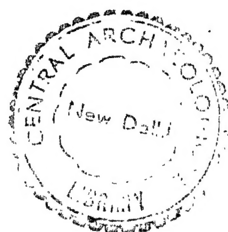
# भारत में इस्लाम






आचार्य चतुरसेन



प्र भा त प्र का श न
२०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली–६

*BHARAT MEN ISLAM*
*by* ACHARYA CHATURSEN
**Rs. 16.00**



प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली–६
मुद्रक : आगरा फाइन आर्ट प्रेस, राजामण्डी, आगरा–२

संस्करण : १९७१
मूल्य : सोलह रुपये

# दो शब्द

भारत में आर्यों की सभ्यता स्थापित हो जाने के बाद समय-समय पर अनेक विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत को आक्रान्त किया। उनमें बहुत तो लूटमार करके अपने देशों को लौट गये, बहुत यहीं बस गये। आर्यों ने उन्हें अपने अन्दर विलीन कर लिया। इस कार्य के लिए आर्यों ने बड़ा साहस किया। जब शक, तातार, हूण और यवन जातियों ने भारत को आक्रान्त कर यहाँ बसने का इरादा किया तो आर्यों ने उन्हें पराया या विदेशी नहीं रहने दिया। उन्होंने भारत के अनार्य जनों और इन समागत जनों को लेकर एक नई जाति बना डाली। इस काम के करने में उन्हें अपने धर्म, जाति, भाषा, आचार-विचार सभी को त्यागना पड़ा। संस्कृत भाषा के स्थान पर लोक भाषा, यज्ञ के स्थान पर मूर्तिपूजन और दर्शन तथा वेद के स्थान पर पुराण साहित्य को धर्म का प्रतीक बनाया। सूक्ष्म-तत्त्व-दर्शक धर्म त्यागकर, मोटा सर्व-जन सुलभ धर्म अपनाया और इस प्रकार उन्होंने अत्यन्त बुद्धिमानी से अपने-पराये का भेद खोकर सबकी एक सम्मिलित हिन्दू जाति बना ली जिसकी एक ही संस्कृति और सभ्यता थी।

विद्वान् जानते हैं कि भारत के दो प्रतापी सम्राट् हुए। एक कनिष्क दूसरे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य। यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि इन्हीं दोनों सम्राटों ने आज के सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का शृंगार किया। कनिष्क और विक्रमादित्य के सभा-पण्डितों की वाग्धारा ही आज का हमारा बहुमूल्य संस्कृत साहित्य है। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि एक अनार्य सम्राट् भी हमारी संस्कृति का प्रतिष्ठाता हुए।

परन्तु भारत में इस्लाम का आगमन इन सब समागत जनों से नया निराला हुआ। मुस्लिम आक्रान्ताओं ने द्विमुखी युद्ध छेड़ दिया। एक धर्म युद्ध का दूसरा राज-नैतिक युद्ध। मुस्लिम आक्रान्ताओं ने इस द्विमुखी युद्ध में योरोप और मध्य एशिया में महान् सफलता प्राप्त की। मिस्र, ईरान, पैलेस्टाइन, तुर्किस्तान और अफगानिस्तान के आसपास के भूखण्ड के न केवल राज्य ही आक्रान्त किये, प्रत्युत् वहाँ के प्रत्येक निवासी को मुसलमान बना लिया। यह उनकी अद्भुत और आश्चर्यजनक सफलता थी। परन्तु उन सबसे अधिक आश्चर्यजनक वह असफलता थी जो भारत में इन विजेता आक्रान्ताओं को मिली। भारत की राजनैतिक लड़ाई में मुसलमानों ने विजय पर विजय प्राप्त की, परन्तु धर्म युद्ध में उन्हें निरन्तर पराजित होना पड़ा। यद्यपि यह सत्य है कि कुछ प्रान्तों में नीच जाति के लोगों ने मुस्लिम धर्म अंगीकार किया, दक्षिण के समुद्र किनारे पर बसने वाले तथा पूर्वी बंगाल के समुद्र तीर बसने

वाली जातियों ने इस्लाम अंगीकार किया, राजनैतिक क्षेत्र में पड़ कर तथा राजसत्ता के लालच में कुछ राजपूतों की जातियाँ भी कहीं-कहीं मुसलमान बनीं, परन्तु भारत की हिन्दू जाति ने मुसलमानों से धर्म युद्ध में निरन्तर आठ सौ वर्षों तक बिना शस्त्र के भारी मोर्चा लिया और पराजय स्वीकार नहीं की। यह हिन्दू धर्म की उस संगठित शक्ति का प्रभाव था जिसके मूल में आध्यात्म का सांस्कृतिक पुट था।

पठानों के राज्य-काल में जायसी और उसके अनुवर्ती सूफी कवियों ने अवधी और ब्रजभाषा में प्रेम काव्य रचे थे। परन्तु उसमें और इस साहित्य में अन्तर था। उसमें भाषा ही लोक भाषा थी। उसमें न तो हिन्दू संस्कृति थी, न हिन्दू-मुस्लिम एक्य भावना थी। यह सूफी मुस्लिम फकीरों का हिन्दू जनता के पूज्य विश्वासपात्र और आध्यात्मिक गुरु बनने के लिए एक प्रयास था। उनकी कविता में हिन्दू-चरित्र तो अवश्य थे, परन्तु उनमें न हिन्दू-धर्म तत्त्व था, न कविता की काव्य परिपाटी ही हिन्दू भावना से संश्लिष्ट थी। इन रचनाओं में प्रचलित हिन्दू-चरित्र प्रधान दन्त कथाएँ कहकर उनमें अपने सूफी तत्त्व की फिलासफी आरोपित की गई थी। इस प्रकार वे अक्षुण्ण मुस्लिम सन्त रहते हुए भी हिन्दू जनता के पीर बने रहना चाहते थे।

परन्तु सबसे पहिले रसखान के रूप में मुस्लिम हृदय ने हिन्दू-धर्म तत्त्व और हिन्दू इष्ट देवता के आगे सिर झुकाया। आगे चलकर मुस्लिम कवियों में यह परम्परा बढ़ती ही गई। आलम और रसखान से यह हिन्दू-धर्म तत्त्व के प्रति जो आकर्षण प्रारम्भ हुआ सो यह शताब्दियों तक आगरे के प्रसिद्ध कवि नजीर को भी लाँघता हुआ चला ही गया।

परन्तु अकबर ने इतना ही नहीं किया। उसने ठोस कार्य में आगे हाथ बढ़ाया। जहाँ उसने सब हिन्दू राजाओं से घनिष्ठ और मित्रतापूर्ण राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये तथा हिन्दू मुस्लिम राजपुरुषों को बिना पक्षपात के अपनी राज्य-व्यवस्था में स्थान दिया, वहाँ उसने कट्टर मुस्लिम-धर्म के स्थान पर स्वयं एक नवीन धर्म की स्थापना का भी साहस किया। इसके साथ ही उसने हिन्दू राजाओं से रिश्तेदारी करनी भी प्रारम्भ की। खेद है कि तत्कालीन हिन्दुओं ने महान् अकबर के इस मैत्री निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने राजनैतिक दबाब में पड़कर लड़कियाँ शाही परिवार को दीं—परन्तु ली नहीं। छुआछूत का भूत उनका बाधक था। ब्राह्मणों का अनुशासन उनके सिर पर था। लड़की देने की मर्यादा भी शाही परिवार तक ही सीमित रही। सर्वसाधारण में रोटी-बेटी का चलन हिन्दू-मुस्लिमों में नहीं जारी हुआ। यह भारत के निवासियों का दुर्भाग्य था। फिर भी अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ के काल तक सौ वर्षों में मुस्लिम संस्कृति ने भारतीयता का रूप धारण कर लिया। यह सौ वर्ष का समय दोनों जातियों को एक हो जाने के लिए बहुत था।

सांस्कृतिक, राजनैतिक और सामाजिक भावनाओं में मुग़ल सम्राटों ने जितने प्रयत्न हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य भावना के किये, उसका न तो हिन्दू जनता ने स्वागत किया

न मुस्लिम जनता ने । मुल्ला और पण्डित पक्के रूढ़िवादी रहे । यद्यपि रामानन्द स्वामी ने बड़ा साहस किया, उन्होंने अकबर से प्रथम ही एक बीज एकता का अरोपित किया था और उन्होंने एक सन्त सम्प्रदाय के ऐसे रूप को जन्म दिया जो अति उदार था। उन्होंने कट्टरता को त्याग दिया । उन्हें इसके लिए सम्प्रदाय से बहिष्कृत होना पड़ा। परन्तु उन्होंने यह देख लिया था कि सच्चे भक्ति-मार्ग में जाति वर्ग अथवा अन्य सांसारिक बन्धनों का कोई स्थान ही नहीं है । सबसे प्रथम उन्होंने छुआछूत को धता बताई और हर किसी का छुआ भोजन करना प्रारम्भ किया । इस प्रकार रामानन्द स्वामी अपनी कृत्रिम ऊँचाई से प्रेम और भक्ति के स्वभाविक धरातल पर उतर पड़े और बिना किसी वर्ण-जाति-भेद के लोगों के बीच अपने नये सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने लगे । उन्होंने संस्कृत को त्याग लोक भाषा में प्रचार करना प्रारम्भ किया, जनता की भाषा में ज्ञानोपदेश देकर वे लोगों को आध्यात्मिक संस्कृति के स्वाभाविक क्षेत्र की ओर आकर्षित करने लगे । अब उन्होंने ग्यारह मुख्य शिष्य बनाये :—रविदास या रैदास (चमार), कबीर (जुलाहा), धन्ना (जाट), सेन (नाई), पीपा (राजपूत), भवानन्द, सुखानन्द, आशानन्द, सुर-सुरानन्द, महानन्द और श्री आनन्द । इसके सिवा कुछ स्त्रियों को भी उन्होंने शिष्य बनाया ।

इस प्रकार उन्होंने प्रचलित परम्परा को छोड़कर निम्नस्तर से आये लोगों में उच्च भावनाओं का समावेश किया । आप देख सकते हैं कि इन सन्तों ने भारतीय संस्कृति में कितना हिस्सा लिया, और इन शिष्यों की शिष्य परम्परा में भारत के निम्नस्तर के लोगों में कितना जीवन-संगठन सौर सांस्कृतिक प्रभाव पैदा किया । यह भूमि थी जिस पर अकबर और बल्लभाचार्य को चलने का सुअवसर मिला । परन्तु जैसा कि कहा गया है हिन्दुओं और मुस्लिम जनता ने इस प्रगति में पूर्ण सहयोग नहीं दिया । हिन्दुओं के मन में मुस्लिमों के प्रति घृणा और अस्पृश्यता के भाव वैसे ही कटु बने रहे । वे उन्हें म्लेच्छ समझकर उनसे दूर ही रहते रहे । मुसलमान चाहे बादशाह ही क्यों न हों, एक साधारण हिन्दू के लिए भी वह इस प्रकार अस्पृश्य था कि वह उसके हाथ का छुआ जल भी नहीं पी सकता था । उसी प्रकार मुसलमान शासक भी हिन्दुओं को काफ़िर, गुलाम समझकर अपने राजपद के आश्रय से उन्हें अपमानित करने का कोई अवसर छोड़ते न थे । इस प्रकार की तनातनी ने औरंगजेब के काल में फिर वही कट्टरता और संघर्ष उत्पन्न कर दिया । परन्तु अब हिन्दू संगठित हो गये थे । तुलसी के राम ने हिमालय से सेतुबन्ध रामेश्वर तक शक्ति और संगठन की सामर्थ्य जनता में भर दी थी । तुलसी के प्रभाव से पचास वर्षों में भारत में भारी सांस्कृतिक विकास हुआ । इन पचास वर्षों में दो सौ चौहत्तर कवि उत्पन्न हुए जिन्होंने हिन्दू-जाति के संगठन में सहारा दिया । इस काल में भक्ति और साहित्य का ऐसा उज्ज्वल रूप प्रकट हुआ कि उसने भारत के इतिहास की धारा को ही पलट दिया ।

इन्हीं तुलसी के राम का बल पाकर छत्रसाल ने केवल पाँच सवारों और पच्चीस

पैदलों की सेना लेकर प्रतापी औरंगजेब से लोहा लिया और विजय पर विजय प्राप्त करके दो करोड़ वार्षिक आय का विशाल राज्य बुन्देलखण्ड स्थापित कर लिया। इसी तुलसी के रामाश्रय होकर दक्षिण में बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव पेशवा ने मुग़ल साम्राज्य को ध्वंस कर पाँच सौ वर्षों के खोये हिन्दू सामाज्य की फिर से स्थापना की। यह तुलसीदास के महान् हिन्दू संगठन के महान् परिणाम थे, कि दो ही शताब्दियों के भीतर हिन्दू साम्राज्य भारत में स्थापित हो गया। यह हिन्दुओं का दुर्भाग्य कि था कि १४वीं शताब्दी में उसकी झोक सम्हालने वाला कोई प्रतापी संगठनकर्ता हिन्दुओं ने पैदा नहीं किया।

कांग्रेस ने राजनैतिक मंच पर उन्हें एक झंडे के नीचे ले आने की चेष्टा की। परन्तु यह सफल न हुई और कांग्रेस ही को पाकिस्तान का विभाजन स्वीकार करना पड़ा-जिससे देश के खण्ड-खण्ड तो हो ही गये, अव्यवस्था और रक्तपात के भी ऐसे दर्दनाक फल भोगने पड़े कि जिनकी समता मानव-चरित्र के इतिहास में है ही नहीं।

आज भारतीय मुसलमान पाकिस्तान का प्राप्तव्य पा चुके हैं। वहाँ वे अपनी कट्टर, अनुदार और साम्प्रदायिक भावना का जो उद्दीपन कर चुके हैं, स्पष्ट ही ऐसी है कि जिसमें किसी भी हिन्दू का पाकिस्तान में प्रतिष्ठा और स्वतन्त्रता से रहना सम्भव ही नहीं है। परन्तु हमारी दिक्कतें तो अभी वैसी ही गम्भीर बनी हुई हैं। जो मुसलमान भारत में रह गये हैं, उन्हें भारतीय-भावना से ओतप्रोत करने का अभी तक कोई ठोस कार्यक्रम नहीं बनाया गया। आज वे भारत में अपने को खोया-सा, पराया-सा समझ रहे हैं। उनमें विद्रोह की भावना भी है। दूसरी ओर भारतीय हिन्दू उन्हें क्रोध और विद्वेष की भावना से देखते हैं। चाहे जितनी भी यह भावना छिपाई जाय, वह छिप नहीं रही है।

इन दोनों भावनाओं के लिये सरकारी कानून या शाब्दिक घोषणायें अपर्याप्त हैं। समय की आवश्यकता है कि मुस्लिम समाज के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक नेताओं को प्रामाणिकता से भारतीय जीवन की मूल धारा को अंगीकार करना चाहिए और हिन्दू समाज को उदारता का परिचय देकर उन्हें स्वीकार कराना चाहिए। इसी में भारत का कल्याण है।

ज्ञानधाम
शाहदरा, दिल्ली।

—लेखक

## विषय सूची

---

: १ :

# भारतवर्ष

## भारतवर्ष का भौगोलिक परिचय

भारतवर्ष एशिया महाद्वीप के तीन दक्षिणी प्रायःद्वीपों में से एक है। इसका क्षेत्रफल १२,३२,५३१ वर्गमील अर्थात् ३१,८२,३३३ वर्ग किलोमीटर है। १६४१ में इसकी जनसंख्या ३८,३६,००,००० और १६६१ में ४३,६२,३४,७७१ थी। उत्तर से दक्षिण तक इसका विस्तार ३२०० कि० मी० है और पूरब से पच्छिम की ओर लगभग ३,००० कि०मी० फैलाव है। इसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में हिन्द महासागर, पूर्व में बर्मा और बंगाल की खाड़ी तथा पच्छिम में सफेद कोह सुलेमान पहाड़, बिलोचिस्तान और अरब का समुद्र है। है। हिमालय पहाड़ प्रायः १,५०० मील लम्बा और २०० मील चौड़ा है। इसकी ऊँचाई २०,००० फीट के लगभग है। कहीं-कहीं अधिक हो गई है। सबसे ऊँची चोटी 'गौरीशंकर' २६,००० फीट ऊँची है। दूसरी बड़ी-बड़ी चोटियाँ किंचिचंगा, धौलागिरि, नन्दादेवी और नंगा पर्वत हैं। हिमालय का बड़ा भाग लम्बाई में बर्फ से ढका रहता है। इसकी जलवायु पाश्चात्य देशों के समान ठण्डी और स्वास्थ्यकर है। यहाँ के निवासी भी अधिक गोरे हैं। यहाँ केसर, कस्तूरी और पश्मीने का खास व्यापार होता है।

हिमालय के सिवा भारत में विन्ध्याचल, पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट और नीलगिरि पहाड़ हैं। हिमालय पर एक छोटा-सा ज्वालामुखी भी है। सीताकुण्ड आदि कुछ गर्म जल के सोते हैं।

भारतीय नदियाँ बड़ी और लम्बी हैं। इनमें सिन्धु, सतलज, व्यास, रावी, झेलम, सरस्वती, गंगा, जमुना, सरयू, गण्डक, धसान, चम्बल, केन,

सोन, ब्रह्मपुत्र, महानदी, गोदावरी, कृकष, काबेरी, नर्वदा और ताप्ती मुख्य हैं। गंगा, सिन्धु, सरस्वती, यमुना, गोदावरी, नर्वदा, काबेरी, सरयू, गोमती, चर्मण्वती (चंचल), क्षिप्रा, वेत्रवती, महानदी और गण्डक पवित्र समझी जाती हैं।

## भारतवर्ष की विशेषतायें

भारतवर्ष संसार भर के सार से संयुक्त है। इसमें सभी तरह की जलवायु है और दुनिया भर की प्रायः सभी चीजें कहीं-न-कहीं यहाँ पाई जाती हैं। समुद्रों और पहाड़ों द्वारा यह देश सारी दुनिया से पृथक् है। खैबर और बोलन की घटियाँ इसके प्राचीन प्रवेश द्वार रहे हैं। इन्हीं के द्वारा सीदियन, शक, कुशान, हूण और मुसलमान इस देश में आये। इसमें से और सब जातियाँ आर्यों में मिलकर एक 'हिन्दू जाति' में परिणत हो गयीं, केवल मुसलमान जाति ही पृथक् रही है। आसाम और तिब्बत की ओर से भी भारत में प्रवेश करने के मार्ग हैं, पर इन मार्गों से कुछ मंगोल जातियों को छोड़कर कोई विजयिनी जाति भारत में नहीं आई।

योरोप की जातियाँ भारत में समुद्र मार्ग द्वारा आयीं। इससे प्रथम की विजयिनी जातियाँ उत्तर से प्रविष्ट होकर दक्षिण की ओर फैलती रही थीं, परन्तु योरोप की जातियाँ दक्षिण से उत्तर की ओर फैली हैं।

हिमाचल पर्वत, जो शताब्दियों से हमारा रक्षक और मेघों का नियन्ता रहा है, कभी समुद्र तल रहा है। भूगर्भशास्त्रियों का कथन है कि पुरातन युग में दक्षिण भारत ही देश था, शेष समुद्र का पेंदा। दक्षिणी भारत से लेकर मैंडागास्कर तथा पूर्वी अफ्रीका तक खुला भूभाग था। भारत में तीन ऋतु प्रधान हैं : जाड़ा, गर्मी और बरसात। कितने ही देशी विदेशी सम्वत् प्रचलित हैं। इनमें विक्रम, ईस्वी और शालिवाह शक सम्वत् का अधिक प्रचार है। अधिकांश निवासी हिन्दू हैं। द्वारिका, बदरीनाथ, जगन्नाथ और सेतुबन्धरामेश्वर उनके चार धाम हैं तथा अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, काँची, उज्जैन और द्वारिका सात पुरी हैं, ये ग्यारहों स्थान पवित्र माने जाते हैं। हिन्दू १२ ज्योतिर्लिंग परम पवित्र मानते हैं, जो विश्वनाथ, घृष्णेश्वर, बदरीनाथ, केदारनाथ, वैद्यनाथ, श्रीनाथ, महाकालेश्वर, सोमनाथ, मल्लिकार्जुन, त्र्यम्बकेश्वर, ओंकारेश्वर तथा रामेश्वर हैं।

पूर्वी भाग में चावल अधिक खाया जाता है। शेष भारत में गेहूँ, जौ, चना, ज्वार, बाजरा। अधिकांश माँस नहीं खाते। दाल और दूध का चलन अधिक है। धर्मों में सनातनी, बौद्ध, जैन, मुसलमान, ईसाई और सिक्ख प्रधान हैं।

भारतवर्ष में ८ जातियों का मिश्रण है। आर्यों की सब में प्रधानता है, उसी में शक, सीदियन, हूण, कुशान मिल गये हैं। अँग्रेजों के पूर्व सारा भारत कभी एक शासक के आधीन नहीं रहा था। बंगालियों, पंजाबियों, कोशलों, महाराष्ट्रों और मदरासियों में परस्पर इतना अन्तर है कि उन्हें एक जाति नहीं कहा जा सकता। सबमें राजनैतिक और सांस्कृतिक भिन्नता है। इनके इतिहास भी अलग-अलग हैं। प्रान्तों में भी जमीन-आसमान का अन्तर है। परन्तु धार्मिक एक्य सबको मिलाये है। उसी के माध्यम से विचारों का साम्य भी है। विज्ञानेश्वर की मित्ताक्षरा सारे देश में मानी जाती है। कुरुक्षेत्र के द्वैपायन, व्यास, ठेठ दक्षिण के शंकराचार्य, उत्तरीय गौतमबुद्ध और दक्षिणात्य आपस्तम्ब के कथन देश भर में माने जाते रहे हैं। किसी ने इस बात की परवाह नहीं की कि कौन किस देश का वासी था। शेषनाग, काश्मीरी, मम्मट और कान्यकुब्जीय भरत समान भाव से काव्याचार्य माने गये हैं। वेद, ब्राह्मण, सूत्र, स्मृतियाँ और पुराण समभाव से देश में पूजित हैं। इस प्रकार राजनैतिक सम्बन्ध, भाषा और जलवायु यदि अखण्ड भारतवर्ष को पूरी एकता नहीं देते तो सभ्यता और विचार की समता यह काम करती है। उसी पर 'भारतीयता' निर्भर है। परन्तु सांस्कृतिक और लाक्षणिक दृष्टि से भारत में एक विचित्रता है। एक तरफ वह संसार का गुरु है, दूसरी ओर शिष्य। प्राचीन सभ्यता और दार्शनिक के आध्यात्मवाद के कारण वह आज की उन्नत जातियों का गुरु माना जाता है, परन्तु कला-कौशल और व्यापार-विज्ञान में वह पश्चिम का सुयोग्य शिष्य रहा है।

## भारतवर्ष के इतिहास का महत्व

भारतीय इतिहास के चार आधार हैं। स्वदेशी साहित्य, विदेशी ग्रन्थ, पाषाण लेख, सिक्के और सम-सामयिक ऐतिहासिक गवेषणाएँ। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा से प्राप्त साधन सबसे अधिक बहुमूल्य हैं।

भारतीय साहित्य में राजतरंगिणी, महाभारत, रामायण, जैनग्रन्थ, जातक और अन्य बौद्धग्रन्थ हैं। वेदों, ब्राह्मणों, सूत्रग्रन्थों और स्मृतियों से भी बहुत ऐतिहासिक मसाला प्राप्त होता है। विदेशी लेख में सबसे प्राचीन लेख फ़ारस के बादशाह हिस्टस्पस के पुत्र डेरियस का है जो उसने 'परसे पुलिस' और 'नक्श रुस्तम' में किया है। दूसरे ग्रन्थ का काल ईसापूर्व सन् ४८६ है। फिर हेरोडोटस का लेख है। सिकन्दर का आक्रमण ईसापूर्व सन् ३२५-२३ में हुआ था और इसके कुछ काल ही बाद सीरिया और मिस्र के राजदूत पटने में मौर्य सम्राट के दर्बार में रहने लगे थे। उनके विवरण महत्वपूर्ण हैं। मेगस्थनीज प्रमुख है। यूनान और इटली के राजसेवक ऐरियन का वर्णन भी महत्वपूर्ण है। ईस्वी प्रथम शताब्दी में चीनी लेखक सोमाचीन ने भारत का अच्छा वर्णन किया है। सन् ३६६ ईस्वी में चीनी यात्री फाह्यान और सन् ६२६ ईस्वी में ह्यूनत्सांग के अनमोल ग्रन्थ हैं। आठवीं शताब्दी में बौद्ध भिक्षु मंजुश्री ने और ग्यारहवीं में अरबी विद्वान अलबरुनी ने अच्छे वर्णन किये हैं। फारसी लेखक फरिश्ता, योरोपियन लेखक बर्नियर, मनूची, विलियम जान्स, कोलब्रुक, विलसन, डा० मिलट पर्जिटर, प्रिंसेप, डा० बरनल, डा० फ्लोट, कीलहार्न तथा रायल एशियाटिक सोसाइटी और सोसाइटी आफ बगाल ने भारतीय इतिहास के सिलसिले में महत्वपूर्ण कार्य किये हैं।

शिलालेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों आदि से भी भारतीय इतिहास का बहुत भेद खुला है। अशोक, समुद्रगुप्त के काल पर उनसे भारी प्रभाव पड़ा है। इन सामग्रियों के अलावा अनेक प्राचीन ग्रन्थ पुराण, रासो आदि प्राप्त हुए हैं जिनसे भारतीय इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

बड़े-बड़े इतिहासकारों ने इस महत्वपूर्ण घटना की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। भारतवर्ष के इतिहास में यह एक उल्लेखनीय बात है कि बार-बार बड़े साम्राज्य कायम होकर टूटते रहे और फिर छोटी-छोटी रियासतें बन गईं। सुदास, रामचन्द्र, जरासन्ध, युधिष्ठिर, अजातशत्रु, अशोक, समुद्रगुप्त, शर्ववर्मन, हर्षवर्धन, अलाउद्दीन, औरङ्गजेब, माधवराव अपने युग मे भारी सम्राट् थे, परन्तु हर बार देश की एकता छिन्न-भिन्न हो गई और वह छोटी-छोटी रियासतों में बँटकर वहाँ माण्ड-लिक राज बन गये। एक बार नहीं बारह-पन्द्रह बार ऐसा ही हुआ। इससे

हमें यह मानना होगा कि भारत में समय के साथ सुविचारों की उन्नति नहीं हुई। खासकर बारहवीं शताब्दी के बाद। एक बात हम यह देखते हैं कि लोगों में सदैव लोक प्रचलित आचारों पर चलने की प्रवृत्ति रही। धार्मिक सहनशीलता भी काफी रही। मुसलमानों को छोड़कर और किसी ने भारत में धार्मिक युद्ध नहीं किये। कानून बनाने का राजाओं ने कभी प्रयत्न नहीं किया। तपस्वी ब्राह्मणों के ग्रन्थ ही राजसभा में कानन की भाँति माने जाते रहे। पेशवाओं के राज्य काल तक ऐसा ही रहा। यह बात स्वीकार करनी होगी कि जितनी उन्नति हिन्दू राज्य ने शासन पद्धति, प्रजा अधिकार आदि के विचारों में की, उतनी तात्कालिक किसी साम्राज्य ने पृथ्वी भर में नहीं की। यदि सुअवसर प्राप्त होता तो अब उन्नत देशों की भाँति भारत भी बारहवीं शताब्दी के पीछे उन्नत होता, परन्तु हिन्दू-मुसलमानों की सामाजिक एवं धार्मिक भिन्नता और संघर्ष के कारण प्रजा और राजा में एकता का भाव मुसलमानी राज्यकाल में नहीं रह गया। मुसलमान अपने को सदा विजयी समझते रहे और पाँचसौ वर्ष तक प्रजा के अधिकारों का समुचित विकास नहीं हो पाया। परन्तु यह बात केवल राजनैतिक अधिकारों एवं विचारों के सम्बन्ध में कही जाती है, अन्य विषयों में भारत के पृष्ठ बहुत उज्ज्वल हैं। हम कह सकते हैं कि बहुत सी बातों में भारत ने संसार की सभ्यता को वर्द्धमान किया है। कोमलता, दया, परदुःख कातरता जो भारत में देखी जाती रही, वह पृथ्वी के किसी अन्य देश में नहीं। शिल्प और स्थापत्य के उदाहरण भी साधारण नहीं हैं। दर्शन-साहित्य और अध्यात्म चर्चा में भारत संसार का गुरु रहा है।

---

: २ :

# मुहम्मद-रसूल अल्लाह

सन् ५७१ ईस्वी की गर्मी के दिनों में शहर बसरा में ऊँटों पर सवार एक क़ाफ़िला आया। वह मक्का से आया था और अरब के दक्खिन प्रदेश में पैदा हुई सूखी वस्तुओं से लदा हुआ था। इस क़ाफ़िले का सरदार अबू-तालिब और उसका बारह वर्ष का भतीजा था। बसरे के नेस्टर धर्मावलम्बी मठ की ओर से उनका आतिथ्य किया गया।

मठ के संन्यासियों को जब मालूम हुआ कि उनका बारह वर्ष का बालक अतिथि अरब के प्रसिद्ध पवित्र मन्दिर काबा के रक्षक का भतीजा है, तो उन्होंने अपने धर्म की प्रशंसा और मूर्ति-पूजा की निन्दा उस बालक के हृदय में प्रवेश कराई। उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि बालक असाधारण बुद्धिमान और नवीन ज्ञान का उत्सुक है। खास कर धर्म सम्बन्धी विवाद में उस का मन बहुत लगता है।

इस बालक का नाम मुहम्मद था। मक्का में उस समय एक काला पत्थर पूजा जाता था, जो उल्कोद्भव था। यह काबा में रक्खा हुआ था और उसके साथ ३६० अन्य मूर्त्तियाँ थीं, जो वर्ष भर के दिनों की सूचक थीं। क्योंकि उस समय साल के दिन यों ही गिने जाते थे।

यह वह समय था, जबकि ईसाई धार्मिक समूह अपने पादरियों की दुष्टता और ऐश्वर्य-तृष्णा के कारण अराजकता की दशा को पहुँच चुका था। पश्चिमी देशों के पोप लोग धन, विलास और शक्ति के ऐसे प्रलोभन देते थे कि बिशप लोगों के चुनाव में भयंकर बध करने पड़ते थे। पूर्वीय देशों में

कुस्तुन्तुनिया इन धर्मान्ध झगड़ों का केन्द्र था, जहाँ अनेक पन्थ और दल बन गये थे।

ये लोग परस्पर अत्यन्त घृणा-भाव रखते थे। अरब उन दिनों स्वतन्त्रता की अपरिचित भूमि थी, जो भारत-सागर से लेकर शाम देश के मरुस्थल तक फैली हुई थी। यह भगोड़ों और झगड़ालू ईसाइयों का आश्रय-स्थल हो रहा था। अरब के मरुस्थल ईसाई संन्यासियों से भर गये थे और वहाँ के बहुतेरे लोगों ने उनके पन्थ को स्वीकार कर लिया था। हवश देश के ईसाई राजे, जो नेस्टर धर्म को मानते थे, अरब के दक्षिणी प्रान्त यमन पर अधिकार रखते थे।

अरब एशिया के दक्षिण-पश्चिम कोण पर एक मरुस्थल है। इसकी लम्बाई १,४०० मील और चौड़ाई ७०० मील है। जन-संख्या ५० लाख के लगभग है। देश भर में पहाड़, पहाड़ी, ऊजड़-जंगल और रेत के टीले हैं। जल का भारी अभाव है। खजूर ही इस देश की न्यामत है। अधिकांश अरब-वासी, जिन्हें ख़ानाबदोश कहते हैं, किसी पहाड़ी नाले के पास ठहर जाते हैं और जब चारापानी का सहारा नहीं रहता तो अन्यत्र चल देते हैं। इस देश में गर्मी इतनी पड़ती है कि दोपहर के समय हिरन अन्धा हो जाता है। आँधियाँ ऐसी आती हैं कि बालू के टीले के टीले इधर से उधर उड़ जाते हैं। यदि यात्रियों का कोई समूह इनके चपेट में आगया तो उसकी ख़ैर नहीं। कहीं-कहीं सर्दी भी बड़े कड़ाके की पड़ती है। सर्दी में वर्षा भी होती है। यही वर्षा का जल नालों और गड्ढों में संचित करके पिया जाता है।

अरब के घोड़े संसार में प्रख्यात हैं। यह पशु पथरीले स्थान पर बड़ा काम आता है, पर रेतीले भागों के काम की चीज तो ऊँट है। यह न केवल सवारी के काम आता है, प्रत्युत् इसका माँस और दूध भी बहुतायत से काम में लाया जाता है। लोग खजूर का गूदा स्वयं खाते और गुठली ऊँटों को खिलाते हैं। अब उनकी दशा में कुछ परिवर्तन हो गया है।

बसरा नगर के नेस्टर मठ के महन्त वहीरा ने मुहम्मद को नेस्टर मत के सिद्धान्त सिखाये। इस विद्वान् संन्यासी के सदुपदेश से मुहम्मद के मन में मूर्ति पूजा से बहुत घृणा हो गई।

जब मुहम्मद मक्का लौटा, तो वह उन्हीं ईसाई संन्यासियों की भाँति जङ्गल में कुटी बनाकर रहने को हीरा नामक पहाड़ी की एक गुफा में, जो

मक्का से कुछ मीलों के अन्तर पर थी, चला गया और ध्यान तथा प्रार्थना में लग गया। उस एकान्त विचार से उसने एक सिद्धान्त निकाला, अर्थात् ईश्वर की अद्वैतता। एक खजूर के वृक्ष की पीठ से टिककर उसने इस विषय के विचार अपने मित्रों और पड़ोसियों को सुनाये और यह भी कह दिया कि इसी सिद्धान्त के प्रचार में मैं अपना सारा जीवन लगा दूँगा। उस समय से मृत्यु तक उसने अपनी उँगली में अँगूठी पहनी, जिस पर खुदा था—'मुहम्मद ईश्वर का दूत।' बहुत दिनों तक उपवास और एकान्तवास करने तथा मानसिक चिन्ता से अवश्य मति भ्रम हो जाता है, यह वैद्य लोग भली-भाँति जानते हैं। इसी हालत में मुहम्मद को प्रायः अन्तरिक्ष वाणियाँ सुनाई पड़ती थीं। फ़रिश्ते उसके सामने आते थे। एक दिन स्वप्न में जिबराइल नाम का फ़रिश्ता उसे अपने साथ आकाश पर ले गया, जहाँ मुहम्मद निर्भय उस भयङ्कर घटा में चला गया, जो सदैव सर्व शक्तिमान् ईश्वर को छिपाये रहती है। ईश्वर का ठण्डा हाथ उसके कन्धे पर छू जाने से उसका चित्त काँपा।

शुरू में उसके उपदेश का बहुत विरोध हुआ और उसे कुछ भी सफलता न हुई। मूर्ति-पूजकों ने उसे मक्का से निकाल दिया। तब उसने मदीने में, जहाँ बहुत से यहूदी और नेस्टर पन्थ वाले रहते थे, शरण ली। नेस्टर-पन्थी तुरन्त उसके मतवालम्बी हो गये। छः वर्षों में उसने केवल १,५०० चेले बनाये। परन्तु तीन छोटी लड़ाइयों में उसने जान लिया कि उसका अत्यन्त विश्वासप्रद तर्क उसकी तलवार है। ये तीनों छोटी लड़ाइयाँ पीछे से बीडर, ओहूद और नशन्स के बड़े युद्ध प्रख्यात किये गये। उसके बाद मुहम्मद बहुधा कहा करता था कि 'बहिश्त तलवार के साये के नीचे पाया जायगा।'

कई एक उत्तम आक्रमणों द्वारा उसनें अपने शत्रुओं को पूर्ण रूप से पराजित किया। अरब की मूर्त्ति-पूजा जड़ से नष्ट हो गई और यह भी मान लिया गया कि वह ईश्वर का दूत है।

जब वह शक्ति और ख्याति की पराकाष्ठा को पहुँचा, तब वह अन्तिम बार मदीने से मक्का की ओर गया। उसके साथ एक लाख चौदह हज़ार भक्त फूलों के गजरों से सजे हुए ऊँटों पर फहराते झण्डे लिये हुए चले। उसके साथ ७० ऊँट बलिदान के लिये थे। उस समय क़ाबे के मन्दिर में ३६० मूर्तियाँ थीं जो एक वर्ष के दिनों की चिह्न थीं। यह मन्दिर प्राचीन

भारत के ढंग का और शाम देशीय देवालयों से मिलता-जुलता चौकोर खुली छत का भवन है। मुहम्मद की आज्ञा थी कि मक्का पहुँचते ही सब मूर्तियाँ तोड़ डाली जाँय। उस समय अबूसुफियान मक्के का सरदार था जिसने प्राणभय से कलमा पढ़ लिया। जब वह नगर के निकट पहुँचा तब उसने यह शब्द कहे—"हे ईश्वर! मैं यहाँ तेरी सेवा के लिए हाज़िर हूँ। तेरे बराबर कोई दूसरा नहीं, केवल तू ही पूजने योग्य है। केवल तू ही सबका राजा है; उसमें तेरा कोई साझी नहीं।"

अपने हाथों से उसने ऊँटों का बलिदान किया, और मूर्त्तियों को छिन्न-भिन्न कर दिया। क़ाबा के व्याख्यान-पीठ से उच्च स्वर से कहा—"श्रोतागण, मैं केवल तुम्हारे समान एक मनुष्य हूँ।" एक मनुष्य से, जो डरते-डरते उसके पास आया, कहा—"तुम किस बात से डरते हो, मैं कोई अलौकिक नहीं हूँ। मैं एक अरब-निवासी स्त्री का पुत्र हूँ, जो धूप में सुखाया हुआ मांस खाती थी।"

मक्का और काबे के मन्दिर को अधिकार में कर लेने पर अरब की बहुत सी जातियाँ मुहम्मद साहब के धर्म में मिल गईं। परन्तु कुछ कबीले अभी ऐसे थे जिन्होंने इस्लाम को अभी स्वीकार नहीं किया था। यह क़बीले बनो, हवाज़िन, सतीफ़, जसर और साद वंश के थे। कुछ पहाड़ी जातियाँ भी इनके साथ मिल गई थीं। एक बार इनसे मुहम्मद साहब ने युद्ध कर इन्हें परास्त किया, यह हनीम का युद्ध प्रसिद्ध है, इसमें मुहम्मद साहब के साथ १२०० सवार थे। इस युद्ध में एक अद्भुत घटना घटी थी—जब लूट का माल इकट्ठा हो रहा था तब एक डोली जाती हुई देखी गई। रविया इब्नेरक़ी ने उसके पीछे घोड़ा दौड़ाया। निकट जाकर देखा तो एक बुड्ढा बैठा था। रविया ने जाते ही बुड्ढे पर वार किया। पर उसकी तलवार टूट गई। बुड्ढे ने हँसकर कहा—'बेटे, अफ़सोस है तेरे माँ-बाप ने तुझे अच्छी तलवार नहीं दी। जा मेरी काठी में तलवार लटक रही है उसे ले आ और अपना काम कर।' रविया ने तलवार निकाल ली और वार करने लगा। बुड्ढ ने कहा—'अपनी माँ से यह ज़रूर कह देना कि मैं दुरैव इब्ने सुम्मा को मार आया हूँ।' रविया ने कहा—'अच्छा कह दूँगा।' इसके बाद वह उसका सिर काटकर घर गया और माँ से उक्त समाचार कहा। माँ ने कहा—'अरे दुष्ट जिसे तूने मारा है उसने तीन बार मेरी और तेरी दादी की इज्जत बचाई थी।' रविया ने मुँह फेरकर कहा—'इस्लाम काफ़िर के अहसान और गुण नहीं मानता।'

मुहम्मद साहब ने मक्का में यह घोषणा कराई थी—"जिन लोगों ने अरब देश में अब तक इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया है उन्हें चाहिए कि चार मास के भीतर-भीतर कल्मा पढ़ लें या अरब को छोड़कर चले जांय। चार महीने बाद यदि कोई क़ाफ़िर अरब में दिखाई देगा तो उसका सिर काट लिया जायगा। इसमें मुसलमानों के मित्रों, रिश्तेदारों और भाइयों का भी लिहाज़ नहीं किया जायगा।"

यमन का इलाका अभी मुसलमान नहीं हुआ था, वहाँ मुहम्मद साहब ने अली इब्ने अबितालिब को फौज लेकर भेजा। उन्होंने अली से कुछ प्रश्न किए तो अली ने तलवार निकाल कर कहा—इस्लाम का जवाब यह तलवार है—और कई विद्वानों के सिर काट लिये। इससे भयभीत होकर सारा यमन मुसलमान हो गया।

वह मदीने में मरा। मृत्यु के समय उसका सिर आयशा की गोद में था। वह बार-बार पानी के बर्तन में अपने हाथ डुबोता था और अपने चेहरे को तर करता था। उसे तीव्र ज्वर और सन्निपात था। अन्त में उसका दम टूटा। उसने आकाश की ओर टकटकी लगाये हुए टूटे-फूटे शब्दों में कहा—"हे ईश्वर, मेरा पाप क्षमा कर। एवमस्तु। मैं आता हूँ।"

मृत्यु के समय उसकी आयु तिरेसठ वर्ष की थी। उसने अपने अन्तिम दस वर्षों में चौबीस युद्ध स्वयं अपने सेनापतित्व में तथा पाँच-छः दूसरों की आधीनता में कराये तथा कुल एक लाख चौदह हजार स्त्री-पुरुषों को मुसलमान बनाया। मृत्यु के समय उसके सम्बन्धियों में चार पुत्रियाँ, चार पुत्र, ८ बाँदियाँ, अठारह स्त्रियाँ, दो दाइयाँ, पाँच भाई, दो बहिन, छ फूफियाँ, बारह चचा, चालीस लेखक, अठावन दास, सोलह सेविकाएँ, सत्ताईस सेवक, आठ द्वारपाल, आठ वकील, पंद्रह बांगी, चार कविता करने वाली स्त्रियां और एकसौ छियानवे कवि थे।

सम्पत्ति में—एक सिंहासन, अनेक लाठियाँ, दो पताकाएँ, छः धनुष, चार भाले, तीन किरीट, तीन ढालें, साठ कवच, दस तलवारें, अनेक वस्त्र, सत्तर भेड़ें, इक्कीस ऊँटनियाँ, तीन गधे, चार खच्चर, बीस उम्दा घोड़े, सात प्याले, एक सिंगार का डब्बा और एक तकिया था।

: ३ :

# ख़लीफ़ा-अबूबकर

मुहम्मद साहब ने मृत्यु के समय अपना कोई उत्तराधिकारी न चना था। इस कारण उसकी मृत्यु होते ही सर्वत्र हलचल मच गई। इस पर असाम्म इब्नेज़ेद ने इस्लाम का झंडा आयशा के दर्वाजे पर खड़ा कर दिया और हथियारबन्द पहरेदार नियत कर दिये। अब यह विचार हुआ कि किसे उत्ताधिकारी चुना जाय।

अबूबकर, उमर, उस्मान और अली ये चार आदमी गद्दी के अधिकारी समझे गये। ख़ानदान और योग्यता की दृष्टि से अली का हक़ था। पर कुछ लोग अबूबकर को, कुछ उमर को और कुछ उस्मान को चुनना चाहते थे। इसके निर्णय के लिए पंचायत बुलाई गई। उसने यह निर्णय किया कि ख़लीफ़ा मक्का के कुरेशों में से बनाया जाय और मन्त्री अन्सारी बनाये जाया करें। इस निश्चय के अनुसार अबूबकर और उमर में से कोई भी ख़लीफ़ा हो सकता था। पर जब इस पर झगड़े होने लगे तो उमर ने आगे बढ़कर अबूबकर को सलाम किया और उनका हाथ चूम कर कहा, "आप हम सबसे बड़े, योग्य व बुद्धिमान् हैं, इसलिए आपके रहते कोई आदमी ख़लीफ़ा नहीं बनाया जा सकता। इस प्रकार अबूबकर प्रथम ख़लीफ़ा चुना गया।"

मृत्यु के समय मुहम्मद साहब का विचार सीरिया और फारस की विजय का था और वे इसकी तैयारी कर चुके थे। अबूबकर ने ख़लीफ़ा होते ही ये आज्ञायें प्रचलित कीं:—

"अत्यन्त कृपालु ईश्वर के नाम से प्रारम्भ करता हूँ। अबूबकर शेष सब मुसलमानों को तन्दुरुस्ती और खुशी की दुआ देता है। ईश्वर तुम पर

दया करे और तुम्हें आनन्द में रक्खे। मैं ईश्वर की प्रशंसा करता हूँ। इस राजाज्ञा द्वारा तुमको सूचना दी जाती है कि, मैं सच्चे मुसलमानों को सीरिया देश भेजना चाहता हूँ कि वे जाकर उसे काफ़िरों के हाथ से छीन लें और मैं जानना चाहता हूँ कि धर्म के वास्ते लड़ना मानो ईश्वरीय आज्ञा मानना है।"

इसके बाद ही सेनापति वली इब्ने अविसफ़ायान ने शाम देश को घेर लिया। युद्ध हुआ। बादशाह की सेना हार गई उसके सेनापति तथा बारह हज़ार सैनिक काम में आये। लूट का बहुत-सा माल मुसलमानों के हाथ लगा जो ख़लीफ़ा के पास भेज दिया।

सेनापति ख़लीद इब्न ने सीरिया को फ़तह किया। मूर्त्ति-पूजकों के प्रति अति उग्र क्रोध उसके मन में था। वह कहा करता था, "मैं उन ईश्वर-निन्दक मूर्त्ति पूजकों की खोपड़ी चीर डालूँगा, जो ऐसा कहते हैं कि अत्यन्त पवित्र सर्व-शक्तिमान् ईश्वर ने पुत्र उत्पन्न किया है।"

उसने दस हजार योद्धाओं को साथ लेकर 'हीरा' नगर पर आक्रमण किया और वहाँ के ईसाई बादशाह को मार गिराया। बादशाह के मरने पर नगर-वासियों ने सत्तर हज़ार मुहरें वार्षिक कर मुसलमानों को देना स्वीकार किया। इस नगर पर अधिकार कर, उसने फ़िरात नदी पर छावनी डाली और ईरान के बादशाह को लिखा कि या तो मुहम्मदी क़लमा पढ़ो या 'जजिया' दो, परन्तु उसे तत्काल बसरे की चढ़ाई में योग देने को बुलाया गया क्योंकि शाम देश को बादशाह हरक्यूलस ने मुकाविले के लिये भारी सेना का संग्रह किया था। वह फ़ौरन पन्द्रह हजार चुने हुए सवार लेकर पहुँचा। उधर ख़लीफ़ा ने कई हज़ार योद्धा और भेज दिये! बसरे पर धावा बोल दिया गया।

बसरा उन दिनों रोम साम्राज्य का एक भारी दुर्ग था। इसी नगर के सामने मुसलमानी सेना ने छावनी डाली। किला बहुत मजबूत था और रक्षक सेना भी बलवान थी। उसका अध्यक्ष रोमेनस विश्वासघात करके मुसलमानों से मिल गया और किले का फाटक खोल दिया। एक व्याख्यान में अपने भाइयों से कहा:—

"मैं तुम्हारा साथ छोड़ता हूँ। इस लोक के लिये और परलोक के लिए भी। मैं उसको नहीं मानता, जो सूली पर चढ़ाया गया था और उनको

भी नहीं मानता, जो उसको पूजते हैं। मैं ईश्वर को अपना मालिक बनाता हूँ और इस्लाम को अपना धर्म, मक्का को अपना धर्म-मन्दिर, मुसलमानों को अपना भाई और मुहम्मद को पैग़म्बर मानता हूँ।"

यह रोमेनस उन हज़ारों विश्वासघातियों में से एक था, जिन्होंनें फ़ारस की विजयों में अपना धर्म खो दिया था।

बसरा से सीरिया की राजधानी दमिश्क सत्तर मील थी। यह शहर बड़ा धनाढ्य, बड़ा गुलजार और व्यापार का केन्द्र था। यहाँ का रेशम और गुलाब का इत्र दुनिया भर में प्रसिद्ध था। ख़लीद अपने पन्द्रह हजार सवारों को लेकर दमिश्क की तरफ़ चला। उसने शरजील तथा अबू अबीदा को, जिन्हें वह फ़रात नदी के निकट छोड़ आया था, चुपचाप लिखा कि वे तत्काल अपनी पूरी फौज लेकर दमिश्क को घेर लें। उन्होंने तीन हजार सात सौ फौज लेकर कूच किया और नगर को घेर लिया। उन्होंने नगरवासियों को सूचना दी कि तत्काल मुसलमान हो जाओ या धन-दण्ड दो; अन्यथा युद्ध करो। बादशाह हरक्यूलस वहाँ से डेढ़ सौ मील दूर एण्टीऑक के महल में था। उसने ख़लीद के पन्द्रह सौ सवारों का आक्रमण समझ कर पाँच हज़ार सेना भेज दी। उसका सरदार जनरल केलूस था। उसका नगर शासक अज़राईल से मतभेद था। जब उसने चालीस हज़ार सेना के प्रचण्ड बल को देखा, तो वह भयभीत हो गया और विश्वासघात करके ख़लीद से कहला भेजा कि अज़राईल को मारते ही नगर पर क़ब्ज़ा हो जायगा। अज़राईल यद्यपि वृद्ध था, पर मैदान में डट गया और वीरता से लड़ा। पर ख़लीद ने दोनों को पकड़ कर क़ैद कर लिया और मुसलमान होने को कहा। अन्त में इन्कार करने पर उन्हें क़त्ल कर दिया।

इस घटना से नगर में हलचल मच गई। नगर के फाटक बन्द कर लिये गये। बादशाह ने ख़बर पाकर एक लाख सेना भेजी। परन्तु ख़लीद ने मार्ग ही में छल-बल से उसे छिन्न-भिन्न करके परास्त कर दिया और सारी युद्ध-सामग्री छीन ली। इस सेना के दो ईसाई नायक पीटर और पॉल वीरता से लड़े और बहुत से मुहम्मदी सैनिकों को काट डाला। पीछे पॉल गिरफ्तार कर लिया गया और पीटर भाले से छेद कर मार डाला गया। पॉल से मुसलमान होने को कहा गया तो उसने कहा कि मैं "लुटेरों और खूनियों के धर्म को स्वीकार न करूँगा।" इस पर इसका सिर काट लिया ग़या।

बादशाह ने फिर सत्तर हज़ार फ़ौज भेजी, जो जनरल वार्डन की अधीनता में थी। पर ये सब नये रंगरूट थे। जनरल वार्डन ने ख़लीद के मारने का एक षड्यन्त्र रचा और एक पादरी को सन्धि चर्चा के लिये भेजा। पादरी ने भण्डाफोड़ कर दिया कि अमुक स्थान पर दस सिपाही तुम्हारे बध के लिये खड़े रहेंगे, और जो दरबान के भेष में होंगे। ख़लीद ने कौशल से दसों सिपाहियों को रात ही में चुपचाप मरवा डाला और बेधड़क सन्धि स्थल पर पहुँच गया। वार्डन को कुछ पता न लगा। उसके निकट जाकर ख़लीद ने वार्डन की गर्दन पकड़ ली और उसी समय उसका सिर काट कर उसकी सेना में फेंक दिया। यह देख कर ईसाई लोग भयभीत हो गये। इसी बीच में मुसलमान सेना ने धावा बोलकर सारी सेना को तहस-नहस कर दिया और उनका सर्वस्व लूट लिया। इस लट में बेतोल धन मिला और उसके लालच से असंख्य अरबों ने युद्ध में सम्मिलित होने की तैयारी की।

इसके बाद दमिश्क-वासी टॉमस को सेनापति बनाकर लड़ने लगे। यह बड़ा भारी तीरन्दाज था। वीर भी था। खूब लड़ा। अब्बास इब्ने जैद उसके तीर से मारा गया। इस पर अब्बास की स्त्री ने मैदान में आकर टॉमस की आँख अपने तीर से फोड़ दी, फिर भी वह लड़ता रहा और सत्तर दिन तक दमिश्क पर कब्जा न होने दिया।

अन्त में सत्तर दिन के बाद उसकी इच्छा के विपरीत नगर के एक सौ अस्सी प्रतिष्ठित आदमियों और पादरियों ने ख़लीद से सन्धि करली और नगर मुसलमानों को सौंप दिया। यह भी निश्चय हो गया कि जो नागरिक बाहर जाना चाहें, मय अपने सामान के जा सकते हैं, परन्तु जो रहेंगे उन्हें जज़िया देना होगा और ईसाइयों की पूजा के लिये सात गिरजे न गिराये जायेंगे। एक पादरी ने विश्वासघात करके एक सौ अस्सी मुसलमानों को गुप्त मार्ग से नगर में बुला लिया। इन्होंने फाटक खोल दिये। सारी सेना नगर में घुस आई और कत्लेआम मच गया। अन्त में ख़लीद ने अपना काले गिद्ध का झण्डा दमिश्क के क़िले पर फ़हरा दिया।

जिन लोगों ने इस्लाम धर्म न स्वीकार किया था, वे नगर छोड़कर बाहर चले गये। टॉमस उनके साथ था। ख़लीद ने चार हज़ार सवार उनके पीछे लगा दिये और जब ये बेचारे आफ़त के मारे एक नदी के किनारे

विश्राम कर रहे थे, स्त्रियाँ भोजन बना रही थीं, बच्चे खेल रहे थे, उन पर वे सैनिक टूट पड़े और लूटकर कत्ल कर डाला। इनमें से सिर्फ़ एक आदमी बचकर भाग सका। बादशाह की पुत्री भी इस झुण्ड में थी, उसे ख़लीद ने यह कह कर छोड़ दिया कि जा और अपने बाप से कह कि मुसलमानी धर्म ग्रहण करे, वरना मैं शीघ्र ही उसका सिर उतारने आता हूँ।

इस तमाम लूट का पाँचवाँ भाग ख़लीफ़ा के पास भेजकर शेष उसने आपस में बाँट लिया। परन्तु माल पहुँचने के पूर्व ही ख़लीफ़ा की मृत्यु हो गई।

कुछ लोगों का कथन है कि उसे विष दिया गया। उसने अपना उत्तराधिकारी उमर इब्नेख़त्ताब को नियत किया। वह तिरसठ वर्ष की आयु में मरा।

---

: ४ :

## ख़लीफ़ा-उमर

इसके बाद उमर इब्नेख़त्ताव ख़लीफ़ा हुआ। इस समय इसकी आयु तिरपन वर्ष की थी। यह वही व्यक्ति था, जो पचीस वर्ष की आयु में मुहम्मद साहब का सिर काटने को घर से निकला था, परन्तु अपनी बहिन के समझाने से कट्टर मुसलमान बन गया था। वह दाहिने हाथ से जितना काम कर सकता था, उतना ही बाएँ से भी कर सकता था। धार्मिक तर्कों का उत्तर वह तलवार की धार से देता था और तर्क करने वाले का उसी दम सिर काट डालता था। उसका डील-डौल भारी था। वह बैठा हुआ भी खड़े पुरुष की बराबर माप का था। शरीर काला, आँखें लाल और सिर बिलकुल सफाचट। सदैव एक चमड़े का चाबुक हाथ में रखता था और बदमाशों तथा मुहम्मद के निन्दक कवियों को उससे पिटवाता था। उसने ख़लीफ़ा होने पर अपना नाम अमीरुल मौमनीन रक्खा। आगे चल कर पदवी के तौर पर यह नाम सभी ख़लीफ़ाओं के नामों के साथ जोड़ा जाने लगा।

इतना होने पर भी वह लूट-मार और ज़ुल्म को नापसन्द करता था। उसने ख़लीद के अत्याचारों की अति निन्दा की, और उसे मुख्य सेनापति के पद से हटाकर उसकी जगह अबू अबीदा को मुख्य सेनापति बनाने का हुक्म भेज दिया। अबू अबीदा ने, जो ख़लीद के आधीन अफ़सर था, वह पत्र छिपा लिया। दुबारा हुक्म आने पर वह मुख्य सेनापति बना तथा ख़लीद उसके आधीन होकर काम करने लगा।

अब उसकी सेना जोरडन नदी के पूर्व की ओर बढ़ी और यह बात स्पष्ट थी कि एशियामाइनर पर हाथ लगाने से पहिले पैलेस्टाइन के मज़बूत

और बड़े-बड़े नगर विजय कर लिये जायँ। पहिले जेरुसलेम पर धावा बोला गया। वहाँ के निवासियों ने खूब तैयारी की थी। पर चार महीने के घेरे के बाद नगर के मुखिया ने कोट की दीवार पर खड़े होकर आत्म-समर्पण की शर्तें पूछीं। उसने सब शर्तें स्वीकार करके एक यह शर्त्त पेश की कि आत्म-समर्पण खुद ख़लीफ़ा के हाथ में होगा।

ख़लीफ़ा उमर इस काम के लिए मदीने से चला। उसने एक गठरी नाज, एक गठरी छुआरे, एक कठौती और एक मशक पानी, एक लाल ऊँट पर लाद कर यह यात्रा की। इस विजेता ने एक ईसाई मुखिया के साथ उस पवित्र नगर में प्रवेश किया और बिना रक्तपात के वह नगर मुसलमानी धर्म का प्रतिनिधि नगर हो गया। सुलेमान के मन्दिर के स्थान पर एक मस्जिद बनवाने की आज्ञा देकर ख़लीफ़ा मदीने को लौट गया। दमिश्क से अबू अबीदा मुस्लिम सेना की कमान लेकर लिपैनस की बर्फीली चोटियों को पार कर उरेटाज़ नदी के किनारे उत्तर की ओर बढ़ा। ख़लीद को अग्र-भाग का सेनापति बना दिया गया। रास्ते में जायशा के हाकिम ने चार सौ मोहरें और बहुत से रेशमी थान देकर सन्धि कर ली। फिर उसने सीकिया की घाटी की राजधानी बालबक और मुख्य नगर एमीसा को घेर लिया। एमीसा का हाकिम तभी मरा था, अतः नागरिकों ने दस हजार मोहर और दो सौ रेशमी थान देकर अपना पिण्ड छुड़ाया। बालबक में सुलेमान का बनवाया सूर्य का एक बहुत सुन्दर मन्दिर था, उसे तोड़ दिया गया और नगर पर अधिकार कर लिया गया।

बालबक और एमीसा के निकल जाने से क्षुब्ध होकर बादशाह हरक्यूलस ने एक लाख चालीस हज़ार सेना मेनुअल की अधीनता में भेजी। वहाँ थोड़ा युद्ध हुआ और मुसलमानी सेना का दक्षिण भाग टूट गया। पर सैनिकगण अपनी स्त्रियों के धर्मोन्मत्त धिक्कारों से फिर रण-भूमि को लौट चले। इधर एक देशद्रोही ईसाई मैनुअल को ऐसे स्थान पर ले गया, जहाँ कई मुसलमान ताक लगाये बैठे थे। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने मेनुअल को मार डाला। सेनापति के मरते ही सेना के पैर उखड़ गये और वह भाग खड़ी हुई। बहुत सी सेना नदी में डूब गई और कुछ जङ्गल में भटक गई। रोमन सेना पूर्ण रीति से पराजित हुई। चालीस हज़ार मनुष्य कैद किये गये और

बहुत से मार डाले गयें। इसके बाद सारा देश विजयिनी-मुसलमान सेना के आधीन हो गया। ईसाइयों को इन शर्तों पर रहने दिया गया :—

१—ईसाई नये गिरजे न बनवायें।

२—गिरजों के दरवाज़े रात-दिन मुसलमानों के लिए खुले रहा करें।

३—गिरजों पर घण्टे न बजाये जायें।

४—सलीब न गिरजों पर लगाई जाय, न बाज़ार में दिखाई जाय।

५—अपने बच्चों को कुरान न पढ़ायें।

६—अपने धर्म का प्रचार न करें।

७—अपने किसी भाई को मुसलमान होने से न रोकें।

८—मुसलमानों के सामने कपड़े, जूते और पगड़ी न पहनें।

९—कमर में पटका बाँधा करें।

१०—अरबी भाषा में बोलें।

११—मुसलमानों के आने पर खड़े हो जायँ और जब तक बैठने की आज्ञा न मिले, खड़े रहें।

१२—तीन दिन तक मुसलमान मुसाफिर को अपने घर में रक्खें।

१३—शराब न बेचें।

१४—घोड़े पर काठी न कसें।

१५—शस्त्र न धारण करें।

१६—किसी आदमी को, जो मुसलमान के यहाँ नौकर रह चुका हो, नौकर न रक्खें।

इसके बाद अबू अबीदा ने हलब पर धावा बोल दिया। रास्ते में अरस्ता का किला पड़ता था, उसके सरदार ने मुसलमान बनने या कर देने से साफ़ इन्कार कर दिया; इसलिए उससे सुलह करके बीस सन्दूक बतौर अमानत के वहाँ रख दिये गये। उनमें सशस्त्र योद्धा थे। उन्होंने समय पाकर किले का फाटक खोल दिया और उस पर अधिकार जमा लिया।

हलब का किला सीरिया भर में सबसे मज़बूत था। यहाँ धन और व्यापार की प्रचुरता थी। पाँच मास तक किले पर घेरा रहा। अन्त में एक ईसाई के विश्वासघात से मुसलमान किले में घुस गये, और बहुत से आदमियों को काट डाला। बाकी लोगों ने डर कर क़लमा पढ़ लिया। किले के

अधिपति का लड़का युकला भी क़ल्मा पढ़ कर अब्दुल्ला हो गया। उसने अपने चचा के बेटे थ्योडस को भी अपना साथी बनाना चाहा, जो एजाज के किले का स्वामी था। अब्दुल्ला सौ मुसलमानों को लेकर वहाँ पहुँचा। पर थ्योडस सावधान हो गया था। उसने इन सब को कैद कर लिया। परन्तु थ्योडस का बेटा युकला की लड़की पर मोहित था। उसने कहा कि यदि आप अपनी लड़की की शादी मेरे साथ कर दें तो मैं आपको साथियों सहित छुड़ा दूँ और स्वयं भी मुसलमान हो जाऊँ। युकला ने यह बात स्वीकार कर ली। अतः उस पितृ-द्रोही ने उन्हें छुड़ाकर हथियार भी दे दिये। किला अन्त में मुसलमानों के हाथ आ गया और थ्योडस के पुत्र ने अपने पिता को भी क़त्ल कर दिया।

अब सीरिया का राजधानी अन्ताकिया पर धावा बोलने का निश्चय हुआ और इसके लिए यह जाल रचा गया कि युकला अपने सौ साथियों समेत ईसाइयों के भेष में अन्ताकिया जा पहुँचा और बादशाह हरक्यूलस से कहा कि मुसलमानों ने मुझे लूट लिया है, मैं जान बचाकर आपकी शरण आया हूँ। बादशाह ने कहा—"तुम तो मुसलमान हो गये थे?" उसने कहा—"यह सब जान बचाने के लिए झूठ-मूठ किया था।" बादशाह ने उस पर विश्वास कर सौ साथियों समेत उसे अपने पास रख लिया और अन्त में अपना मन्त्री बना लिया। इसके बाद कुछ और मुसलमान क़ैद करके किले में लाये गये। इस प्रकार जब काफ़ी मुसलमान किले में हो गये, तब अबू अबीदा ने हमला बोल दिया। बादशाह युकला की सम्मति से काम करता रहा। अन्त में, अवसर पाकर उसके साथियों ने फाटक खोल दिया। मुसलमान 'अल्लाहो अकबर' का नारा लगाते भीतर घुस आये। बादशाह सिर धुनता जहाज पर सवार हो कुस्तुन्तुनिया भाग गया।

अब योहला ईसाई-वेश में साथियों समेत त्रिपली जा पहुँचा। वहाँ के लोग उसके मुसलमान बनने और छल-कपट की बात नहीं जानते थे। उन्होंने उसे बादशाह का सेनापति समझ कर बड़ा सत्कार किया। अवसर पाकर उसने फाटक खोल कर तथा मुसलमानों को बुलाकर किला फ़तह करा लिया। इसी प्रकार धोखे से उसने वाहर को भी फ़तह कराया।

इसी बीच में देश में भयानक महामारी फैली और उसमें देश भर

तबाह हो गया। सेनापति अबू अबीदा, इसके बड़े-बड़े योद्धा तथा पचीस हज़ार सैनिक मारे गये।

ख़लीद ने एक कवि को अपनी प्रशंसा करने के उपलक्ष में तीस हज़ार रुपए इनाम दे डाले थे। इस कसूर में उसे ख़लीफ़ा ने उसी की पगड़ी से बाँधकर अपने सामने बुलवाया और उसे पद-भ्रष्ट करके अपने घर चले जाने का हुक्म दिया। मरते वक्त उसके घर में सिर्फ एक घोड़ा और कुछ शस्त्र निकले थे।

इस प्रकार मुसलमानों ने निर्भय होकर सारे एशिया-माइनर को रौंद डाला। वह सीरिया देश, जिसे सीज़र के समतुल्य महान् पाम्पी ने सात सौ वर्ष पहले रोमन राज्य में मिलाया था; वह सीरिया, जो ईसाइयों का परम पवित्र स्थान था और जहाँ से सम्राट हरक्यूलस ने एक बार फ़ारिस के आक्रमणकारी को परास्त किया था, मुसलमानों के हाथ आ गया। सम्राट हरक्यूलस जब कुस्तुन्तुनिया को भाग रहा था तब जहाज पर बैठ उसने बड़े कष्ट से अदृष्ट होते हुए पहाड़ों पर उदास दृष्टि डाली और कहा—"सीरिया, मेरा प्रणाम ले, और यह प्रणाम सदैव के लिए है।"

इसके बाद टिपोली, टायर और कैसरिया ले लिये गये। लेवेतस पहाड़ की लकड़ी और फ़ुनेशिया के मल्लाहों से एक जबर्दस्त बेड़ा तैयार किया गया, जिसने रोम के प्रतापी बेड़े को हेलेस पाण्ट में भगा दिया। साइप्रस, शेडरू और साईक्लेडीज़ तबाह कर डाले गये। और वह पीतल की बड़ी मूर्ति, जो संसार के सात आश्चर्यों में गिनी जाती थी, एक यहूदी को बेच दी गई, जिसने उसके पीतल नौ सौ ऊँटों पर लादा था। अब ख़लीफ़ा की सेनाएँ कृष्णा-समुद्र तक बढ़ गयीं और कुस्तुन्तुनिया के मुकाबले में जा डटीं।

इन विजयों ने मुसलमानों के राज्य को सिकन्दर और रोम के साम्राज्य से भी बड़ा बना दिया। टेसीकोन के घेरे जाने पर ख़जाना सिलहख़ाना और बहुत सा लूट का माल मुसलमानों के हाथ लगा और यही कारण है कि निहाबन्द की विजय को वे लोग सब विजयों की विजय कहते हैं। एक ओर तो वे कैस्पियन सागर तक बढ़े और दूसरी ओर हिंगारिस नदी के किनारे-किनारे परसी पोलीस तक दक्षिण की ओर फैले। केडीसिया की लड़ाई में फ़ारिस के भाग्य का भी निबटारा हो गया। फ़ारिस-नरेश उस नगर के

स्तूपों और मूर्तियों को छोड़ कर जो सिकन्दर के बड़े भोज की रात्रि से अब तक उजाड़ पड़ा था, अपने प्राण बचाने को बसरे के रेगिस्तानों में भाग गया। अन्त में अक्सस नदी के किनारे वह पकड़ कर मार डाला गया। उस नदी के पार का देश भी अधीन कर लिया गया और उस देश से कर-स्वरूप वार्षिक दो लाख अशर्फ़ियाँ बहुत दिनों तक मिलती रहीं। चीन के सम्राट् ने मुसलमानों से मित्रता की और फल-स्वरूप सिन्ध नदी के किनारे तक इस्लामी झण्डा फहराने लगा।

जिन सेनापतियों नें सीरिया विजय में नाम पाया था, उनमें अमर, इब्ने आरु नाम का एक जनरल था, जिसके भाग्य में मिस्र का विजेता होना लिखा था। वह पूर्व की विजयों से सन्तुष्ट न होकर पश्चिम को मुड़ा। उसके साथ पाँच हजार सवारों का जत्था था। उसकी दृष्टि अफ्रीका महाद्वीप पर थी। मिस्र उसका द्वार था। उसने मिस्र में पहुँचते ही वहाँ के ईसाइयों ने कहलाया कि हम यूनानियों के साथ इस लोक तथा परलोक का कोई सम्बन्ध रखना नहीं चाहते और सदैव के लिए रोम के अत्याचारी और उसकी कैल्सीडोन की सेवा को सौगन्ध खाकर त्यागते हैं। उन्होंने ख़लीफ़ा को सड़कें और पुल बनवाने के लिए तथा सेना की रसद और ख़बरें पहुँचाने के लिये शीघ्र ही कर देना स्वीकार कर लिया।

मोम्फ़िस नगर, जो प्राचीन फ़रऊन के समय में राजनगरों में था, विश्वासघातियों की सहायता से शीघ्र जीत लिया गया, और सिकन्दरिया भी घेर लिया गया। बहुत से आक्रमण और धावे हुए। अन्त में २२ हज़ार सैनिकों के कट जाने पर चौदह महीने के घेरे के बाद उस नगर का पतन हुआ। अमरू ने ख़लीफ़ा को इस बड़े नगर के विषय में लिखा था—"इसमें चार हज़ार महल, पाँच हज़ार स्नानागार, चार सौ नाट्यशालाएँ, बारह हज़ार दुकानें केवल तरकारियों-भाजियों की और चालीस हज़ार यहूदी साहूकार राज्य कर देने वाले हैं।"

हरक्यूलस नें अपने कुस्तुन्तुनिया के राजमहल में यह दुखदायक खबर सुनी तो इतना मर्माहत हुआ कि सिकन्दरिया के पतन के एक मास बाद ही मर गया।

इसी सिकन्दरिया में वह जगत्विख्यात पुस्तकालय था जिसमें पृथ्वी-भर के विद्वानों की हस्तलिखित दस लाख पुस्तकें थीं। जब उमर ने ख़लीफ़ा

से पूछा कि इन पुस्तकों का क्या किया जाय, तब ख़लीफ़ा ने लिखा कि यदि उनका विषय कुरान के अनुकूल न हो तो उन्हें रखने की कोई आवश्यकता नहीं। अतएव उन्हें नष्ट कर दिया जाय। अमरू ने उन्हें ईंधन के तौर पर जलाने के लिये हम्मामों में बाँट दिया और उनसे छः मास तक पाँच हज़ार हम्माम गर्म होते रहे।

मिस्र देश रोम-राज्य का अन्न-भण्डार था, इसी कारण इसे लौटा लेने की बड़ी-बड़ी कोशिशें की गईं। अमरू को दो बार फिर चढ़ाई करनी पड़ी। उसने जान लिया कि समुद्र की ओर से खुला रहने से उस पर बड़ी सुगमता से आक्रमण किये जा सकते हैं। उसने कहा—"ख़लीफ़ा की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि यदि तीसरी बार आक्रमण किया जाय तो मैं सिकन्दरिया को ऐसा बना दूँगा कि वह प्रत्येक मनुष्य के लिये वेश्या के घर के समान हो जायेगी।" उसने अपने कथन से बढ़कर काम कर दिखाया और शहरपनाह ढहवा दी। इससे यह नगर बिलकुल उजाड़ हो गया।

वह बीस वर्ष बाद अक़्वानील नदी से एटलाण्टिक समुद्र तक बढ़ आया और अपने घोड़े को सागर-जल में हिलाकर ज़ोर से कहा कि—"हे सर्वोपरि ईश्वर, यदि यह समुद्र मेरा रास्ता न रोकता तो मैं पश्चिम के अज्ञात राज्यों में चला जाता और तेरे पवित्र नाम तथा अद्वैतता का उपदेश देता, और उन विद्रोही जातियों को, जो तेरे सिवा अन्य देवताओं को पूजती हैं, तलवार के हवाले करता।"

अब साद के पास ६० हज़ार सवार थे। वह उन्हें लेकर मदाइन राजधानी की ओर बढ़ा। बादशाह मज्दगुर्द घबरा गया। सरदारों में फूट पड़ गई। वह अपने रत्न और परिवार सहित वहाँ से भागकर हल्दान पहुँचा। राजधानी में मुसलमान घुस पड़े और उसे लूट-खसोट कर तहस-नहस कर डाला।

जलूला नगर में फिर बादशाह की सेना से मुठभेड़ हुई। यह लड़ाई छः मास चली। अन्त में जलूला और हल्दान मुसलमानों के हाथ में आ गये और बादशाह रै नगर को भाग गया।

इस बीच में साद से नाराज़ होकर ख़लीफ़ा ने उसे पदच्युत कर दिया और उसका घर फूँक दिया। इस बीच में अवकाश पाकर ईरान के बादशाह ने डेढ़ लाख सेना फिर एकत्रित की। उधर नेमान की अधीनता में एक

विशाल मुसलमानी सेना नें आकर नेहावन्द को घेरा। पारसी सेनापति बूढ़ा और कमजोर था, फिर भी उसने नेमान को मार डाला। पर उसके मरने पर हफ़ीज़ सेनापति बना और उसने सेनापति फ़ीरोज़को मार डाला। पारसी सेना भाग गई। इस युद्ध में एक लाख पारसी मारे गये। और लूट में बादशाह यज्दगुर्द का एक जवाहरात से भरा हुआ डिब्बा मिला, जो ख़लीफ़ा के पास भेज दिया गया। उसे उसने यह कहकर लौटा दिया कि ये कङ्कड़-पत्थर हमारे काम के नहीं, इन्हें बेचकर मुसलमानों को बाँट दो। हफ़ीज ने उन्हें तीन अरब, बीस करोड़ रुपयों में बेचा। उसके पास उस समय चालीस हज़ार सिपाही थे, अतः प्रत्येक को अस्सी-अस्सी हज़ार रुपये मिले। इसके बाद हमदान और रै को दख़ल करके लूट लिया गया और खून की नदी बहा दी। फिर वे आजुरबाद जा पहुँचे और यहाँ का प्रसिद्ध मन्दिर ढा दिया। बादशाह की तीन बेटियाँ गिरफ्तार करके ख़लीफ़ा के पास भेज दी गईं। जब वे ख़लीफ़ा के सामने पहुँचीं तो उसने एक मुसलमान को हुक्म दिया कि इनके जेवर उतार लो। इस पर उन्होंने डाँटकर कहा—"ख़बरदार! हाथ न लगाना, जेवर हम उतारे देती हैं।" यह सुनकर ख़लीफ़ा की आँखों में खून उतर आया और उसने उन्हें नंगी करके कोड़े मारने का हुक्म दिया। पीछे अली ने ख़लीफ़ा को समझाकर ठण्डा किया और उन अबलाओं की जान बचाई। इनमें से एक लड़की से अली ने अपने बेटे हसन का विवाह किया, दूसरी बेटी अब्दुल रहमान इब्ने अबूबकर को और तीसरी अब्दुल्ला इब्ने उमर को दे दी गई।

ईरान मसीह के जन्म से कोई चार सौ वर्ष पूर्व बड़ा शक्तिशाली राज्य था। इसकी सीमा पश्चिम में यूनान और पूर्व में हिन्दुस्तान तक फैली हुई थी। विश्व-विजयी सिकन्दर ने इस देश को मसीह से ३२८ वर्ष पूर्व छिन्न-भिन्न कर डाला था। रोमन्स ने भी इसकी शक्ति को क्षीण कर दिया था।

मुहम्मद साहब ने अपने जीवन-काल में ईरान के बादशाह खुशरू से कहलाया था कि हमारा धर्म ग्रहण कर लो। इस पर उसने हुरमुज़ के अपने हाकिम को कहला भेजा था कि या तो मुहम्मद को क़त्ल कर दो या क़ैद कर लो, वह पागल है। मुहम्मद की मृत्यु के बाद ख़लीफ़ा अबूबकर ने ख़लीद इब्नेवली को ईरान पर चढ़ाई करने को तैयार किया, पर फिर उसे सीरिया भेज दिया। अब उमर ने अबू अबीदा को एक हज़ार सवार देकर ईरान

भेजा। उस वक्त वहाँ की गाड़ी पर खुशरू की दूसरी बेटी आरज़म दुख़्त थी। मुसलमानी सेना ने पहुँचते ही लूट-मार मचा दी। रानी ने तीस हज़ार सवार रुस्तम इब्न फर्रुख़जाद के साथ भेज दिये। पीछे से उसने मन-सहदेव के साथ तीन हज़ार सवार और तीस जङ्गी हाथी रुस्तम की मदद को भेजे। जब अबू अबीदा अपनी सेना सहित फ़रात नदी पर पुल बाँधकर पार हो रहा था, रुस्तम के धनुषधारियों ने वाण-वर्षा आरम्भ कर दी। इससे बहुत से मुसलमान मारे गये। अबू अबीदा घोड़े से गिर गया और हाथी से कुचला जाकर मर गया। इसके बाद सेना भाग निकली।

ख़लीफ़ा उमर ने यह सुनकर फिर एक बड़ी सेना मस्ना की अधीनता में भेजी। मस्ना ने ईरानी सेनापति को द्वन्द युद्ध में परास्त करके मार डाला और ईरानी सेना छिन्न-भिन्न हो गई। इसके बाद साद इब्ने अवि-विकास छः हज़ार सवारों सहित मदीने से चला। और मार्ग में ही लूट और स्त्रियों के लालच से उसके पास तीस हज़ार सवार मस्ना तक पहुँचते-पहुँचते हो गये। इसी बीच में मस्ना मर गया और उसकी पत्नी को साद ने जो साठ वर्ष का था, अपनी स्त्री बना लिया। इसके बाद रुस्तम से युद्ध हुआ, मुसलमानों को और भी सहायता मिल गई। भारी घमासान युद्ध हुआ और रुस्तम का सिर काट लिया गया। ईरानियों की पराजय हुई। उनकी तीस हज़ार सेना कट गई। इस युद्ध में मुसलमान भी सात हज़ार मारे गये। यह युद्ध क़ासदिया में हुआ था। इस विजय के उपलक्ष में फ़रात और दजला नदी के संगम पर बसरा नगर ख़लीफ़ा उमर की आज्ञा से बसाया गया, जो एक मुसलमान को गुलाम के तौर पर दिया गया था। एक दिन मज्दगुर्द की लड़की ने खिड़की से उसे देखकर कहा—"तुम पर लानत है कि अपने मुल्क, बादशाह और धर्म के लिए कुछ नहीं कर सकते।" फिरोज़ को शाहज़ादी की बात चुभ गई। वह मौका पाकर मसजिद में घुस गया। ख़लीफ़ा गर्दन झुकाये नमाज पढ़ रहा था। उसने उसकी गर्दन में छुरी घुसेड़ दी। बहुत से मुसलमान दौड़ पड़े। वह पाँच-सात को मार कर स्वयं भी मर गया। ख़लीफ़ा उन्हीं घावों से सातवें दिन मर गया। मृत्यु के समय उसकी आयु तिरसठ वर्ष की थी। उसके समय में सीरिया, मिस्र, पैलेस्टाइन और ईरान मुसलमानों के हाथ में आये। छत्तीस हज़ार नगर और किले छीनें गये, चालीस हज़ार मन्दिर और गिरजे ढाये गये और कई लाख ग़ैर-मुस्लिम क़त्ल किये गये।

: ६ :

# ख़लीफ़ा उस्मान और अली

उमर की मृत्यु के बाद छः आदमियों की कमेटी ख़लीफ़ा चुनने को बैठी। अली से पूछा गया कि तुम क़ुरान व हदीस को क़ानून मान कर अबूबकर और उमर के मार्ग पर चलोगे? उसने कहा—मैं क़ुरान व हदीस को तो स्वीकार करूँगा, पर अबूबकर और उमर की पाबन्दी नहीं। मैं अपनी बुद्धि से काम लूँगा। इस पर कमेटी ने उस्मान से पूछा। उस्मान ने स्वीकार किया।

इसलिए उस्मान इब्ने-अफ़ान ख़लीफ़ा हुए। इनकी उम्र सत्तर वर्ष की थी। गद्दी पर बैठते ही इन्होंने यज्दगुर्द को क़त्ल करने को फौज़ ईरान भेजी। क्योंकि उमर मरती बार कह गये थे कि उसका नामोनिशान दुनिया से मिटा देना। बेचारा बादशाह इधर-उधर मारा-मारा और छिपता फिरता रहा। उसके साथियों ने उसे पकड़वा देने की सलाह की, पर उसे मालूम होगया और वह अपनी पगड़ी के सहारे मर्व के क़िले से उतर कर अँधेरी रात में भागा। रास्ते में एक नदी थी, उसे पार उतारने के लिये मल्लाह ने ४) रु० माँगे, पर उसके पास रुपये न थे। उसने लाखों रुपये मूल्य की क़ीमती अंगूठी देनी चाही, पर मल्लाह ने न ली। इतने में मुसलमान पहुँच गए और उसे टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इस प्रकार चार हजार वर्ष से चमकता हुआ पारसियों का सितारा अस्त हो गया।

उस्मान ने अमर इब्ने-यास को मिस्र से बुला कर उसकी जगह अब्दुल्ला इब्ने-साद को दे दी। अब्दुला सैनिक था प्रबन्धक नहीं। इससे लोग नाराज़

होगए और मिस्र में ग़दर मच गया। बादशाह कान्स्टेन्टाइन ने सिकन्दरिया को छीन लिया। मुसलमान वहाँ से मार भगाए गए। तब फिर उस्मान भेजा गया। इसने सिकन्दरिया को फिर छीना। पर ख़लीफ़ा ने फिर अब्दुल्ला को भेज दिया। इस बार उसने उत्तर अफ्रीका पर धावा बोलने का निश्चय किया और चालीस हज़ार सेना लेकर त्रिपली पर छावनी डाल दी। उधर से जनरल ग्रेगरस एक लाख बीस हज़ार रोमन्स सेना लेकर मुकावले में आ डटा। कई दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में एक दिन धोखे से ग्रेगरस मार डाला गया और उसकी युवती कन्या कैद कर ली गई। सेना भाग गई और नगर पर अधिकार कर लिया।

मुहम्मद साहब पढ़े लिखे न थे। वे अपनी चाँदी की मुहर वाली अँगूठी को दस्तखत की भाँति काम में लाते थे, जिस पर मुहम्मद रसूलल्लाह खुदा था। यही अँगूठी पूर्व के दोनों खलीफ़ा काम में लाते रहे परन्तु इस ख़लीफ़ा ने उसे खो दी।

इस ख़लीफ़ा ने क़ुरान की प्रतियों का मुहम्मद साहब की स्त्री हफ़सा की प्रति से मुकाबला कराया। जिनमें पाठ भेद था उन्हें जलवा दिया और हफ़सा वाली प्रति को कई नकलें कराकर सीरिया, मिस्र और फ़ारस आदि देशों में भेजी। वर्तमान क़ुरान यही है।

फिर यह उसी मेम्बर की सीढ़ी पर खड़े होकर वाज़ करते थे जिस पर मुहम्मद साहब। इस ख़लीफ़ा ने लाखों रुपये अपने सम्बन्धियों को और मुन्शी मखान को बाँट दिये थे, इससे मुसलमान इससे बहुत नाराज होगए। उनके छल-कपट के भी कुछ भेद खुले। इस पर बहुत से मुसलमान मदीने में आगए और उसे तोबा करने को कहा—पर उसने ऐसा नहीं किया। मिस्र के कुछ नागरिकों ने शिकायत की कि अब्दुल्ला को वहाँ का हाकिम न रख कर मुहम्मद बिन अबूबकर को बना दें। इस पर उसने ऐसा ही किया पर एक दूत चुपचाप अब्दुल्ला के पास भेज कर कहला दिया कि मुहम्मद को मार डालो। इससे क्रुद्ध होकर मिस्र वाले मदीने पहुँचे और कैफियत तलब की तथा गद्दी छोड़ने को कहा। उसने इन्कार किया। इस पर लोगों ने उसके घर में घुस कर उसे कत्ल कर दिया। मृत्यु के समय वह बयासी वर्ष का था।

उसकी लाश तीन दिन तक वैसे ही पड़ी रही और जब सड़ने लगी तब बिना नहलाए और नए कपड़े पहिनाए वैसे ही गाड़ दी गई।

इसके बाद अली इब्ने-अबूतालिब ख़लीफ़ा हुआ। यह व्यक्ति दयालू, न्याय प्रिय और शान्त था। परन्तु ख़लीफ़ा पद के लिए कठोर स्वभाव पुरुष की आवश्यकता थी, इसलिए अली के ख़लीफ़ा होते ही भीतरी विद्रोह फूट पड़ा। मुहम्मद साहब की प्यारी विधवा आयशा इसकी शत्रु थी। उधर तलहा, जबीर और मुआबिया भी ख़िलाफ़त के उम्मीदवार थे। इन लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया कि उस्मान के वध में अली का षड्यन्त्र था। इससे लोग भड़क गये। मुआबिया ने दमिश्क की मस्जिद में उस्मान का खून में रँगा हुआ कुरता बाँस पर लटका कर खड़ा कर दिया, जिसे देखते ही सीरिया के लोग आपे से बाहर होगए। मुआबिया ने छः हज़ार सेना देखते-देखते एकत्र करली। उधर अली का दल भी काफी था। आयशा ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि मैं खुदा और रसूल के नाम पर तलहा और जबीर के साथ बसरा जाती हूँ। जो मुसलमान मेरा साथ देना चाहें और उस्मान के खून का बदला लेना चाहें, वे मेरे पास चले आवें। मैं खाना, कपड़ा, घोड़ा और हथियार दूँगी। उसके साथ हज़ारों आदमी हो गए। पर जब वह बसरे पहुँची तो वहाँ के हाकिम उस्मान ने फाटक न खोला और उल्टे मुक़ाबिले को तैयार होगया, खूब गाली-गलौज हुई। अन्त में कौशल से यह लोग शहर में घुस गए और उस्मान को क़ैद कर लिया। बसरा पर आयशा का अधिकार हो गया। अली ने नौ सौ आदमी साथ लेकर बसरे पर चढ़ाई कर दी। मार्ग में तीस हज़ार सेना उसे और मिल गई। युद्ध हुआ, आयशा के साथी मारे गए और वह क़ैद हुई। पर अली ने उसे आदर-पूर्वक चालीस दासियों सहित मदीने भिजवा दिया।

अब अली का एक मात्र शत्रु—मुआबिया बच गया था। उसने उस्मान के खून में रँगा हुआ कुर्ता बाँस में लटका कर दमिश्क की मस्जिद में खड़ा किया, और अस्सी हजार सेना लिये साम की सीमा पर आ डटा। अली ने नव्वे हज़ार सेना लेकर उस पर धावा बोल दिया। युद्ध हुआ और पैंतालीस हज़ार आदमी मुआबिया के तथा तीस हज़ार आदमी ख़लीफ़ा के मारे गए। अन्त में सन्धि चर्चा चली। फलतः परस्पर दोनों दल गाली-गलोज करने

लगे। गाली-गलोज का यह रिवाज जुमे की नमाज़ के पीछे अब तक चला आता है।

अब एक तीसरा और सम्प्रदाय खड़ा हुआ, जिसका नाम खार्ची था। अब्दुल्ला इब्ने-बहब इसका ख़लीफ़ा बना। इस दल में पच्चीस हज़ार आदमी थे। इस पर अली ने एक झण्डा खड़ा करके घोषणा की कि जो अमुक समय तक इसके नीचे चला आयगा, क्षमा किया जावेगा। इस पर इक्कीस हज़ार आदमी चले आए। बाकी चार हज़ार अब्दुल्ला के पास बच रहे, जो वीरता से लड़ कर काम आये। सिर्फ ६ आदमी जिन्दा बचे।

उधर मुआबिया ने मिस्र में विद्रोह फैला दिया। अली साठ हजार सैना लेकर मिस्र पर चला। वे जो नौ खार्ची बचे थे उन्होंने निश्चय किया कि अमर, अली और मुआबिया, ये ही मुस्लिम-विद्रोह की जड़ हैं, इसलिए इन तीनों को एक साथ ही क़त्ल कर देना चाहिए। तीन आदमियों ने यह काम अपने ऊपर लिया। अमर और मुआबिया तो किसी भाँति बच गए, पर अली पर कोफ़ा में अब्दुलरहमान ने नमाज पढ़ते वक्त वार किया, जिससे उसकी खोपड़ी फट गई और तीन दिन के बाद, तिरसठ वर्ष की आयु में वह मर गया। उसके पन्द्रह पुत्र और सोलह पुत्रियाँ थीं। अली के पक्ष वाले 'शीआ' कहलाते हैं और वे इसके पूर्व के तीनों ख़लीफ़ाओं को मानने से इन्कार करते हैं। और मुहम्मद साहब के बाद अली ही को ख़लीफ़ा मानते हैं। कहा जाता है कि अली का जन्म काबे में हुआ था।

---

: ७ :

# तदनंतर

इसके बाद हसन इब्ने अली ख़लीफ़ा हुआ, इसकी आयु तीस वर्ष की थी और यह शान्त, सुशील और साधु स्वभाव का था, पर इसका छोटा भाई हुसेन वीर था, उसने साठ हज़ार फौज लेकर मुआबिया पर चढ़ाई की, पर भीतरी कलह के कारण हार गया। ख़िलाफ़त छोड़ दी, अन्त में हसन की एक स्त्री ने उसे विष देकर मार डाला। जिस यजीद ने यह प्रलोभन दिया था कि मैं तेरे साथ विवाह कर लूँगा। पीछे उसे इसी अपराध पर क़त्ल करवा दिया।

इसके बाद मुआविया ख़लीफ़ा हुआ और उसने कुस्तुन्तुनिया पर फ़ौज भेजी पर उसकी हार हुई। उसने कुस्तुन्तुनिया के ईसाई बादशाह को तीस हज़ार अशर्फी, पचास दास-दासियाँ और पचास अरबी घोड़े प्रति वर्ष कर देना स्वीकार किया, और तीस वर्ष के लिए सन्धि कर ली। इसके बाद उसने दस हज़ार सवार अफ्रीका पर भेजे और वहाँ जंगल कटवा कर किरवान नामक एक शहर बसाया। वह बीस वर्ष तक ख़लीफ़ा रह कर मरा। इसके बाद इसका बेटा यजीद चौंतीस वर्ष तक की आयु में ख़लीफ़ा हुआ। मुआबिया ने अपने मृत्यु काल में अपने बेटे यजीद से कहा था कि तुम्हें चार आदमियों से भय है—

१—हुसेन इब्ने अली से। परन्तु यह न्यायी और तुम्हारे चचा का बेटा है, उसके साथ अच्छा बर्ताव करना।

२—अब्दुल्ला इब्ने उमर। यह सीधे मिजाज का है तुम्हें ख़लीफ़ा स्वीकार कर लेगा।

३—अब्दुल रहमान। मूर्ख और कानों का कच्चा है, जुआरी भी है। वह तेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा।

४—अब्दुल्ला इब्ने जबीर। धूर्त और वीर है। मुकाबिले आवे तो वीरता पूर्वक लड़ना। मेल चाहे तो सन्धि कर लेना और अधिकार में लाकर क़त्ल करवा देना।

गद्दी पर बैठते ही उसने मदीने के हाकिम वलीद को लिख भेजा कि हुसेन इब्ने अली और अब्दुल्ला इब्ने ज़बीर से हलफ़नामा लेकर भेजो। वजीद ने उन दोनों को बुलाकर क़त्ल करने की सलाह की, पर वे दोनों सचेत हो गये और मदीने से भाग गये और यजीद के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। कोफे के लोगों ने उन्हें सहायता देने का वचन दिया और डेढ़ लाख के लगभग मनुष्य हुसेन के साथ हो गये।

यह समाचार सुन यज़ीद ने बसरे के हाकिम को लिखा कि कोफा पहुँच कर वहाँ के हाकिम नेमान को निकाल दो और कोफा पर अधिकार कर लो। बसरे का हाकिम अब्दुल्ला बड़ा चालाक था। वह अकेला बीस आदमी लेकर कोफे पहुँचा। कोफे वाले उसे हुसेन समझे और किले में ले गये जहाँ पहुँचते ही उसने वहाँ के हाकिम का सिर काट लिया। यह देख जो सेना हुसेन के पक्ष में इकट्ठी हुई थी भाग खड़ी हुई। हुसेन को यह भेद मालूम न था। वह कोफे में तैयारियों की ख़बर पाकर अपने बाल-बच्चों सहित कोफे को चल दिया था। सीमा प्रान्त पर सरदार हुर कुछ सवारों के साथ सामने आया, हुसेन समझा स्वागत को आया है। पर उसने कहा कि मुझे कोफा के हाकिम अब्दुल्ला ने भेजा है कि मैं आपको अपने साथ कोफा ले चलूं। हुसेन ने उसे मिलाने की कोशिश की पर वह नहीं माना।

इसके बाद इसका बेटा अब्दुल मलिक ख़लीफ़ा हुआ। इसकी आयु चालीस साल की थी। अब्दुल्ला अब भी मक्का और मदीने में ख़लीफ़ा माना जाता था। इसलिए इसने बैतुल मुकद्दस पैलेसटाइन को हज की जगह नियत किया। उधर लोगों ने अली के क़त्ल का बदला लेने की तैयारी की। मुन्त-किम उनका ख़लीफ़ा बना और उसने पचास हज़ार आदमियों को क़त्ल किया। अब्दुल मलिक ने उसके सामने बड़ी भारी सेना भेजी। और वह युद्ध में बासठ वर्ष की आयु में मारा गया। इसके बाद मसअब हाकिम बना और

वह भी मारा गया। जब उसका सिर ख़लीफ़ा के सामनें लाया गया, उसके क़ातिल को एक हज़ार अशर्फी इनाम देने का हुक्म दिया, परन्तु क़ातिल ने इन्कार करते हुए कहा—मेरी उम्र सत्तर साल की है, मैंने समय का खूब रंग देखा है। इसी कोफे के किले में हुसेन का सिर अब्दुल्ला इब्ने के सामने लाया गया। इब्ने जयाद का मुन्तकिम के सामने और मुन्तकिम का मसअब के सामने। और अब असअब का सिर आपके सामने लाया गया है। बुड्ढे की बात सुनकर ख़लीफ़ा बहुत शर्माया और किले को मिसमार करने का हुक्म दिया।

अब्दुल्ला अब भी मक्का और मदीने का ख़लीफ़ा बना बैठा था। उस पर चढ़ाई करने को ख़लीफ़ा ने हज्जाज को सेना देकर भेजा। अब्दुल्ला वीरता से लड़कर मारा गया। इससे मक्का और मदीना भी अब्दुल मलिक के हाथ आ गया। अब सिर्फ खुरासान रह गया था। उसे भी हज्जाज ने फतह कर लिया, अतः वह कासदिया की तरफ रवाना होगया। रास्ते में उमर अपने चार हज़ार सवार लिये मिला और कहा—कोफे के आदमी आप से फिर गये हैं। आप मक्के की तरफ चले जायँ। साथ ही उसने अब्दुल्ला को भी लिख भेजा कि हुसेन को मक्के की तरफ,चले जाने दें। पर उसने स्वीकार न किया। और उमर को लिखा कि हुसेन को पानी मिलना बन्द कर दो। और यजीद की प्रभुता स्वीकार कराओ।

पानी बन्द होने से हुसेन और उसके परिवार के आदमी तड़पने लगे। फिर भी हुसेन ने यजीद को ख़लीफ़ा नहीं माना। अन्त में अब्दुल्ला ने लिखा कि यदि वे नहीं मानते तो उनका सिर काट लो और शरीर को घोड़ों से रौंदवा दो। यह हुक्म पाकर उमर ने फिर हुसेन को समझाया पर उन्होंने न माना। और अपने साथियों से कहा—मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ कर आप लोग चले जायें। पर उन लोगों ने हुसेन के साथ मरना स्वीकार किया। हुसेन के साथ बत्तीस सवार और चालीस प्यादे थे। सबों ने स्नान करके कपड़े पहने, इत्र लगाया और मरने को तैयार हो गये। इतने में तीस सवार शत्रु सेना से निकल कर हुसेन से आ मिले।

लड़ाई शुरू हो गई। थुमरशक अफसर था। उसने हुसेन के डेरों में आग लगाने का हुक्म दिया। इस पर हुसेन की स्त्री और बच्चे चिल्लाने

लगे। अन्त में उसका दिल भर आया और वह चला गया। एक-एक आदमी जाता और मरता था। अन्त में हुसेन बहुत से घाव खाकर गिरा और एक सैनिक ने उसका सिर काट लिया। यह लड़ाई कर्बला में हुई जिसमें हुसेन के सतत्तर और शत्रु के बयासी आदमी मारे गये। हुसेन के मारे जाने पर उसका सारा माल-असबाब लूट लिया गया। उमर हुसेन का सिर लिए रात को कोफा अपने घर में पहुँचे तो उसकी स्त्री ने कहा—पाजी कुत्ते मुझे मुँह न दिखा। यह कह कर घर से निकल गई और सारी उमर उसका मुँह न देखा। दूसरे दिन जब अब्दुल्ला के सामने हुसेन का सिर रखा गया तो उसने उस पर थूका और ठोकर मारकर एक तरफ़ को फेंक दिया।

इसके बाद उसने सब स्त्री-बच्चों को क़त्ल का हुक्म दे दिया। पर सरदारों के मना करने पर उन्हें हुसेन के सिर के साथ यज़ीद के पास भेज दिया। यज़ीद ने उन्हें ख़ातिर से रखा और कुछ दिन बाद मदीने पहुँचा दिया। इसी घटना का शोक मुसलमान दस दिन तक मुहर्रमों में मनाते हैं।

अब इस शत्रु को नष्ट कर वह अब्दुल्ला इब्ने ज़बीर की तरफ़ मुड़ा। क्योंकि उसे मक्का और मदीने वालों ने अपना ख़लीफ़ा बना लिया था। यज़ीद के सम्बन्ध में इतने अपवाद फैल गए थे कि सारा अरब उसका विरोधी होगया था। यह सब सुन कर यजीद ने मदीने पर सेना भेजने की तैयारी की पर कोई सेनापति राजी न हुआ। अन्त में मुस्लिम इब्ने अक़बा ने मन्जूर किया और बारह हजार सवार और पाँच हजार पैदल लेकर मदीने की तरफ़ बढ़ा। पहले तो उसने सबको समझाया। अन्त में युद्ध हुआ। मदीने वाले भाग निकले। और मुसलिम नंगी तलवार लिए नगर में घुस गए। सबसे पहले अली इब्ने हुसेन को ऊँट पर सवार कुछ सिपाहियों सहित शहर से बाहर भेज दिया। फिर बनी उम्पा के एक हज़ार आदमियों को, जो मखान के घर में थे अपने पास बुलवा लिया। फिर शहर में लूटमार और कत्ले आम का हुक्म दे दिया। हज़ारों मारे गए, हज़ारों कैद हुए। मदीने की वह इस प्रकार ईंट से ईंट बजाकर वह मक्के की तरफ गया। पर मार्ग में ही मारा गया। तब हसीन इब्ने हमीर सेनापति बना और जब यह मक्का पहुँचा तो अब्दुल्ला इब्ने ज़बीर मुक़ाबिले में आया और शीघ्र ही परास्त हुआ। हसीन ने नगर में घुसते ही काबे पर हाथ साफ किया और उसे मिट्टी में मिला

दिया। इसी समय यज़ीद के मरनें की ख़बर एक सवार नें दी। अब्दुल्ला नें यज़ीद के मरने की घोषणा मस्जिद में कर दी और हसीन ने कहा कि अब किसलिए लड़ते हो सन्धि कर लो। हसीन ने सन्धि की और दमिश्क की ओर चला गया।

यज़ीद के बाद मुआबिया दूसरा उसका बेटा गद्दी पर बैठा। उस समय उसकी आयु इक्कीस वर्ष की थी। उसकी दृष्टि बहुत कमज़ोर थी। छः मास हुकूमत करके उसने गद्दी त्याग दी और मर गया। इसके बाद मखान ख़लीफ़ा बनाया गया। और यह शर्त तै रही कि इसके बाद खलीद इब्ने यज़ीद ख़लीफ़ा बनाया जाय। उधर मक्का मदीने में अब्दुल्ला इब्ने जबीर ख़लीफ़ा बन गया था। साथ ही ख़लीफ़ा इब्ने ज़याद भी खिलाफ़त के लिये प्रयत्न कर रहा था। मखान की नीयत अधिकार पाने पर बदल गई और अपने बेटे अब्दुल मलिक को उत्तराधिकारी बनाने का षड्यन्त्र रचने लगा। जब ख़लीफ़ा को यह पता लगा तो उसनें मखान को अपनी माँ से ज़हर देकर मरवा डाला। वह बेचारा एक ही वर्ष ख़िलाफ़त कर सका।

वहाँ के हाकिम का सर काट लिया गया। अब ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक तमाम मुस्लिम साम्राज्य का एक-छत्र स्वामी हो गया। इस समय भी रोम सम्राट् भूमध्यसागर पर अधिकार रखते थे। अब ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक नें कारयेज नगर को जो उस समय सब नगरों से बड़ा था और उत्तर अफ्रीका का राज्य नगर था, ले लेने के लिये दृढ़ संकल्प किया। सेनापति हुसेन ने चालीस हज़ार सेना द्वारा उसे वीरता पूर्वक विजय किया और जलाकर भस्म कर दिया और असंख्य स्त्री-पुरुषों को काट डाला। हुसेन के बाद मूसा अफ्रीका का हाकिम बना और सारा अफ्रीका बुरी तरह लूटा-खसोटा गया। इसने तीन लाख स्त्री-बच्चों को भेड़-बकरी की तरह नाकाम कर दिया, कुछ को क़त्ल कर दिया। और उसने लूट का माल और दास, दासी ख़लीफ़ा के पास भेजे जिनके पहुँचने के पूर्व ही वह मर गया।

इस प्रकार ईसाई धर्म के पाँच बड़े राज्य नगर जिनमें जेरूसलम और सिकन्दरिया भी थे, जला दिये गये। इसके बाद शीघ्र ही कुस्तुन्तुनिया का भी पतन हो गया। इस समय मुसलमानों की तलवार ने अल्टाई पर्वत से लेकर अटलाण्टिक समुद्र तक और एशिया के मध्य से लेकर अफ्रीका के पश्चिमीय

किनारे तक अपना अधिकार जमा लिया था। संसार के इतिहास में इतना शीघ्र कोई धर्म नहीं फैला। अन्त में यह ख़लीफ़ा साठ वर्ष की आयु में मरा। उसके बाद उसका बेटा वलीद ख़लीफ़ा हुआ। वह लम्बा, मोटा, काला और मजबूत आदमी था। उसकी तिरसठ स्त्रियाँ और बहुत सी दासियाँ थीं।

गद्दी पर बैठते ही उसने दमिश्क में मस्जिद बनाने के लिये ईसाइयों का एक प्रसिद्ध गिरजा सेन्टजान जो बहुत प्राचीन और सुन्दर बना हुआ था, जबरदस्ती गिरवा दिया।

इसके बाद वह यूरोप पर टूट पड़ा। उसका भाई मुस्लिम एशिया माईनर को रौंदता हुआ यूरोप तक जा धमका और हजारों स्त्रियों को पकड़ कर दासी बनाकर बेच डाला। इधर मुस्लिम का बेटा तुर्किस्तान में घुस गया और समरकन्द, बुखारा और ख्वारिज्म पर दख़ल जमा लिया। उसका सेनापति मूसा अण्डालूसिया पर चढ़ गया। स्पेन का सेनापति जुलियन उससे मिल गया। पादरियों ने भी विश्वासघात किया। इससे युद्ध में स्पेन का राजकुमार मारा गया। तब बादशाह ने यह घोषणा की कि पन्द्रह से पचास वर्ष तक की आयु के सब लोग सेना में भरती हो जायँ। इस प्रकार विशाल सेना लेकर वह डट गया पर विश्वासघातियों की मदद से उसे मुसलमानों ने परास्त कर दिया। जिरक्स में भयानक युद्ध हुआ, स्पेन का बादशाह रोडरिक हार कर भाग गया और अन्त में गाडस्लकिवर नदी में डूब कर मर गया।

वलीद इस समय मर गया और उसका बेटा सुलेमान ख़लीफ़ा हुआ। इसने सर्व प्रथम मूसा के परिवार को क़त्ल करवा दिया और मूसा की जगह हुर को स्पेन का सूबेदार बनाया। उसने निश्चय किया कि सेना में जितने सैनिक हैं या तो इन्हें मुसलमान बना लिया जाय या क़त्ल कर दिया जाय। उसने जुलियन सेनापति को बुलाया जिसके विश्वासघात की सहायता से स्पेन को फतह किया गया था। पर वह हुर का अभिप्राय समझ गया और भाग गया। उसकी स्त्री और बच्चे घर में घेर लिये गये। उसने बच्चे को कब्र में छिपा दिया, पर वह ढँढ़कर निकाल लिया गया। स्त्री ने हुर के पैरों पर गिर कर दया की प्रार्थना की पर उसने कहा कि काफ़िर के लिये रहम नहीं है। उसने काज़ी को हुक्म दिया कि बच्चे को किले के बुर्ज पर ले चलिये। यही किया गया। बच्चा डरकर काज़ी से चिपट गया, वह बहुत रोया

चिल्लाया पर उसे बुर्ज से नीचे फेंक दिया गया। इसके बाद सब स्त्री-पुरुषों को बुलाकर एक खाई में खड़ा किया गया। उनके बीच में जूलियन की स्त्री भी थी। सबसे कलमा पढ़ने को कहा गया, लेकिन इन्कार करने पर खाई में मिट्टी डालकर सबको जिन्दा ज़मींदोज़ करा दिया। उधर एक दल सेनापति अब्दुल रहमान की अध्यक्षता में फ्रांस पर टूट पड़ा और उसे कुचल डाला। वह लायर नदी तक पहुँच गया। तमाम गिरजों और शहरों को लूट लिया गया। चमत्कारी पादरियों की कुछ भी न चली।

अन्त में सन् ७३२ में चार्ल्स मारहेल ने इस आक्रमण से टक्कर ली। रात-दिन की कड़ी लड़ाई के बाद अब्दुल रहमान मारा गया और मुसलमान पीछे लौट आए। इस लड़ाई के विषय में इतिहासकार मि० गिवन कहते हैं कि जिबरालटर पहाड़ी से लायर नदी के किनारे तक अर्थात् एक हज़ार मील से अधिक दूर तक मुसलमानों की विजयी सेना बढ़ती चली गई थी और यदि इतनी ही दूर वे और आगे बढ़ जाते तो पोलैण्ड और स्काटलैण्ड के पहाड़ों तक पहुँच जाते।

अब इटली की बारी आई। सन् ८४६ में रोम का जो अपमान धर्मान्ध मुसलमानों ने किया था वह बड़ा ही नीच भाव से किया था। एक छोटी सी मुसलमानी सेना टाईगर नदी पार करके नगर के कोट के सामने आ डटी। यह फाटक तोड़ कर नगर में जाने योग्य शक्तिशाली न थी। सेण्ट पीटर और सेण्टपोल के समाधिस्थलों को इसने विध्वंस करके लूट लिया। सेण्ट पीटर के गिरजा की चाँदी की वेदिका तोड़कर उसकी चाँदी अफ्रीका भेज दी गई। यह पीटर की वेदी रोमन ईसाइयों के धर्म का मुख्य चिह्न थी।

इस प्रकार रोम नगर का सर्वाधिक अपमान हुआ। एशिया माईनर के गिरजे मिट चुके थे। बिना आज्ञा लिये कोई ईसाई जेरूसलम नगर में पैर नहीं रख सकता था और सुलेमान के मन्दिर के सम्मुख ख़लीफ़ा उमर की मस्जिद खड़ी थी। सिकन्दरिया नगर के भग्नावशिष्ट भाग में से दया की मस्जिद उस स्थान का चिह्न बता रही थी जहाँ भयानक मारकाट के बाद कुछ मनुष्य दया करके छोड़ दिये गये थे। कारपेज नगर में सिवा काले खण्डहरों के कुछ न बचा था, सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न मुसलमानी राज्य का विस्तार अटलांटिक समुद्र से लेकर चीन की दीवार तक और कैस्पियन समुद्र

किनारों से लेकर हिन्दमहासागर के किनारों तक फैला हुआ था। अब भी उसकी यह हविस बाक़ी थी कि वह सीज़र के उत्तराधिकारियों को उनकी राजधानी से निकाल दे।

परन्तु अरब के आन्तरिक झगड़ों ने यूरोप की रक्षा कर ली। तीन समूहों के जो अपने भिन्न-भिन्न रंग के झण्डे रखते थे ख़लीफ़ा के राज्य के तीन टुकड़े कर डाले। उमैया वंश वालों का झण्डा सफेद रंग का था। फातिमा वंश वालों का हरा था और अब्बारियों का काला था। यह अन्तिम झण्डा मोहम्मद के चचा के समूह का था। इस झगड़े का यह फल हुआ कि दसवीं शताब्दी में मुसलमानी राज्य तीन भागों में विभक्त होकर बग़दाद, काहिरा और कारडोआ के राज्य बन गये। मुसलमानों की राजनैतिक एकता का अन्त होगया और ईसाई संसार को दैवी सहायता से रक्षा मिली। अन्त में अरबी धर्म धीमा पड़ा और तुर्की और बर्बर शक्तियाँ उठीं।

मुसलमान बड़े भारी मग़रूर होगये थे और वे पूर्ण रीति से घरेलू झगड़ों में फँसे हुए थे। आकले ने लिखा है कि मुसलमानों का कोई ऐसा मामूली अफ़सर न था जो तमाम यूरोप की सम्मिलित सेनाओं से हारने पर भी अपनी भारी बेइज्जती न समझता रहा हो। इनकी घृणा के विषय में यह उदाहरण काफी है कि रोमन सम्राट् सेनीफरस ने ख़लीफ़ा हारूं रशीद के पास एक पत्र भेजा था, जिसका उत्तर यह दिया गया था कि—अत्यन्त दयालु ईश्वर के नाम पर मुसलमानों का ख़लीफ़ा हारूं रशीद रोमिय कुत्ते सेनीफरस के नाम पत्र लिखता है, "हे क़ाफिर-माता के पुत्र ! मैंने तेरा पत्र पढ़ा, उस का उत्तर तू सुनेगा नहीं, देखेगा।" और इस पत्र का उत्तर रक्त और अग्नि के अक्षरों में फीजिया के मैदानों में लिखा गया।

यह सम्भव है कि हारी हुई जाति अपने देश को फिर से,जीतले, परन्तु स्त्री हरण का प्रतिकार नहीं है। यह अमर पराजय है। जब अबूउबैदा ने रगरीट आक नगर लेने की ख़बर ख़लीफ़ा उमर के पास भेजी थी, तब उमर ने उसे कोमल शब्दों में मलामत दी थी कि तूने वहाँ की औरतों के साथ सिपाहियों को ब्याह क्यों नहीं करने दिया। वे शब्द आज्ञा पत्र पर इस ढंग के थे कि यदि वे लोग सीरिया में ब्याह करना चाहते हैं तो उन्हें कर लेने दो और जितनी लौंडियों की उन्हें आवश्यकता हो उतनी लौंडियाँ रख सकते हैं

बस यही बहु-विवाह का कानून था कि पराजित देशों से स्त्रियाँ अपहरण की जायें। फिर यही बात सदैव के लिये मुसलमानी रीति में समा गई। ऐसे दम्पत्तियों की संतान अपने विजेता पिताओं को संतान होने पर गर्व करती थीं। इस नीति के प्रभाव का इससे अच्छा प्रमाण नहीं दिया जा सकता जो उत्तरीय अफ्रीका में मिलता है। नवीन प्रबन्धों को करने में इस बहु-विवाह प्रथा का बे रोक प्रभाव बहुत ही विचित्र हुआ। एक पीढ़ी से कुछ ही अधिक समय में खलीफ़ा के अफ़सरों ने उसे सूचना दी कि राज्य कर बन्द कर दिया जाय क्योंकि इस देश में पैदा हुए बालक सब मुसलमान हैं और सभी अरबी भाषा बोलते हैं।

---

: ८ :

# खिलाफत का अंत

मि० नौल्डेथी के शब्दों में ख़लीफ़ा लोग—उनके इमाम, धमगुरु, अमीर, काडी कुमार और मजिस्ट्रेट थे। इस प्रकार मुस्लिम सत्ता में शुरू ही से प्रादेशिक और धार्मिक अधिकार संयुक्त हो गये थे। और इसलिये इस्लाम 'धर्म' होने के साथ एक राष्ट्र भी हो गया है।

आठ जून सन् ६२५ में हज़रत की मृत्यु हुई। तब से सन् ६६१ तक चार ख़लीफ़ा हुए। अबूबकर, उमर, उस्मान और अली। पाठकों ने देखा होगा कि ख़िलाफत का यह अल्पकाल मुस्लिम इतिहास में कितना महत्वपूर्ण हुआ। इन दिनों धर्म की महत्ता थी, और ख़लीफा ग़रीबी से निर्लोभ भाव से विरक्त पुरुष की भाँति रहते थे। अब सन् ६६१ से १२५८ तक ख़िलाफत के इतिहास का दूसरा काल आता है। इसी समय मुसलमानों में शिया-सुन्नी का भेद हुआ। इन दिनों तक अरबियों का दौरदौरा था और उन्होंने ख़िलाफ़त को वंशगत प्रादेशिक राज्य का रूप दे दिया था। ख़लीफ़ा चुनने की प्रथा बन्द हो गई थी और पिछले ख़लीफ़ा के पुत्रादि उत्तराधिकारी माने जाते थे। सबसे प्रथम मोआविया ने अपने सामने ही अपने पुत्र को नामज़द किया था। इसके बाद ख़लीफ़ाओं का जीवन ही बदल गया। अब तो उनमें न उमर की सी सादगी ही रह गई थी और न अली की सी साधुता। मुसलमानों में भेद हो गये थे। विदेशों में जो मुसलमान बनाये जाते थे उन्हें वे विशेषाधिकार नहीं प्राप्त होते थे जो अरबों को प्राप्त थे। शिया और सुन्नी दोनों सम्प्रदाय परस्पर शत्रु थे। खास कर जबसे हुसैन की मृत्यु का बदला

क्रूरतापूर्वक लिया गया। शियाओं का कहना था कि खलीफ़ा का चुनाव हो। पर सुन्नी कहते थे—नहीं, खलीफ़ा अपना उत्तराधिकारी नामज़द कर सकता है यह मतभेद अभी तक चला आता है।

जब खिलाफ़त की बागडोर इनके हाथ से जाती रही तब अरबों का आधिपत्य भी नष्ट हो गया। कुछ दिन फारित वाले खलीफ़ा रहे पीछे तुर्क ने यह स्थान लिया।

सन् १२६१ से १५१७ तक खिलाफ़त का तीसरा काल आता है। इस काल में खिलाफ़त का प्रादेशिक अधिकार बहुत कुछ जाता रहा। इस्लाम धर्म की राज्य सत्ता इन दिनों मिस्र के सुलतान मामलूक और कुछ अन्य मुसलमान बादशाहों के हाथ में रही। खलीफ़ाओं का एक उत्तराधिकारी अहमद ताहिर सीरिया में रहता था। मिस्र के बीवर वंश के बादशाह ने उसे अपने यहाँ बुलाया और उसने एक खुतवा पढ़वाया। खलीफ़ा ने उसे सम्राट् की पदवी दी और इस्लाम के प्रचारार्थ निरन्तर लड़ते रहने की सम्मति दी। यह खलीफ़ा सन् १२६२ में मंगोलों से लड़ते हुए काम आया। इसके बाद बीवरों ने उसी के एक वंशज को खलीफ़ा बना लिया।

सन् १५१७ में तुर्की के प्रथम सलीम ने मिस्र पर धावा किया और मामलूक सुलतान को पराजित करके उस पर अपना अधिकार कर लिया। उसी समय उसने खलीफ़ाओं के अन्तिम वंशधर से खलीफ़ा की पदवी प्राप्त की, तब से लेकर अब तक उसी वंश के बादशाह खलीफ़ा होते आये हैं। यह समय की बलिहारी है—एक समय था जब तुर्क ने इस्लामी सभ्यता को प्रबल टक्कर से छिन्न-भिन्न कर दिया था। सन् १२६८ में एक तुर्क बादशाह ने बग़दाद पर चढ़ाई करके उसे इस भयानक रीति से लूटा कि फिर आज तक इस्लाम का राजनैतिक या धार्मिक क्षेत्र वह नहीं बन सका। इस तुर्क आक्रमणकारी का नाम हलाकू था। उसके विषय में लिखा है—"वह आया, आकर उसने नाश किया। आग लगाई, क़त्ल किया और सब कुछ लूटकर चलता बना।" परन्तु जब से हलाकू के वंशजों ने इस्लाम धर्म ग्रहण किया तब से उन्होंने इस्लाम धर्म की रक्षा और प्रसार करने में कुछ उठा नहीं रक्खा।

सुल्तान सलीम अनेक कारणों से मुस्लिम धर्म का संरक्षक कहाया। अली के बाबा मुहम्मद ने अन्तिम रूप से पूर्वीय रोम के साम्राज्य को नष्ट

करके उसके स्थान पर इस्लाम का साम्राज्य स्थापित किया था। अपने समय में वह सर्वाधिक शक्तिशाली मुसलमान बादशाह था और स्वयं ख़लीफ़ा वंशज ने उसे खलीफ़ा की पदवी दी थी। जिस समय सलीम ने ख़लीफ़ा की पदवी को ग्रहण किया, उस समय मुल्लाओं और मौलवियों में भारी विवाद उठ खड़ा हुआ था। अन्त में जब मक्का में उसे ख़लीफ़ा स्वीकार कर लिया गया तो यह विवाद मिट गया। अलबत्ता शिया लोगों ने उसे ख़लीफ़ा न माना। क्योंकि वे किसी भी नामजद व्यक्ति को खलीफ़ा स्वीकार नहीं करते।

तुर्क का जब कोई बादशाह गद्दी पर बैठता तो कैरों में मिस्र के और अय्यूब की मस्जिद में तुर्की के उलमा सभा करके उसे ख़लीफ़ा क़रार देते। और ख़िलाफत की सनद देने की रस्म पूर्ण की जाती। सुल्तान को अय्यूब की मस्जिद में उलमाओं की स्वीकृति और शेखुलइस्लाम के हाथ से अली की तलवार ग्रहण करनी पड़ती। तब से वह मक्का, मदीना, करबला, जेरूसलम आदि मुस्लिम तीर्थों का संरक्षक माना जाता था। वह पवित्र चिह्न जैसे हज़रत मुहम्मद का लबादा, अली की तलवार और उनका झण्डा तथा अन्य वस्तुओं को पास रखता था। इस प्रकार तुर्क सुलतान अब तक ख़लीफ़ा होते आये हैं।

जब योरोप में महायुद्ध हुआ। और तुर्क के सुलतान ने जर्मनी का साथ दिया। तब संसार भर के मुसलमानों में हलचल मच गई। परन्तु चतुर लायड जार्ज ने इस अशान्ति को दूर करने के लिये घोषणा कर दी कि हम युद्ध के बाद मुसलमानों के धार्मिक चिह्नों और काबे को कोई हानि नहीं पहुँचावेंगे। हम तुर्क के उन मन्त्रियों से लड़ रहे हैं जो हमारे शत्रु से मिल गये हैं। ख़लीफ़ा से हमारा कोई झगड़ा नहीं है। परन्तु युद्ध के बाद विजयी मित्र राष्ट्रों ने तुर्क साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर डाला। महायुद्ध से प्रथम तुर्क साम्राज्य का क्षेत्रफल सत्रह लाख दस हज़ार दो सौ चौबीस वर्ग मील था और आबादी दो करोड़ बारह लाख तिहत्तर हज़ार नौ सौ थी। पर सीवर की सन्धि के आधार पर तुर्की के अफ्रीका के प्रदेश छीन लिये गये और अरब, मक्का, मदीना आदि तीर्थों पर ख़लीफ़ा का कोई अधिकार न रहा। मेसापोटामिया और पेलेस्टाइन को माण्डेन्ट के बहाने से ब्रिटेन ने क़ब्ज़े में कर लिया। जेरूसलम-करबला पर भी ख़लीफ़ा का अधिकार न रहा। इस

प्रकार जर्मन महायुद्ध ने खिलाफ़त का श्राद्ध कर दिया। खलीफ़ा अपने महल में लगभग नज़रबन्द कर दिये गये और अठारह लाख वर्ग मील में फैला हुआ तुर्क साम्राज्य अब लगभग एक हज़ार वर्ग मील ही रह गया।

सन् १६२० में यह सन्धि हुई। उसी समय एक तुर्क युवक ने तुर्क राष्ट्र की रक्षा के लिये एशिया माइनर में तलवार उठाई। उसने पूर्वी एशिया माइनर पर क़ब्जा कर लिया और बोलशेविकों से सन्धि करके टर्की के बहुत प्रदेश वापस कर लिये। इसके बाद यूनानियों से बहुत से प्रदेश छीन लिये। दो वर्ष में उसने खासी ख्याति पैदा कर ली। प्रारम्भ में उसे अंग्रेजों ने एक विद्रोही डाकू समझा। पर अन्त में उससे सन्धि करनी पड़ी और इससे तुर्क और कमालपाशा की प्रतिष्ठा बहुत ही बढ़ गई।

: ९ :

## इस्लाम के धर्म सिद्धान्त

हज़रत मुहम्मद साहब के कथनानुसार एक लाख चौबीस हज़ार नबी संसार में हो चुके हैं। एक सौ चार पुस्तकें ईश्वरीय हैं। अठारह हज़ार योनि सृष्टि में हैं। इस्लामी साहित्य में मुहम्मद साहब की छः लाख उक्ति हैं। हजरत मुहम्मद साहब के कथनानुसार मुसलमानों के लिए नीचे लिखे बाईस आदेश हैं :—

१—पाँच वक्त नमाज़ पढ़ना।

२—मक्का की हज करना।

३—चालीसवाँ हिस्सा ख़ैरात करना।

४—एक मास रोज़ा रखना।

५—अल्लाह और रसूल को मानना।

६—बहिश्त में हूरो-ग़िलमाओं को मानना।

७—ईद मनाना।

८—पंक्ति बाँध कर नमाज़ पढ़ना।

९—मक्का की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ना

१०—चार स्त्रियों तक विवाह करना।

११—आवागमन न मानना।

१२—शराब न पीना।

१३—क़ुरान की आज्ञा मानना।

१४—क़ाफ़िर को क़त्ल करना।

१५—क़ाफ़िरों का धन छीन लेना।
१६—कपट-युद्ध करना।
१७—मूर्ति खण्डन करना।
१८—सूअर को हराम समझना।
१९—शुक्रवार की ख़ास नमाज़ पढ़ना।
२०—अज़ान देना।
२१—क़यामत के समय ख़ुदा का न्याय होना।
२२—भला-बुरा करने वाला ख़ुदा है।

यद्यपि साधारणतया यह समझा जाता है कि मुसलमानों का धर्म ग्रंथ 'क़ुरानशरीफ़' अरबी भाषा में लिखा गया है। परन्तु अल्लामः जलालुद्दीन सूयूती अपनी पुस्तक 'तफ़सीरे इत्तेकान फी उल्मिल-क़ुर्आन' में लिखते हैं कि कुर्आन में चौहत्तर भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं। अपने पक्ष के समर्थन में वे अबूबक्रिब्ने अनसारी, इब्ने अबीबक्र अनसारी, सईदिब्ने मनसूर, अबूबक्र वास्ति, मुल्ला जलालुद्दीन, सआलवी, इब्ने जोजीजर कशी अबूनुईम, अबू हातिम, किरमानी, क़ाज़ी ताजुद्दीन इत्यादि की साक्षी उपस्थित करते हैं। उनके विचार से नीचे लिखी पचहत्तर भाषाएँ कुर्आन में हैं।

(१) कुरेशो, (२) किनानी, (३) हुजैली, (४) ख़शअमी, (५) ख़जरजी, (६) अशअरी, (७) नमीरी, (८) क़ैसे गीलावी, (९) जरहमी, (१०) यमनी, (११) अजविशनोई, (१२) कन्दी, (१३) तमीमी, (१४) हमीरी, (१५) मधनी, (१६) लहमी, (१७) सादुल अशीरी, (१८) हज़रमूती, (१९) सुदूसी, (२०) अमातकी, (२१) अनमारी, (२२) गस्सानी, (२३) मजहजी (२४) खुजाई, (२५) गतफ़ानी, (२६) सवाई, (२७) अम्मानी, (२८) बनूहनीफ़िया, (२९) सालवी, (३०) तई, (३१) आमरिब्न, (३२) साहसी, (३३) औसी, (३४) मजीनी, (३५) सफीफ़ी, (३६) जुजामी, (३७) बलाई, (३८) अज़ रही, (३९) हवजानी, (४०) अनमरी, (४१) यमानी, (४२) सलीमी, (४३) अम्मारी, (४४) अथ्एनी, (४५) नसरिब्ने मुआवीय्यी, (४६) अकी, (४७) हज्जाजी, (४८) नवई, (४९) ईसी, (५०) कुजाई, (५१) काविब्ने उम्री, (५२) काविब्ने लवी, (५३) तहारीय्यी, (५४) रबीय्यी, (५५) जब्वती, (५६) तैमी, (५७) रवावी, (५८) आदिब्ने खुजैयी, (५९) सादिब्ने बक्री, (६०) हिन्दी, (६१)

इब्रानी, (६२) अज़जी, (६०) जसमिब्ने वक्री, (६४) संस्कृत, (६५) हब्शी, (६६) फ़ार्सी, (६७) रूमी, (६८) जंगी, (६९) अजमी (७०) तुर्की, (७१) निब्ती, (७२) सुर्यानी, (७३) बरबरी, (७४) क़िब्ती, (७५) यूनानी ।

क़ुर्आन में समय-समय पर परिवर्तन होनें के भी प्रमाण पाये जाते हैं ।

| नं० | किस के मत में | क़ुरान की अक्षर-संख्या |
|---|---|---|
| १. | सुयूती-इब्ने अब्बास | २,२३,६७१ |
| २. | ,, उम्रिब्नेखत्ताव | १०,२७,००० |
| ३. | सिराजुलकारी अब्दुल्लाहिब्नेमसूऊद | ३,२२,६७१ |
| ४. | ,, मुजाहिद | ३,२१,१२१ |
| ५. | उम्दतुलब्यान अब्दुलाहिब्ने मसूऊद | २,२२,६७० |
| ६. | सिराजुलकारी ग्रन्थकार | ३२,०२,६७० |
| ७. | उम्दतुलब्यान ,, | ३,५१,४८२ |
| ८. | कसीदतुलकिराअत ग्रन्थकार | ३२,०२,६७० |
| ९. | दुआय मुतबर्रक ,, | ४,४५,४८३ |
| १०. | रमूजुल कुर्आन मुहम्मद हसन अली | ४०,२६५ |

इसी प्रकार का मतभेद शब्द सख्या में भी है :

| नं० | पुस्तक का नाम | किसके मत में | कुरान की शब्द संख्या |
|---|---|---|---|
| १. | उम्दतुल ब्यान | हमीद आरज | ७६२५० |
| २. | ,, ,, | अब्दुलअज़ीज़िब्ने अब्दुल्लाह | ७०४३९ |
| ३. | सिराजुलकारी | हमीद आरज | ७६४३० |
| ४. | ,, | मुजहिद | ७६२५० |
| ५. | ,, | अब्दुलअजीजिब्ने अब्दुल्लाह | ७०४३९ |
| ६. | कसीदतुल्किराअत | ग्रन्थकार | ८६४३० |
| ७. | सिराजुलकारी | ,, | ७६४२० |
| ८. | सुयूनी का अनुवाद | मुहम्मद हलीम अनसारी | ७७९३३ |
| ९. | मुहम्मदहलीम के नोट | अनेकों के मत में | ७७४३७ |
| १०. | मुहम्मदहलीम के नोट | अनेकों के मत में | ७७२७७ |
| ११. | रमूजुल कुर्आन | मुहम्मद हसन अली | ७६४२ |

इसी प्रकार कुर्आन की सूरतों की संख्या में भी मतभेद है। सिराजुल-कारी, उम्दतुलबयान फी तफ़सीरिल कुरान, तफ़सीरे इत्तेकान, कसीदतुल किराअत, रमूजुल कुर्आन और दुआऐमुतबर्रिक में इमाम अबूहनीफ़, जैदिब्ने साहब अन्सारी और मुल्ला मुहम्मदहसन अली के मत में कुर्आन में एक सौ चौदह सूरतें थीं।

परन्तु मुल्ला जलालुद्दीन सुयूती अपनी तफ़सीरे-इत्तेकान फी उलमिल कुर्आन में लिखते हैं कि—कुर्आन इब्ने मसऊद में एक सौ बारह सूरत थीं। तथा उबैयिब्ने क़ाब के कुर्आन में एक सौ सोलह सूरत थीं। जलालुद्दीन के उक्त लेख से सिद्ध होता है कि हजरत उस्मान के क़ुरान में एक सौ ग्यारह सूरत थीं। उमिय्यतिब्ने अब्दुल्लाह ने ख़ुरासान में एक कुरान पाया था जिसमें एक सौ सोलह सूरतें थीं। इस प्रकार और भी बहुत से मतभेद हैं, परन्तु वर्तमान् कुर्आन में एक सौ चौदह सूरतें हैं जो साधारणतया सभी मुसलमान स्वीकार करते हैं।

सूरतों की भाँति आयतों में भी मतभेद है। दुआएमुतर्रिक, कसीतुल-क़िराअत, उम्दतुलबयान फी तफ़सीरित कुरान, सिराजुलकारी तथा रमूजुल में क़ुरान की छै हज़ार छै सौ सियासठ आयतें मानी हैं।

तफ़सीरे इत्तेकान फी उलमिल कुरान के मत से आयतों की संख्या इस प्रकार है।

| | | |
|---|---|---|
| मदीनियों के मत में | ... | ६२१४ |
| मक्कियों ,, ,, ,, | .... | ६२१२ |
| शाम वालों ,, ,, ,, | ... | ६२५० |
| बस्मियों ,, ,, ,, | .... | ६२१६ |
| ईराकियों ,, ,, ,, | .... | ५२१४ |
| कूफियों ,, ,, ,, | ... | ६२३६ |
| अ० इब्नेमसऊद के मत में | ... | ६२१८ |
| इब्ने अब्बास के मत में | ... | ६६१६ |
| अद्दानी के मत में | ... | ६००० |
| भिन्न-भिन्न मत से | ... | ६२१४ आदि। |

कुर्आन की आयतों में परस्पर मतभेद भी देखने को मिलता है। और

इस प्रकार जब कोई आयत किसी के विरुद्ध आती है तो पूर्व आयतें मन्सूख मानी जाती हैं। इस भाँति कुर्आन की आयतों के 'नासिख़' और 'मनसूख' दो भेद हैं। 'नस्ख' धातु से नासिख़ और मनसूख़ शब्द बना है जिसका अर्थ मिटाना, बदलना, स्नाना नाशित करना आदि हैं।

कुरान शरीफ तीन लाख तेईस हज़ार पैंतालीस फ़रिश्तों द्वारा उतरा माना जाता है और उसमें सत्तर हज़ार विद्याओं का समावेश बताया जाता है।

कुर्आन शरीफ़ में कुछ ऐसी भी बातें हैं जो अन्य धर्म-ग्रन्थों की दृष्टि से अनोखी सी प्रतीत होती हैं। सुनिए—

१—खुदा आदमी को बहका देता है।

२—खुदा सब से बड़ा कपटी है।

३—खुदा ने क़ाफ़िरों के दिलों पर मोहर लगा रक्खी है।

४—अगर खुदा चाहता तो सबको सीधा रास्ता दिखा देता।

५—खुदा ने प्रत्येक शहर में पापियों के सरदार छोड़ रखे हैं ताकि वे लोगों को बहकाते और धोखा देते रहें।

६—शैतान खुदा से कहता है कि जिस तरह तूने मुझे बहकाया उसी तरह मैं भी क़यामत तक क़ाफ़िरों को बहकाऊँगा।

७—खुदा ने क़यामत तक के लिये क़ाफ़िरों के दिलों में दुश्मनी और द्रोह भर दिया है।

८—खुदा घात में लगा रहता है।

९—बहिश्त में पीने को शराब और खाने को मांस तथा सत्तर हूरें और लौंडे मौज करने को मिलेंगे।

१०—बहिश्त वाले भोजन तो करेंगे परन्तु पेशाब और पाखाना नहीं होगा।

११—बहिश्त वालों को सौ-सौ आदमी की काम-शक्ति भोग-विलास के लिये दी जायगी।

इस्लाम के सम्बन्ध में सर्वोपरि यह बात तो हमें स्वीकार ही करनी होगी कि इस धर्म ने एक ईश्वर की सत्ता को सर्वोपरि माना और मूर्तिपूजा तथा भाँति-भाँति की उपासनाओं को बलपूर्वक रोका। इस्लाम धर्म की

दूसरी खूबी यह थी कि उसके नियम सरल, सुसाध्य और आकर्षक थे। फिर भी जैसा जातियों की जागृति के समय हुआ करता है मुहम्मद साहब की मृत्यु के थोड़े ही दिन बाद से इस्लाम की नई-नई शाखायें फूटने लगी थी। जिस प्रकार अरब के विजेताओं ने पूर्व और पश्चिम में अपने साम्राज्य की विस्तार किया उसी प्रकार अरब के विद्वानों और साधुओं ने संसार भर के दर्शन, विज्ञान और विद्याओं को खोज-खोज कर अपने भण्डार को बढ़ाना प्रारम्भ किया। दर्जनों ईसाई धर्म-ग्रन्थ अरबी में अनुवाद किये गये। सुक़रात, अफ़लातून, अरस्तू के गम्भीर दर्शन शास्त्रों, भारत के विज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष आदि के विषयों की सहस्रों पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ। भारत के साथ अरबों का सम्बन्ध नया न था—करोड़ों रुपए का व्यापार होता था—उसी व्यापार के साथ भारतीय संस्कृति की भारी छाप अरबी समाज पर लग गई थी। प्रारम्भिक ख़लीफ़ाओं के काल में बसरा में उच्च पदों पर हिन्दू नौकर थे। शाम कासगर में हिन्दू व्यापारियों की कोठियाँ थीं। खुरासन, अफ़गानिस्तान, सीसतान और बिलोचिस्तान इस्लाम मत स्वीकार करने से पहले बौद्ध थे। बलख़ में एक बहुत बड़ा बौद्ध विहार था, जिसके मठाधीश अब्बासी ख़लीफ़ाओं के वज़ीर हुआ करते थे। अनेकों बौद्ध मत की किताबों के अनुवाद अरबी भाषा में हुए। कितावुलवुद, और विल-व्हर वा बुदसिफ सुश्रुतचरक, निदान, पंचतन्त्र, हितोपदेश, चाणक्य आदि अनेक संस्कृत ग्रन्थ अरबी में अनुवाद किये गये। फलतः बुद्ध की शिक्षाओं सौर विचारों का अरब के मुसलमानों पर भारी प्रभाव पड़ा। धीरे-धीरे अरबों में स्वतन्त्र विचारों का नये-नये दार्शनिक और धार्मिक भावनाओं का उदय हुआ।

उन्हीं दिनों मुसलमानों के 'शिया' सम्प्रदाय का जन्म हुआ। इसे 'ग़लात' के ख़लीफ़ाओं ने प्रचलित किया और प्रचलित मुसलमान धर्म से इसमें यह विशेषता थी कि अवतार बाद (हुलूलतशवीह) आवागमन (तनासुख) को सिद्धान्तों में स्थान दिया गया और यह सिद्ध किया गया कि बढ़ते-बढ़ते मनुष्य खुदा के रुतवे पर पहुँच सकता है।

'अली इलाई' सम्प्रदाय में एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना तथा तलाक़ की प्रथा को नाजाइज़ क़रार दिया। मसजिद में जाने तथा शारीरिक

शरई, पवित्रता को भी उन्होंने अनावश्यक बतलाया। कुछ ऐसे सम्प्रदाय भी पैदा हुए जिन्होंने कुर्आन के अलंकारिक अर्थ किये। अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर में भेद किया जाने लगा। इन सभी सम्प्रदायों में लोगों को खास 'दीक्षा' लेकर भरती किया जाता था। गुरु (पीर) को कहीं-कहीं ईश्वर का रुतबा दिया जाने लगा।

इसके बाद एक मौतज़ली सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसका सिद्धान्त था कि कुर्आन सदा के लिये निर्भ्रान्त ईश्वर वाक्य नहीं—प्रत्युत् मनुष्य जाति और आत्मा की उन्नति के साथ-साथ समय-समय पर इलहाम होता रहता है। अलग़िज़ाली सम्प्रदाय ने कुर्आन-शरीयत, और सामान्य मुसलिम कर्म-काण्ड से असन्तुष्ट होकर एकान्तवासी हो तप (रियाज़त), अभ्यास (शग़ल) और ध्यान (जिक्र) शुरू किया और प्राचीन आर्यों के योगाभ्यास का अनुकरण किया। इस प्रकार सूफी सम्प्रदाय का जन्म हुआ। धीरे-धीरे सूफियों के अनेक मठ (खानकाहें) स्थापित हुए जिनमें अद्वैत (बहद तुलवजूद) का उपदेश दिया जाता था; संयम (नफ्स कुशी), भक्ति (इश्क), योग (शग़ल) को मुक्ति (निजात) का मार्ग बताया जाता था। धीरे-धीरे ऐसे कवि और वैज्ञानिक भी अरब के अन्दर पैदा होने लगे जो नबी, कुर्आन, बहिश्त, रोजे-नमाज सबका मज़ाक उड़ाने लगे। साकार ईश्वर को अस्वीकार करने लगे। खलीफ़ा यजीद को जिसकी मृत्यु सन् ७४४ में हुई ऐसे ही विचार वालों में गिना जाता था।

अबुल-अला-अलम आका जो ग्यारहवीं शताब्दी में अरब के एक महान् विद्वान् और महात्मा थे, आवागमन में विश्वास रखते थे। अत्यन्त निरा-मिषाहारी थे। दूध, शहद और चमड़े का भी व्यवहार नहीं करते थे प्राणि-मात्र पर दया का उपदेश करते और ब्रह्मचर्य को आत्मा के लिये जरूरी बताते थे। मसजिद, नमाज, रोजे और दिखावट के कड़े विरोधी थे। वे वेदान्तियों की भाँति संसार को माया मानते थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस्लाम में गम्भीर परिवर्तन का कारण अरब की विचार स्वतन्त्रता तथा ईसाईमत, ज़रदुस्त मत, और भारतीय हिन्दू तथा बौद्ध मतों की छाप साफ़ दिखाई देती है। विरक्ति (अलफ़िरारो-

रोमिनद्दुनिया) का सिद्धान्त भी इस्लाम में भारत से गया—क्योंकि मुहम्मद साहब तो इसके विरुद्ध थे ।

प्राचीन मुल्ला मौलवी और सूफ़ियों में परस्पर विरोध बराबर चला आता रहा है। फिर भी लाखों मनुष्य इन सूफियों के ख़ानक़ाहों में जमा होते थे और उनके विचारों का उन पर भारी प्रभाव पड़ता था ।

मंसूर एक प्रसिद्ध सूफी फ़क़ीर था और वह भारत में कुछ दिन रहा था। उसका मुख्य सिद्धान्त 'अनल हक़' अर्थात् 'सोऽहं' था। यह आदमी अपने विचारों ही के कारण सन् ६२२ में अनेक यातनाओं के बाद सूली पर चढ़ा दिया गया। वह सबको खुदा मानता था और दुई को धोखा समझता था। इस्लाम में इस भाँति के प्रचारकों ने इस्लाम की भावना में दूसरे मत वालों के लिए एकता, उदारता और प्रेम के बीज बो दिए थे। यही कारण था कि इन साधुओं का भारत की जनता पर बहुत उत्तम प्रभाव पड़ा था। ये लोग सत्संग करते, भक्ति रस के गीत गाते, नाचते और मस्त हो जाते थे। शेख़ बदरुद्दीन तेरहवीं शताब्दी में भारत में था। वह इतना बुड्ढा हो गया था कि चल-फिर भी न सकता था। पर जब भगवत भजन होता तो वह अपने बिस्तर से उठकर नाचने लगता था—जब उससे कोई पूछता कि शेख इस कमजोरी की अवस्था में कैसे नाचता है तो वह जवाब देता—शेख़ कहाँ, प्रेम नाच रहा है ।

अब हम इस्लाम और मोहम्मद साहब के सम्बन्ध में कुछ निष्पक्ष विद्वान् ग्रन्थकारों के कथन उद्धृत करते हैं—

मिस्टर ऐलफ़िन्सटन् साहब 'हिस्ट्री आफ़ इण्डिया' नामक पुस्तक में लिखते हैं :—

"जिस समय अरब वालों की ऐसी व्यवस्था थी। उसमें झूठे नबी (मोहम्मद) का जन्म हुआ। मोहम्मद के सिद्धान्त को मनुष्य जाति की एक भारी संख्या बहुत दिनों से धारण किए हुए है। मोहम्मद के उद्योग और सिद्धान्तों का वास्तविक रूप कुछ भी क्यों न हो, इसमें सन्देह नहीं कि जिस कठोरता, पक्षपात और रक्तपात से मोहम्मद के सिद्धान्तों का प्रचार हुआ उससे यही साबित होता है कि इन सिद्धान्तों का कर्त्ता मनुष्य जाति का अति भयानक शत्रु था।"

वाशिङ्गटन इरविन साहब 'मोहम्मद की जीवनी' में लिखते हैं :—

"मोहम्मद ने जो घोषणा-पत्र मदीने पहुँच कर मुसलमानों के लिए जारी किया था, उसमें उसने लिखा था कि—'जो मुसलमान मेरे धर्म का प्रचार करना चाहे उसको शास्त्रार्थ के झगड़ में नहीं पड़ना चाहिये अपितु उसका कर्तव्य है कि जो आदमी इस्लाम धर्म को अङ्गीकार न करे उसको यमपुर भेज दे क्योंकि जो मुसलमान इस्लाम के निमित्त लड़ता है चाहे वह मारे चाहे मरे इसमें सन्देह नहीं कि उसके लिए बहुमूल्य इनाम तैयार है। तलवार ही स्वर्ग और नर्क की कुंजी है। जो मुसलमान धर्म के निमित्त तलवार चलाता है वह भारी इनाम पाने का अधिकारी हो जाता है। लड़ने वाले के रक्त का एक बिन्दु भी व्यर्थ नहीं जाता। जो दुःख और कष्ट धर्म युद्ध में मुसलमानों को उठाना पड़ता है, वह ईश्वर के यहाँ ज्यूँ का त्यूँ लिख लिया जाता है। इस्लाम के लिए मरना और कष्ट उठाना नमाज और रोजे से भी बढ़कर है। जो मुसलमान इस्लाम के निमित्त युद्ध में मारा जाता है उसका सारा पाप क्षमा कर दिया जाता है। वह सदा के लिए मृगनयनी अप्सराओं के साथ आनन्द भोगता है। काफ़िरों को इस्लाम में लाने के लिए तलवार से बढ़कर दूसरा उपदेश नहीं है। मुसलमानों को चाहिए कि काफ़िर मूर्त्ति-पूजकों को जहाँ कहीं देखें मार डालें।' जिस समय मोहम्मद ने तलवार की धार पर इस्लाम को फैलाने की घोषणा की और जिस समय उसने अरब के लुटेरों को विदेशियों के लूटने का चसका दे दिया उसी समय से उसके जीवन चरित्र में लूट-मार का आरम्भ हो गया।"

सैयद मोहम्मद लतीफ़ 'हिस्ट्री आफ़ दी पंजाब' नामक पुस्तक में लिखते हैं :—

"अरब की लुटेरी जातियों को मोहम्मद का लोक और परलोक के सुख और धन-दौलत का लालच दिलाना उनके जोश को भड़काने के लिए काफी था। इस लालच से उनकी युद्ध-शक्ति और विषय-कामना भभक उठी। मोहम्मद ने अरबियों की बुझी हुई कामना में बिजली भर दी। क़ुरान और तलवार को हाथ में लेकर अपने अनुयायी मुसलमानों की शक्ति से उत्साहित होकर मोहम्मद ने संसार के शिष्टाचार और धर्मशीलता के

साथ युद्ध छेड़ दिया। नई नीति और नवीन विचारों का प्रचलित करके समाज और राजनीति की सभ्यता में मोहम्मद ने क्रान्ति उत्पन्न करदी।"

डा० मिरचिल का कहना है :—

"क़ुरान की अधिकांश बातें दर्शन, ज्ञान और बुद्धि से बाहर की हैं, उसकी शिक्षा सिर्फ अवैज्ञानिक ही नहीं है, अपितु बुराई भी उत्पन्न करती है।"

डा० फोरमैन लिखते हैं—"जो आदमी क़ुरान को पढ़कर उस पर चलेंगे अवश्य निर्दयी और कामी बन जावेंगे।"

: १० :

# भारत की ओर

हमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि मुसलमानी धर्म उत्पन्न होने के पूर्व से ही अरब का सम्बन्ध भारतवर्ष से रहा है। मुहम्मद साहब के जन्म से लगभग पाँचसौ वर्ष पूर्व मसीह की प्रथम शताब्दी से ही अरब और ईरान के द्वारा ही भारतीय व्यापार का योरोप से तार-तम्य रहा है। भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी तट के बन्दरगाहों जैसे चाल कल्याण, सुपारा और मालाबार के आस-पास अरब सौदागरों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ बसी हुई थीं। दक्षिण भारत और लंका में तो अरबों और ईरानियों की अनेक बस्तियाँ थीं। यहाँ तक कहा जा सकता है कि रोम और यूनान के जो जहाज भारत आते थे उनके नाविक अरब होते थे। भारत और चीन के व्यापार भी इन्हीं के हाथ में थे। इसलिए पूर्वीय तटों पर भी अरबों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ थीं।

उस समय के अरब सीधे-सादे, वीर, साहसी, विश्वास और अटल प्रकृति के होते थे। वे अपने खानदानों और कबीलों के कुल-देवताओं की मूर्तियों को पूजते थे। भारतवासियों से उनका खूब मेल-जोल था और भारत में उनकी बस्तियाँ खुशहाल थीं।

भारत का अरब, फिलस्तीन, मिस्र, काबुल, असीरिया आदि देशों से सदैव ही व्यापार-विनिमय होता रहा है। यहूदियों के प्रख्यात बादशाह सुलेमान ने जगद्विख्यात मन्दिर के निर्माण कराने के समय भारत से बहुत सी चीजें, जैसे स्वर्ण, रत्न, मोरपंख और हाथीदांत आदि मँगाये थे। मिस्र के प्राचीन बादशाहों ने भारत से व्यापार करने के लिये ही लाल सागर के

किनारे कई बन्दरों की स्थापना की थी। ईरान के बादशाहों ने फ़ारस की खाड़ी में कई बन्दरगाह इसी इरादे से बनाये थे। राम और यूनान के विद्वानों को भारत के भूगोल का भलीभाँति परिचय था। प्यूटिंगीरियन टेबल्स नामक पुस्तक से पता लगता है कि मसीह की तीसरी शताब्दी में करेगानोर में रोमन लोगों की बस्ती थी और मिस्र के बन्दरगाह सिकन्दरिया में हिन्दुओं की आबादी थी, जिन्हें रोमन सम्राट काशकल्ला ने तीसरी शताब्दी में क़त्ल करा दिया था।

ईरानियों ने दज़ला और फ़रात के दहाने पर, बसरे के निकट, ओबोला का बन्दरगाह बनाया था।

अरब और भारत का व्यापार बहुत घनिष्ट था। उनके देश में पच्छिम तट पर बहुत से बन्दरगाह थे। दक्षिण में ऊदभ और पूर्व में सेहुर प्रधान थे। अरबी मल्लाह बहुधा भारतीय नौकाओं पर नौकरी करते थे और इस समुद्र के दोनों तटों पर इनकी बस्तियाँ थीं। रेनों के मत से चौदहवीं शताब्दी तक अरबों का मालाबार तट पर वैसा ही आधिपत्य था जैसा कि बाद में पुर्तगीजों का हो गया।

इस्लाम धर्म के प्रचार होने पर अर्थात् मुहम्मद साहब के जन्म होने पर भी अरबों का यातायात बराबर भारत में बना रहा। परन्तु अब उनमें नई सभ्यता और नये आदर्शों का समावेश था।

यह बात हम सातवीं शताब्दि के मध्य भाग की कह रहे हैं क्योंकि सन् ६२६ में मक्का नगर ने मुहम्मद साहब की आधीनता स्वीकार की थी और सन् ६३२ में दो वर्ष बाद समस्त अरब ने। इसी सन् में हज़रत मुहम्मद मर गये। परन्तु सन् ६३६ में ईराक़ (मेसोपोटामिया) शाम (सीरिया) को अरबों ने विजय किया। और ६३७ में वैतुल मुक़द्दस (जेरूसलम) पर कब्ज़ा किया था। अन्ततः सातवीं शताब्दी के अन्त तक तमाम तातार और तुर्किस्तान तथा चीन की पूर्वी सरहद तक इस्लाम में मिल गया था। इसी बीच में पच्छिम में मिस्र, कार्थेज तथा समस्त उत्तरीय अफ़रीक़ा पर इस्लाम की फतह हो चुकी थी, और प्रबल रोमन साम्राज्य को चीर फाड़ डाला था और स्पेनों पर अपना अधिकार कर लिया था।

अरबों ने बड़ी तेज़ी से चारों ओर फैलना प्रारम्भ कर दिया तब उनकी

सेनाएँ जङ्गलों, मैदानों, पहाड़ों और नदियों को पार करती हुई भारत की सीमा तक पहुँच गईं। उन्होंने ईरान के बेड़ों को सदैव के लिए समुद्र में समाधि दे दी थी और भारत महासागर पर अपना एकाधिपत्य जमा लिया था। साथ ही हिन्द महासागर के व्यापार को भी सर्वथा हथिया लिया था।

मुसलमानों का पहला बेड़ा सन् ६३० में उमर की ख़िलाफ़त में हिन्दुस्तान में आया। उस समय उस्मान सक़ीफ़ी वहरैन का सूबेदार था। और उसने एक सेना समुद्री रास्ते से थाने के बन्दर भेजी। ख़लीफ़ा ने इस बात को पसन्द नहीं किया। और भविष्य में ऐसा न करने की ताकीद करदी। पर उस्मान की ख़िलाफ़त में भारत की ओर फिर कई फौजी दस्ते आये, पर विफल मनोरथ लौट गये।

सातवीं शताब्दी के मध्य में जबकि मध्य एशिया और योरोप में मुसलिम सत्ता अपना प्रताप दिखा रही थी, भारत में सम्राट हर्षवर्धन की सत्ता का अन्त हो रहा था। उत्तरीय भारत का साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। कुछ पुरानी कुछ नई जातियों ने नवीन राजपूत शक्ति बनाकर पच्छिम से चलकर उत्तर पूर्वीय तथा मध्यभारत में अनेक छोटी-छोटी रियासतें क़ायम करली थीं। और मुसलमानों के प्रथम आक्रमण के पूर्व ही वे पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक प्रदेश को अधिकृत कर चुके थे। परन्तु कोई प्रधान शक्ति इनको वश में करने वाली न थी। और आये दिन इन के परस्पर संग्राम होते थे। पुराने साम्राज्यों की राजधानियाँ खण्डहर हो गई थीं।

ऐसी दशा में धर्म क्षेत्र में भारत का पतन होना स्वाभाविक था, बौद्धों ने ब्राह्मण धर्म और उच्चजति के विशेषाधिकारों को कुचल डाला था, उसके प्रतिफल स्वरूप ब्राह्मणों ने इन नवीन शासकों की सहायता से फिर पुराने ब्राह्मण धर्म को नये रूप में खड़ा किया। वेद के रुद्र देवता शिव की मूर्ति बन गये थे। आर अब हिन्दू और बौद्ध प्रतिमा-पूजन और कर्म-काण्ड के प्रपंच में फिर फँस गये थे। कनिष्क के प्रयत्न से उत्तरीय भारत में महायान सम्प्रदाय की नींव जम गई थी, जिसमें बौधि-सत्वों की पूजा होती तथा बौद्ध मन्दिरों का समस्त कर्म-काण्ड हिन्दू मन्दिरों के ढंग पर

ढल गया था। प्रारम्भ में जो बौद्ध मत ने संस्कृत का स्थान छीन कर प्राकृत या पाली भाषा को दे दिया था—अब वह फिर संस्कृत को मिल गया था और ब्राह्मणों की अब बन आई थी।

धीरे-धीरे वैष्णव मत, शैव मत और तान्त्रिक समुदाय ने मिल कर धम को भारत से निकाल बाहर कर दिया। कुछ उच्च श्रेणी के लोग उपनिषद् और दर्शन शास्त्र का मनन करते थे। पर सर्वसाधारण का धर्म-पथ अन्धकारमय, अरक्षित और ऊजड़ था। जिस जाति भेद को बाद्ध धर्म ने नष्ट कर स्त्रियों आर शूद्रों को मनुष्यत्व के अधिकार प्रदान करना चाहा था, वह फिर और भी अन्ध भित्ती पर क़ायम होगया था। ब्राह्मणों के अब असाध्य अधिकार बढ़ गये थे। जनता को जाति पाँति और ऊँच नीच की दलदल ने फाँस लिया था और असंख्य भयानक देवी देवता, शक्ति, जप, तप, यज्ञ, हवन, पूजा, पाठ, दान, मंत्र, तन्त्र और जटिल कर्मकाण्ड के सिवाय कोई धर्म न रह गया था—इस बात का पता उस समय के साहित्य, चीनी तथा अरब के यात्रियों के वृत्तान्तों, सिक्कों तथा शिला लेखों से लगता है।

पांचवीं शताब्दि में फाहियान ने उत्तर-पच्छिम में पुरातन काबुल से मथुरा तक हीनयान सम्प्रदाय देखा था, पर उनके दो सौ वर्ष बाद ही जब ह्वेनसाँग आया तो उसने महायान को उसके स्थान पर देखा। उसने शिव की पूजा को बड़ी तेजी से फैलते देखा, और अयोघ्या के निकट दुर्ग के सामने मनुष्य बलि चढ़ती देखी थी। और बुद्ध की मूर्तियों के स्थान पर शिवमूर्तियाँ स्थापित होते, तथा बौद्धों को यन्त्रणा देकर निकालते देखा था। उसने नरमुण्डों की माला पहिने कापालिकों को भी देखा था। उसने ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और मध्य एशिया तक बौद्धों और शैवों को बराबर पाया था। परन्तु इसके बाद के अरब के यात्रियों ने बौद्धों के धर्म को लुप्त हुआ पाया। अलबरूनी ने ग्यारहवीं शताब्दी में शैव, वैष्णव, शाक्त, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, स्कन्ध, गणेश, यम, कुवेर आदि असंख्य मूर्तियों की पूजा देखी। बौद्धों और जैनों, शाक्तों और कापालिकों का मद्यमांस संघर्ष देखा—जो धर्म का अंग बन गया था। इस प्रकार उस समय भारत

सैकड़ों उत्तरदायित्व शून्य छोटी-छोटी रिसासतों, सैकड़ों मत-मतान्तरों और अनगनित सदाचारहीन कुरीतियों और अन्धविश्वासों का घर था।

पाठकों को स्मरण होगा कि ख़लीफ़ा अब्दुल मलिक के शासन काल तक मुस्लिम शक्तियों में गृहयुद्ध खूब जोर पर था और वह ख़लीफ़ा वलीद के काल तक भी जारी था। उस समय हज्जाज़ इब्ने यूसुफ कोफे का हाकिम था। उसके आधीन प्रदेशों के अल्लाफी जाति के कुछ विद्रोही मुसलमान हिन्दुस्तान में भाग आये थे और सिन्ध के राजा दाहिर की शरण में रहने लगे थे। इनका सरदार मुहम्मद वारिस अलाफी था। राजा ने उन्हें जागीर देकर अपनी सेना में रख लिया था। हज्जाज़ ने इन्हें मांगा पर दाहिर ने देने से इन्कार कर दिया। इसी बीच में अरब का एक जहाज लङ्का से आरहा था उसे कच्छ के लुटेरों ने लूट लिया। हज्जाज ने दाहिर से इसका हरजाना माँगा। दाहिर ने कहा—वह स्थान जहाँ जहाज लुटा है हमारे राज्य की सीमा से बाहर है अतः हम हरजाना नहीं देंगे।

इस पर हज्जाज़ ने सन् ७१२ ई० में मुहम्मद बिन क़ासिम को सिन्ध पर भेजा। यह हज्जाज का भतीजा था। २० वर्ष का साहसी मुसलमान बालक केवल छ हज़ार सैनिक लेकर बलोचिस्तान की विस्तृत मरुभूमि को पार करता हुआ बिना किसी रोक टोक के सिन्ध पर चढ़ आया। दाहर के सेनापतियों और नारायण कोट के किलेदार (जो अब हैदराबाद कहाता है) को लालच देकर शरणागत मुसलमानों के सरदार मुहम्मद वारिस अल्लाफी ने प्रथम ही वश में कर लिया था। समय पर वे स्वयं भी युद्ध में विपरीत होगये। राजा दस हजार सवार और बीस हजार पैदल ले कर सम्मुख गया। आठ दिन तक घोर युद्ध हुआ। क़ासिम भागने ही को था कि एक ब्राह्मण ने उससे कहा कि यदि मन्दिर का झण्डा गिरा दिया जाय तो हिन्दू सेना भाग जायगी—क्योंकि हिन्दुओं का यही विश्वास है। क़ासिम ने झण्डे पर निशान दाग कर गिरा दिया। उसके गिरते ही हिन्दू सेना भागने लगी। राजा दाहिर एक तीर से घायल होकर गिर गया और उसका सिर काट लिया गया जिसे भाले पर लगा कर दिखाया गया। उसे देख सेना भाग खड़ी हुई और मन्दिर ध्वंस कर दिया गया। उसी ब्राह्मण ने दक्षिणा पाने के लालच में एक गुप्त ख़ज़ाने का पता क़ासिम को

दिया जिसमें से चालीस डेगें ताम्बे की मिलीं जिनमें सत्रह हजार दो सौ मन सोना भरा था जिसका मल्य एक अरब बहत्तर करोड़ रु० होता था। इसके अतिरिक्त छ हजार मूर्तियाँ ठोस सोने की थीं। जिनमें सबसे बड़ी का वजन ३० मन था। हीरा, पन्ना, मोती, लाल और मानिक इतना था कि कई ऊँटों पर लादा गया।

जब यह ख़ज़ाना क़ासिम को मिल गया तब उसने ब्राह्मण को उसी दम क़त्ल करा दिया। साथ ही जिन सेनापतियों ने राजा से विश्वासघात किया था उन्हें भी क़त्ल करा दिया गया। इसके बाद उसने असंख्य मन्दिरों और मूर्तियों को विध्वंस किया, हजारों हिन्दू स्त्री-पुरुषों को क़त्ल किया और अनेक गाँव लूट लिये। वह प्रत्येक गाँव के द्वार पर जाता और वहाँ के निवासियों को मुसलमान होने तथा बहुत सामान देने का आदेश करता था। आज्ञा पालन में तनिक भी देर होने पर वह क़त्ल और लूट करा देता था।

यह धन ज़ज़िया कहाता था। अरब की शरह के मुताबिक क़ाफिरों में धनवान को बारह रुपये साल, मध्यम श्रेणी वाले को छ रुपये साल और मजदूरों को तीन रुपये साल देना पड़ता था। बाद में यह नियम हो गया कि जीवन निर्वाह होने पर जो धन काफ़िर के पास बचे वह सब छीन लिया जाय।

फरिश्ता लिखता है कि मृत्यु-तुल्य दण्ड देना ही ज़ज़िया का उद्देश्य था। काफिर लोग इस दण्ड को देकर मृत्यु से बच सकते थे। क़ासिम ने अत्यन्त कड़ाई से वह कर वसूल करना शुरू किया। और आपस की फूट के कारण कितने ही हिन्दू राजाओं ने इस नवागत अत्याचारी का स्वागत किया।

जिस समय सिन्ध पर यह गुज़र रही थी, उस समय भी अरब के व्यापारी मालाबार तट पर अपनी बस्तियाँ बसा रहे थे। वे शान्त थे और हिन्दुस्तानी स्त्रियों से विवाह करते थे तथा उनके रहने और घर बनाने में कोई भी बाधा न थी। 'हिशाम' का कबीला भागकर भारत में कोकड़ा और कन्याकुमारी के पूर्वी तट पर बस गया था। लव्वे और नवायत ज़ातियाँ उन्हीं के वंश की हैं। हिन्दू राजाओं ने इन विदेशी व्यापारियों की

काफी आवभगत की । उन्हें मस्जिदें बनाने और जमीन खरीदने की आज्ञा देदी । इससे मालाबार में बड़ी जल्दी आठवीं शताब्दी में मुसलमान फैल गये और उन्होंने अपने धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया । यह झटपट फैला भी । इसके कारण थे । एक तो मुसलमानों में पादरी या पुरोहित न थे—प्रत्येक व्यक्ति धर्म प्रचारक था । दूसरे उनके वैभव, धन और वीरता से मालाबार तट की दरिद्र जातियाँ प्रभावित हो गई थीं । फिर उनके विचारों, स्वभावों, रीतियों और चालचलन में एक नवीन कौतूहल था—और उनका धर्म सीधासादा और सुबोध था । उनकी उपासना हृदयग्राही थी । वे दिन भर में अनेक बार ईश्वर का ध्यान करते थे । रेनान जैसे कट्टर नास्तिक और विद्वान् फ्रेंच लेखक ने एक बार लिखा था कि "जब मैं मस्जिद जाता हूँ तब मेरा हृदय एक अकथनीय शक्तिशाली भाव से उद्विग्न हो जाता है और मेरे मन में खेद उत्पन्न होता है कि मैं मुसलमान न हुआ ।"

रेनान जैसों के हृदय पर प्रभाव पड़े तो औरों का तो कहना ही क्या है ! उनमें नमाज़ की सफ़बन्दी, रोजों की सख्ती, खैरात और उश्र के नियम, परस्पर समता का व्यवहार ऐसी बातें थीं कि देखने वालों पर उनका असर पड़ता था ।

यह वह समय था जबकि हिन्दू धर्म में एक विप्लव मच रहा था । बौद्ध, जैनी, वैष्णव, शैव, शाक्त परस्पर भयानक संघर्षों, कुरीतियों और अन्धविश्वासों में फँसे थे । ब्राह्मणों ने बौद्धों और जैनियों को नष्ट प्रायः कर दिया और शैव और वैष्णवों की प्रबलता हो रही थी । राजनैतिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न थी—प्राचीन राजघराने जर्जर हो गये थे और नये वंश उठ रहे थे । हार्दिक दुर्बलता और अन्धविश्वासों का हाल राजवंशों तक में गिर गया था । जिसका एक उदाहरण सुनिए—मालाबार कोदं-गल्लूर के राजा पैरूमल ने स्वप्न देखा कि चाँद के दो टुकड़े हो गये हैं । सुबह उसने अपने दरबारी विद्वानों से उसका अर्थ पूछा—पर किसी का भी उत्तर न भाया । संयोग से एक मुसलमानों का काफिला लङ्का से लौट रहा था—उसके सर्दार तकीउद्दीन ने जो स्वप्न की व्याख्या की वह राजा को जँच गई । बस वह मुसलमान हो गया । उसका नाम अब्दुर रहमान

सानीनी रक्खा गया और अरब को चला गया, और वहाँ से उसने मलिक इब्ने दीनार, शर्क़ इब्न मलिक, मलिक इब्न हबीब को मालाबार भेजा। इन्होंने ग्यारह स्थानों पर मस्जिदें बनाईं और इस्लाम का प्रचार किया।

राजा वहाँ से नहीं लौटा। चार साल बाद मर गया। पर आज भी जब ज़मोरिन सिंहासन पर बैठाया जाता है उसका सिर मूँडा जाता है और उसे मुसलमानी लिबास पहनाया जाता है। एक मोपला उसके सिर पर मुकुट रखता है। राज्याभिषेक के बाद वह जाति से बहिष्कृत हो जाता है। वह न तो अपने परिवार के साथ खा सकता है, न नायर लोग उसका छूआ खाते हैं। यह समझा जाता है कि ज़मोरिन अन्तिम चेरमन—पेरूमल का प्रतिनिधि है और उसके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। अब भी जब कालीकट और ट्रावनकोर महाराज अभिषेक के समय तलवार कमर में बाँधते हैं तब यह घोषणा करते हैं कि मैं इस तलवार को उस समय तक रखूँगा जब तक कि मेरा चाचा जो मक्के गया है, लौट न आयेगा।

दक्षिण के मोपले उन्हीं मुसलमानों के वंशधर हैं। उस समय उनका बड़ा महत्व था। मोपला महा-पिल्ला का अपभ्रंश है। मोपला का अर्थ है "ज्येष्ठ पुत्र या दूल्हा"। उन्हें बड़े अधिकार प्राप्त थे। मोपला नाम्बूतरी ब्राह्मणों के बराबर बैठ सकता था यद्यपि नायर ऐसा नहीं कर सकता था। मोपलों का गुरु थंगल राजा के साथ पालकी पर सवारी कर सकता था।

ज़मोरिन की कृपा से बहुत से अरब के व्यापारी उसके राज्य में बस गये। राज्य को उनके व्यापार से अर्थ लाभ भी था, साथ ही वे अपने पराक्रम से आसपास के राजाओं को परास्त करके उनकी ज़मीनों पर राजा का अधिकार करा देते थे। जहाँ जहाँ राजा का अधिकार होता, मुसलमान व्यापारियों की मण्डियाँ भी स्थापित हो जातीं। कालीकट के बन्दरगाह की नींव इसी प्रकार पड़ी थी। राजा ने आज्ञा प्रचारित की थी कि मक्कवान जाति के प्रत्येक मल्लाह परिवार में से एक या अधिक आदमी इस्लाम धर्म ग्रहण करें। इसका फल यह हुआ कि जब मसूदी ने दसवीं शताब्दी में भारत की यात्रा की तब दस हज़ार मुसलमानों की बस्ती उसने चौल में पाई थी। इब्न बतूता ने खंभात से मालाबार तक सर्वत्र मुसलमानों की अच्छी आबादी देखी थी और वे अच्छी हालत में थे।

उसनें गोआ को मुसलमानों के अधिकार में देखा था। हिनोर में भी मुसलमानों का राज्य था। मंगलौर में चार हजार मुसलमान बसते थे। मद्रास की मुस्लिम जातियों का जीवन प्रारम्भ यहाँ से होता है।

नज़द वली ने तेरहवीं शताब्दी में मदुरा और त्रिचनापल्ली में बहुत से मनुष्यों को मुसलमान किया। यह शख्स तुर्क शहज़ादा था। सय्यद इब्राहीम ने तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाण्यों पर चढ़ाई की और बारह वर्ष उसने पाण्यों पर राज्य किया। पर अन्त में वह हारा और मारा गया।

बाबा फखरुद्दीन एक साधू था जो पेन्नुकोड़ा में रहता था। उसने वहाँ के राजा को मुसलमान बनाया और मस्जिद बनाई। ११६८ ई० में मरा।

मदुरा प्रान्त में मुसलमानों ने १०५० ई० में प्रवेश किया। उनका नेता मार्लकुल मलूक था। इसके साथ एक बड़ा साधू अलियारशाह भी था, जो मदुरा की कचहरी में दफ़न है! पालेयन गाँव में एक मस्जिद है जिसके लिये ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दियों में छ गाँव धर्मादि खाते कुण पाण्य ने लगा दिये थे। यह दान सोलहवीं शताब्दी में वीरप्पा नायक ने भी जारी रखा था।

चोल मण्डल के किनारे बहुत सी मण्डियाँ बन गई थीं और वहाँ के राजाओं ने जो सुभीते इन मुसलमान व्यापारियों को दे रखे थे—उससे उन्हें बहुत लाभ था। वस्साफ़ लिखता है कि—"मावर समुद्र के उस किनारे को कहते हैं जो कोलभ से नल्लोर तक फैला है। इसकी लम्बाई तीन सौ फरसङ्ग है। यहाँ के राजा को देव कहते हैं। जब यहाँ से बड़े-बड़े जहाज़ चीन, हिन्द और सिन्ध के मूल्यवान मालों से लदे गुज़रते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि ऊँचे ऊँचे पहाड़ बादवान लगाये पानी पर तैर रहे हैं। फारिस की खाड़ी व द्वीपों से ईराक़ और खुरासान, रूम और योरोप की सुन्दर चीजें यहाँ आती हैं और यहाँ से चारों ओर जाती हैं—क्योंकि यह व्यापार का केन्द्र है।" आगे चलकर वह लिखता है कि—

"कायल पहनम् में, किश के हाकिम मलिवुल इस्लाम जमालुद्दीन ने

घोड़ों की आढ़त लगाई थी, प्रति वर्ष दस हज़ार घोड़े फारस से मावर आते थे जिनकी क़ीमत बाईस लाख दीनार था।

रशीदुद्दीन के मतानुसार जमालुद्दीन १२६३ ई० में कायल का अधिकारी हुआ था और उसका भाई तक़ीउद्दीन उसका नायक था—यही व्यक्ति सुन्दर पाण्य का मन्त्री रह चुका था। पाण्य राज ने जमालुद्दीन के पुत्र फ़ख़रुद्दीन अहमद को दूत बनाकर चीन के महाराज वुवुलेखाँ के साथ १२८६ ई० में भेजा था।

इब्नवतूता का कहना है कि तामिल प्रान्त में जब कि मदुरा का हाकिम ग़यासुद्दीन अद्मनानी था—राजा पीरवल्लाल की सेना में बीस हज़ार मुसलमानों का एक दस्ता था। राजा के सूबेदार हरि अफ्फा ओडयार की आधीनता में होनावर मुसलमान हाकिम थे।

पाठक देखेंगे कि सातवीं शताब्दी में दक्षिण में मुसलमान व्यापारी किस ढङ्ग पर आकर धीरे-धीरे सैनिक, सेनानायक, मन्त्री, बेड़ों के अधिपति दूत, अध्यक्ष और हाकिम तक बन गये।

परन्तु दक्षिण में जिस प्रकार चुपचाप इस्लाम भारत में जड़ जमा रहा था—उत्तर में इसका रूप कुछ और ही था। मुलतान और सिन्ध को विजय कर क़ासिम लौट गया, तब लगभग तीन सौ वर्ष तक और कोई आक्रमण नहीं हुआ। इस समय पच्छिम प्रान्त पर कुछ मुसलमान शासक थे—परन्तु काठियावाड़ गुजरात-कोकण—दायवल-सोमनाथ भडोच, खंबायत, सिहान, चोल में इनकी बस्तियाँ बस रही थीं। काबुल में एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था। परस्पर के झगड़े खूब थे। परन्तु मुसलमानों से सभी को दिलचस्पी थी—यह अद्भुत बात है। सुलेमान सौदागर ने लिखा है—'वल्हार' (बल्लभिराय) के बराबर अरबों से हिन्दुस्तान में कोई राजा प्रेम नहीं करता।

आठवीं शताब्दी के अन्त में अफ़ग़ागिस्तान भी मुसलमानी तलवार के आधीन हो गया था। और अफ़ग़ानों ने अब खैबर घाटी से छोटे-छोटे धावे मारने प्रारम्भ कर दिये थे।

अठारहवीं शताब्दी में एक तुर्की गुलाम सुबुक्तग़ीन जो खुरासान को और गज़नी दख़ल कर बैठा था, भारत में घुस आया। उस समय पंजाब

के राजा जयपाल थे। इन्होंने खैबर घाटी को सुरक्षित रखने को और उधर से किसी भी शत्रु को भारत में न घुसने देने की शर्त पर शेख़ हमीद नामक एक मुसलमान को पेशावर और खैबर का इलाका देकर नवाब बना दिया था।

सुबक्तग़ीन को आगे बढ़ता देख महाराज जयपाल ने आगे बढ़ कर जलालाबाद पर छावनी डाल दी। यह स्थान खैबर घाटी के पश्चिमी मुहाने पर अफ़ग़ानिस्तान की सीमा में है। सुबुक्तग़ीन युद्ध का समय टालता रहा। महाराज जयपाल इस भेद को नहीं समझे। जब शीत पड़ने लगा और बर्फ गिरने लगी तब सुबुक्तग़ीन ने धावा बोल दिया। जयपाल की सेना सर्दी से निकम्मी हो गई थी, उससे युद्ध करते न बना। निदान वे लौटे। परन्तु शेख हमीद ने इधर से घाटी का मुहाना रोक दिया। महाराज जयपाल घाटी में सेना सहित घिर गये। निरुपाय होकर उन्होंने बहुत सा धन, हाथी-घोड़े आदि देने का वचन देकर सन्धि करली और सुबुक्तग़ीन के आदमियों को साथ लेकर लाहौर लौट आये। परन्तु देने लेने पर सुबुक्तग़ीन के आदमियों से महाराज का झगड़ा होगया। सुबुक्तग़ीन भारत में घुस आया। पेशावर में युद्ध हुआ और राजा की पराजय हुई। उनकी समस्त सम्पदा लूट ली गई। राजा ने अग्नि कुण्ड में प्रवेश कर आतमघात किया। यह शेख हमीद की नमक हरामी थी। पंजाब पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

कासिम के आक्रमण के बाद बहुत से मुसलमान फकीर उत्तर भारत में फिरने लगे थे। उनकी तरफ हिन्दू शासकों का कुछ ध्यान भी न था। इनकी ज़ियारत करने तुर्कीस्तान, फारस, अफ़ग़ानिस्तान और बिलोचिस्तान से बहुत से मुसलमान आते, जिनकी कोई रोक टोक और देख भाल नहीं होती थी। बहुत से मुसलमान साधू हिन्दू साधुओं का वेश धारण करके मन्दिरों और मठों में रह जाते थे। प्रसिद्ध कवि शेखशादी सोमनाथ के मन्दिर में कुछ दिन हिन्दू साधु बनकर रह गया था—इस बात का जिक्र वह खुद अपनी 'वास्ता' नामक किताब में करता है। ये सब लोग बहुधा जासूसी करते थे और भारत की ख़बरें मुसलमान शक्तियों तक पहुँचाते थे तथा हिन्दू राजाओं की परिस्थिति का अध्ययन किया करते थे।

अली बिन उस्मान अलहज़वीसी जिसने कशकुल महज़ूब की रचना

की। यह गजनी का रहने वाला था। लाहौर में आकर बसा और १०७२ ई० में वहीं उसकी मृत्यु हुई। शेख़ इस्माइल बुख़ारी ग्यारहवीं शताब्दी में आया। फ़रीदुद्दीन अत्तार जो तज़किरतुल औलिया और मन्त कुत्तैर का रचयिता है, बारहवीं शताब्दी में आया। शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती ११६७ में अजमेर में आया। उस समय पृथ्वीराज जीवित थे। अजमेर के मन्दिर के महन्त रायदेव और योगीराज अजपाल ने इसके हाथों इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। चिश्तिया मठ के बड़े-बड़े सूफियों में कुतुबुद्दीन वख्तियार काफ, फ़रीदुद्दीन गंजशकर निज़ामुद्दीन औलिया आदि थे। सुहरवर्दी सम्प्रदाय वालों में जलालुद्दीन तब्रीज़ी, क़ादरियों में जलालुद्दीन बुख़ारी, बाबा फरीद पाकपरनी थे। अब्दुल क़दीम अलजीली जिन्होंने सूफ़ी मज़हब के विद्वान इब्नल अरबी की पुस्तकों की टीका लिखी है, और इन्साने कामिल की रचना की है, १३८८ में यहाँ आया। इसी शताब्दी में सैयद मुहम्मद नेसूदराज़ ने महाराष्ट्र में बहुत कुछ इस्लाम का प्रचार किया। पीर सद्रुद्दीन ने खोजा जाति को जन्म दिया और सैयद यूसुफ़उद्दीन ने मोमना को। इन सूफियों के अतिरिक्त बहुत से फकीर जिनका सम्बन्ध किसी भी मज़हब से न था, देश भर में घूमते थे। इनमें शाह मदार, सख़ी सरवर और सतगुरु पीर प्रसिद्ध थे।

इन साधुओं ने छिन्न-भिन्न हिन्दुओं में इस्लाम के प्रचार में कितनी सहायता दी है—इस पर विचार करना चाहिये। इन लोगों ने बिना ही ज़ोर ज़ुल्म के और बिना ही तलवार की सत्ता के मुसलमान धर्म का प्रचार किया। और यह उस समय अति सरल था क्योंकि जैसा अलबरूनी लिखता है हिन्दू धर्म इस योग्य न रह गया था कि उसमें कोई भी ब्राह्मणोत्तर व्यक्ति आत्मसम्मान से रह सके। ब्राह्मण और क्षत्रिय मानों उस काल में हिन्दू समाज के सर्वेसर्वा थे। इसके सिवा ये सभी समाचार-विनिमय करते थे।

बारहवीं शताब्दी में एक फ़कीर सैयद इब्राहीम सहीद भारत में आये और दक्षिण में बहुत से लोगों को इस्लाम की दीक्षा दी। इसके बाद बाबा फ़खरुद्दीन ने भी बड़ा भारी इस्लाम का प्रचार किया और पेन्नुकोण्डा के हिन्दू राजा ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। उधर यह प्रचार भीतर ही भीतर बढ़ रहा था और इधर इनके द्वारा दक्षिण भारत का व्यापार

खूब उन्नत हो रहा था। मुसलमानों का इतना मान था कि उन दिनों हिन्दू राजाओं की ओर से मुसलमान एलची और राजदूत दूर देश चीन तक के दर्बार में भेजे जाते थे। मन्त्री और महामन्त्री के पद पर तो बहुत से मुसलमान थे। हिन्दू राजाओं की ओर से प्रान्तों के शासक मुसलमान नियत किये जाते थे और हिन्दू राजाओं के आधीन बड़ी-बड़ी मुसलमान सेनाएँ थीं।

गुजरात के बल्लभी राजा बलहार ने अपने राज्य के अन्दर मुसलमानों का बड़े उत्साह से स्वागत किया था। काठियावाड़, कोकण और मध्य भारत के सभ्य हिन्दू राजाओं ने भी मुसलमान साधुओं का ख़ासा सत्कार किया था और उन्हें अपने राज्य में इस्लाम प्रचार में काफी सहायता दी थी। हिन्दू राजा इन मुसलमानों का इतना लिहाज़ करते थे कि एक बार खम्भात में जब हिन्दुओं ने मुसलमानों की मसज़िद गिरा दी थी। तब राजा ने हिन्दुओं को भारी दण्ड दिया और अपने ख़र्च से मसज़िद फिर बनवा दी।

ग्यारहवीं शताब्दी में वोहरों के गुरु यमन से आकर गुजरात में बसे। ये शिया सम्प्रदाय के थे। इससे प्रथम ही वहाँ मुरुद्दीन ने गुजरात के बहुत से कुनवियों, खेरवाओं और काड़ियों को इस्लाम में शामिल कर लिया था। अभिप्राय यह है कि आठवीं शताब्दी से लेकर पन्द्रह वीं शताब्दी तक बराबर समस्त भारत में मुसलमान साधु-संत अपने धर्म का प्रचार करते रहे और लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। इस समय तक भारतीयों पर इस्लाम का कोई राजनैतिक प्रभाव नहीं पड़ा था।

भारत पर क़ासिम के लगभग तीन सौ वर्ष बाद महमूद ने लूट का लालच देकर असंख्य बर्बरों को इकट्ठा कर धावा बोल दिया। इसने निरन्तर तीस बरस तक भारत पर आक्रमण किये और सत्रह बार पश्मिोत्तर भारत को तलवार और अग्नि से विध्वंस किया। इसने नगरकोट का मंदिर तोड़कर इसमें से सात सौ मन सोना चाँदी के बर्तन, सात सौ चालीस मन सोना, दो हज़ार मन चाँदी और बीस मन हीरा मोती जवाहरात लूटे थे। थानेश्वर के आक्रमण में यह दो लाख हिन्दुओं को क़ैदी बनाकर ले गया। फरिश्ता लिखता है कि उस समय गज़नी शहर हिन्दुओं की सी नगरी मालूम देता था। मदुरा को लूट में उसने छः मूर्ति ठोस सोने की पाई।

जिनके शरीर पर ग्यारह रत्न थे। मदुरा से वह इतने गुलाम बनाकर ले गया कि मुहम्मद अल उटवी ने लिखा है कि महमूद ने एक-एक गुलाम ढाई रुपये को बेचना चाहा पर खरीदार न मिले। मदुरा को देखकर महमूद ने खुद कहा था कि यहाँ हजारों महल विश्वासी के विश्वास की भाँति दृढ़भाव से खड़े हैं जो संगमर्मर के बने हैं। यहाँ अनगनित हिन्दू मन्दिर हैं। अनन्त धन खर्च किये बिना नगरी इतनी सुन्दर नहीं बन सकती। दो सौ वर्ष के यत्न और परिश्रम बिना ऐसी नगरी का निर्माण भी नहीं हो सकता।

इसके बाद इसने गुजरात का प्रसिद्ध सोमनाथ का मन्दिर लूटा। यह विशाल मन्दिर छप्पन खम्भों पर आधारित था जिनमें अनगनित बहुमूल्य रत्न लगे थे। चालीस मन भारी सोने की जंजीर से एक भारी घन्टा लटक रहा था। उसमें पाँच गज ऊँची शिवमूर्ति अधर थी। उसे अपने हाथों से तोड़कर असंख्य रत्नों का ढेर महमूद ने लूट लिया और उस मूर्ति को गजनी ले गया। उसके टुकड़े-टुकड़े करके एक टुकड़ा मस्जिद की सीढ़ियों और एक अपने महल की सीढ़ियों में लगा दिया। और उस मन्दिर के स्थान पर एक मस्जिद बनवा दी जा अब तक बनी है।

सुदूर गजनी से सिन्धु नदी को पार करके उजाड़ रेगिस्तान में होकर गुजरना और इस तरह गुजरात के दक्षिण तक भारी-भारी धावे मारना कम आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि सिवाय दो चार राजाओं के और किसी ने उसे रोकने की चेष्टा तक नहीं की। इसका कारण तात्कालिक सामाजिक परिस्थिति की हीनता थी। जिसका वर्णन अलबरूनी—जो महमूद के आक्रमण में उसके साथ था—इस प्रकार करता है—

"भारत बहुत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त है। सब राज्य स्वतन्त्र हैं और परस्पर युद्ध में प्रवृत्त रहते हैं। ब्राह्मण अपने अधिकारों की रक्षा के लिए इतने व्याकुल हैं, और जाति-भेद का ऐसा द्वेष भाव फैल रहे हैं कि वैश्यों और शूद्रों को वेद पाठ करते देखकर ब्राह्मण उन पर तलवार लेकर टूट पड़ते हैं। और उन्हें राज कचहरी में उपस्थित करते हैं जहाँ उनकी जिह्वा काट ली जाती है। ब्राह्मण सब प्रकार के राज कर से मुक्त हैं। हिन्दू बालाएँ सती हो जाती हैं। हिन्दू किसी देश को नहीं जाते, किसी जाति की

श्रद्धा नहीं करते—वे अपने को और अपनी जाति को सर्व-श्रेष्ठ समझते हैं।" हाय ! मेगस्थनीज और हुएनसांग के काल का भारत यहाँ तक पतित हो गया था !!!

इस बीच में गज़नी और ग़ौरियों से तलवार चल पड़ी—ग़ौरियों ने महमूद का वंश नष्ट कर दिया। महमूद के कोई एक सौ पचास वर्ष बाद मुहम्मद गौरी ने फिर भारत पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज ने युद्ध क्षेत्र के मैदान में उससे लोहा लिया और उसे परास्त करके बन्दी किया, फिर कुछ दण्ड लेकर छोड़ दिया। छः बार उसने आक्रमण किया और हार खाकर बन्दी हुआ तथा धन देकर छुटकारा पाया। यह तेरहवीं शताब्दी की बात है। इस समय भारत में चार प्रधान राजपूत वंश राज करते थे : १—दिल्ली और अजमेर में चौहान। २—कन्नौज में गहरवार। ३—गुजरात में सोलंकी और ४—चित्तौड़ में सीसोदिया। ये चारों राजवंश यद्यपि परस्पर सम्बन्धी थे पर थे कट्टर शत्रु।

गुजरात के कुछ सोलंकी सरदार चौहानों की शरण में अजमेर चले आये थे। उनमें से एक ने राज सभा में अपनी मूँछों पर ताव दिया—यह देख कर पृथ्वीराज के चचा कान्ह ने कहा—चौहानों के सामने कोई मूँछों पर ताव नहीं दे सकता—और उन सरदारों का सिर काट लिया। पृथ्वीराज ने चचा की इस बात पर क्रुद्ध होकर आज्ञा दी कि कान्ह की आँखों पर चमड़े की पट्टी बाँध दी जाय जो सिवा युद्ध काल के कभी न खोली जाय। सोलंकी सरदारों के मारे जाने के समाचार जब गुजरात के राजा सोलंकी मूलराज के पास पहुँचे तो वह सेना लेकर अजमेर पर चढ़ आया और सोमवती के युद्ध क्षेत्र में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर का सिर काट लिया। इसीलिये सोलंकी और चौहान जन्म के शत्रु हो गये।

अनंगपाल तोमर दिल्ली का राजा था। दिल्ली उस समय छोटी सी राजधानी थी। पृथ्वीराज चौहान और जयचन्द गहरवार दोनों ही उसके धेवते थे। उसने निस्सन्तान होने के कारण पृथ्वीराज को दिल्ली का राज्य दे दिया था। इससे जयचन्द मन ही मन में कुढ़ गया था। दूसरी बात यह थी कि देवगढ़ की यादवों की राजकुमारी की सगाई जयचन्द से हो गई थी। अभी विवाह न हो पाया था कि पृथ्वीराज बलपूर्वक राजकुमारी को

ब्याह लाया। जयचन्द इससे क्रोध में जल भुन गया। उसने चिढ़कर राजसूय यज्ञ किया और उसी में अपनी पुत्री का स्वयंवर रचा। सभी आधीन राजाओं को बुलाकर सेना कर्म में नियुक्त किया। पृथ्वीराज नहीं बुलाये गये थे। पर उनकी मूर्ति द्वारपाल के स्थान पर बनाकर खड़ी कर दी गई। पृथ्वीराज ने यह सुना, उसे यह भी मालूम था कि संयोगिता उसे चाहती है, वह भेष बदल कर अपने मित्र कवि चन्द वरदाई के साथ वहाँ पहुँच गया। संयोगिता ने उपस्थित राजाओं को अतिक्रमण करके पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में जयमाला डाल दी। यह देख जयचन्द क्रुद्ध होकर उसे मारने को झपटा, पर पृथ्वीराज ने सिंह की भाँति झपटकर उसे उठा लिया और घोड़े पर चढ़ाकर तलवार खींचकर गहरवारों को ललकार कर कहा कि पृथ्वीराज चौहान जयचन्द की कन्या का हरण करता है, जो क्षत्रिय हो रोक ले।

तलवारें खटकीं। भयानक मारकाट मची। पृथ्वीराज की सेना में एक सौ आठ सेनापति थे, और वे दिल्ली से कन्नौज तक एक-एक कोस के अन्तर पर अपनी-अपनी सेना लिये सन्नद्ध खड़े थे। जयचन्द के पुत्र ने ललकार कर कहा—क्षत्रिय होकर भागते क्यों हो, डोला रख दो और तलवारों से निबट लो, जो विजयी हो डोला ले जाय। संयोगिता पालकी में बैठा दी गई, और घनघोर युद्ध हुआ। प्रतिदिन दिन भर यद्ध होता और सन्ध्या समय डोला आगे बढ़ता था।

सोरों में डट कर युद्ध हुआ। गंगा का जल लाल हो गया। अन्त में दिल्ली की सीमा आ गई और जयचन्द को हार कर लौटना पड़ा, इससे उसकी क्रोधाग्नि कुचले हुए सर्प की भाँति भभक उठी।

सोलंकियों और गहरवारों ने मुहम्मद ग़ौरी को लिखा कि यदि इस समय पृथ्वीराज पर आक्रमण किया जाय तो हम सहायता कर सकते हैं। मुहम्मद ग़ौरी एक लाख बीस हज़ार सवार लेकर चढ़ दौड़ा। जयचन्द और सोलंकियों की सेना भी सहायता के लिए पहुँच गईं। पृथ्वीराज उस समय संयागिता के प्रेम में मतवाला हो रहा था। उसने झटपट सेना तैयार की, परन्तु उसके बाँके वीर प्रथम ही काम आ चुके थे। घर के शत्रुओं और विश्वासघातियों की कमी न थी, केवल चित्तौर के अधिपति समरसिंह जो उसके बहनोई थे, अपनी सेना सहित उसके साथ थे। तला-

वड़ के मैदान में दोनों सेनाएँ छावनी डालकर पड़ गईं, मुहम्मद ग़ौरी ने छल करके कुछ अवकाश माँगा और भयभीत होने का बहाना किया। फिर एक दिन रात को अचानक छापा मारा, चौहान झटपट तैयार होकर लड़ने लगे। मुसलमानों के पैर उखड़ गये, वे भागने को ही थे कि सोलंकियों ने और गहरवारों ने पीछे से धावा बोल दिया, मुसलमान फिर लौट पड़े। समरसिंह मारे गये। पृथ्वीराज पकड़े गये और मुहम्मद ग़ौरी ने इन्हें क़त्ल करवा दिया। इस प्रकार दिल्ली के पतन के साथ भारत के हिन्दू साम्राज्य की तक़दीर का फैसला हो गया। और सदा के लिये हिन्दुओं का दीप निर्वाण हो गया।

इसके दूसरे ही वर्ष उसने कन्नौज पर धावा बोल दिया। उस समय जयचन्द की सेना में पचास हज़ार सवार मुसलमान थे। वे ठीक युद्ध के समय उलट पड़े और राजा की सेना को काटने लगे। राठौरों की सेना तितर-बितर हो गई और जयचन्द कुतुबुद्दीन एवक का तीर खाकर घोड़े समेत गंगा में गिर गया और डूब गया। कन्नौज पर उसका अधिकार हो गया। इसने कन्नौज में एक हजार मन्दिर तुड़वाये। लूट का सोना और चाँदी चार हज़ार ऊँटों पर लादकर अफ़गानिस्तान ले गया। वह सब लूट का माल और लाखों स्त्री पुरुषों को ग़ुलाम बनाकर साथ ले गया तथा अपने सेनापति कुतुबुद्दीन को दिल्ली का राज्य दे गया। यह कुतुबुद्दीन शाहबुद्दीन का ग़ुलाम था। वही ग़ुलाम प्राचीन भारत की क़िस्मत का विधाता बना और भारत में मुसलमानी राज्य की जड़ जमी।

---

: ११ :

# पठान

इस प्रकार बारहवीं शताब्दी में दिल्ली के सिंहासन पर पठानों का साम्राज्य स्थापित हुआ जो तीन सौ तेतीस वर्ष तक स्थिर रहा।

पठानों के लोमहर्षण अत्याचार प्रसि हैं। पर उनमें भी आत्म-कलह का अन्त न था। वे छल, बल, कौशल से हिन्दू राज्यों को हड़पने लगे।

क्लाकमैन साहब ने लिखा है कि—

"हिन्दुओं का धन ऐश्वर्य ही उनके नाश का कारण हुआ है। इसीसे पठान लोग उसे लूटने को अग्रसर हुए। हिन्दू धर्म उनके राजकीय कामों में विघ्न डालता था। अनगनित तीर्थ पठानों ने विध्वंस कर डाले। तीर्थ जाने की शाही आज्ञा बिना प्राप्त किये कोई तीर्थ यात्रा नहीं कर सकता था। चौदहवीं शताब्दी के मध्यम भाग में प्रत्येक हिन्दू परिवार के वयस्क मनुष्यों की गणना करके आज्ञा निकाली गई थी कि धनवान पुरुष से चालीस, मध्यम से बीस और दरिद्र से दस रुपया जज़िया लिया जाय।

कुतुबुद्दीन एबक ने हाँसी, दिल्ली, मेरठ, कोयल, रणथम्बोर, अजमेर, ग्वालियर, कालिंजर और गुजरात की ईंट से ईंट बजा डाली। हजारों मन्दिर विध्वंस कर दिये। लाखों रन-नारी काट डाले।

कुतुबुद्दीन के ग़ुलाम मोहम्मद इब्ने वख्तयार ने एक सेना लेकर बिहार और बंगाल की ओर कूच किया। मार्ग में उसने काशी के हज़ारों मन्दिरों को विध्वंस कर दिया। बिहार और बंगाल में पाल और सेनवंशी राजा राज्य करते थे, उन्हें छल से मार डाला गया। बिहार में उस समय बारह हज़ार बौद्ध भिक्षु रहते थे। वहाँ उनका एक बड़ा भारी पुस्तकालय

और विद्यापीठ थी। उन सब भिक्षुओं को क़त्ल कर दिया गया और पुस्तकालय और विद्यापीठ को जलाकर ख़ाक कर दिया। इसके बाद ही अलतमश ने उज्जैन पर आक्रमण किया और महाकाल के मन्दिर को विध्वंस कर वहाँ की करोड़ों रुपये की सम्पदा लूट ली।

इस गुलाम वंश के कुल आठ बादशाह हुए और इन्होंने लगभग सौ वर्ष दिल्ली में राज्य किया।

इसके बाद खिलजी वंश का राज्य हुआ जो तीस वर्ष तक रहा। इस वंश के तीन बादशाह हुए। फिरोजशाह इस वंश का प्रथम बादशाह था। उसने जैसलमेर पर आक्रमण किया। उस समय अपने सतीत्व की रक्षा के लिये निरुपाय हो वहाँ की दो हज़ार चार सौ स्त्रियाँ आग में कूद कर जल मरीं। इसका भतीजा अलाउद्दीन दक्षिण गया और देवगढ़ के राजा रामदेव से कहा कि मैं चचा से लड़कर आया हूँ, मुझे शरण दें। राजा ने शरण दे दी। पर अलाउद्दीन ने अवसर पाकर उत्सव के समय—जबकि राजा की सेना अन्यत्र गई थी, लूट-मार मचा दी। करोड़ों का धन लूटकर महल भस्म कर दिया, राजवंश को क़त्ल कर दिया। चित्तौर की पद्मिनी के लिये चढ़ गया और युद्ध के बाद वहाँ तेरह हज़ार राजपूत स्त्रियाँ प्रतिष्ठा बचाने को आग में पद्मिनी के साथ जल मरीं। गुजरात के राजा करण को मार उसकी रानी और बेटी को छीन लिया। रानी से स्वयं विवाह किया और बेटी से अपने पुत्र का।

इसके शासन में हिन्दुओं की अति दयनीय दशा हो गई थी। एक बार काज़ी ने उससे कहा था—"आपके राज्य में काफ़िरों की ऐसी दुर्दशा हो गई है कि उनके स्त्री बच्चे मुसलमानों के द्वार पर रोते और भीख माँगते फिरते हैं। इस शुभ काम के लिये यदि खुदा आपको जन्नत न भेजे तो मैं जिम्मेदार हूँ।"

फ़िरोज़शाह के शासन में यह विधान था कि "ज्यों ही कोई शाही नौकर हिन्दुओं से कोई कर चाहे त्योंही वह अति विनीत भाव से सिर झुका कर दे दे। यदि कोई मुसलमान किसी हिन्दू के मुँह में थूकना चाहे तो उसको चाहिये कि सीधा खड़ा रहकर मुँह को खोले रहे जिससे उस मुसलमान को अपना मतलब हल करने का पूरा सुभीता रहे। मुँह में

थूकना किसी बुरी भावना से नहीं सिर्फ हिन्दुओं की राजभक्ति की परीक्षा के लिये है। केवल इस्लाम की महिमा प्रकट करना और हिन्दू धर्म से अतुलनीय घृणा प्रदर्शन करना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। जो किसी प्रकार भी अनुचित नहीं। क्योंकि ख़ुदा ने कहा है कि काफ़िरों को लूटो, उन्हें ग़ुलाम बनाओ और उन्हें क़त्ल कर दो। जो इस्लाम न कबूल करें उनसे ज़बरन कराओ। हिन्दुओं से निकृष्ट व्यवहार करना हमारा धर्म है, यह मुहम्मद साहब की आज्ञा है। जज़िया लेकर काफ़िरों को छोड़ देना वाहियात है, यह सिर्फ अबहूनीफ़ की राय है, और सबने क़त्ल का हुक्म दिया है।"

पाठक सोच सकते हैं कि यह मनोवृत्ति कितनी ज़बरदस्त थी, और इसने किस प्रकार हिन्दुओं को विचलित कर दिया होगा।

इसके बाद तुग़लक़ वंश के छः बादशाहों ने लगभग सौ वर्ष राज्य किया। मुहम्मद तुग़लक़ एक भयानक खूनी आदमी था। वह हज़ारों स्त्री-पुरुष बालकों को एक जगह घिरवाकर उनमें शिकार के शौक से भीतर घुसता था और विविध प्रकार के खेलों से उन्हें क़त्ल करता था। नाक कान काट लेना, आँखें निकलवा लेना, सिर में लोहे की कील ठोकना, आग में जलवाना, खाल खिचवाना, आरे से चिरवाना, हाथी से कुचलवाना, सिंह से फड़वाना, साँप से डसवाना और सूली पर चढ़वाना उसके दण्डों के प्रकार थे।

फिरोज़शाह तुगलक ने जब नगरकोट को विजय किया तब गोमांस के टुकड़े तोबड़ों में भरकर हिन्दुओं के गले में लटकवा दिये और बाज़ारों में फिराकर खाने की आज्ञा दी। जिसने इन्कार किया उसी का सिर काट लिया। उसने सुना कि एक ब्राह्मण मुर्तिपूजा करता है और हिन्दुओं को दर्शन के लिये बुलाता है। उसने ब्राह्मण और दर्शक सभी को जिन्दा फूँक देने का हुक्म दे दिया। इसने सैकड़ों मन्दिर विध्वंस कर दिये। जब वह जम्बू गया और वहाँ का राजा भेंट लेकर मिलने आया तो फिरोज़शाह ने उसके मुँह में गोमांस भरवा दिया।

एक पठान बादशाह ने एक हमले में मेवात के एक लाख मनुष्यों को मार डाला था। दूसरे पठान बादशाह ने एक हिन्दू राजा की जीती खाल

खिंचवा ली थी। एक पठान बादशाह ने अपनी राजधानी दिल्ली से उठवाकर देवगिरि ले जाने का इरादा करके दिल्ली के सब निवासियों को वहाँ चल बसने का हुक्म दिया था, जिससे हजारों नरनारी मार्ग ही में मर गये थे। एक पठान बादशाह ने कन्नौज के बालक, बुड्ढे, बच्चों सभी को क़त्ल करवा दिया था। सैकड़ों नर मुण्ड उसने अपने नगर की प्राचीर पर कटवाकर लगा दिये थे। एक बादशाह ने दक्षिण में सत्रह वर्ष में पाँच लाख हिन्दू मरवा दिये थे। दक्षिण के एक मुसलमान राजा का यह स्वभाव था कि यदि सड़क पर किसी की बारात जाती देखता तो दुलहिन को पकड़वा मँगाता और उसका सतीत्व नष्ट करके वापस कर देता था। इन लोमहर्षण अत्याचारों से छिन्न-भिन्न होकर सारे देश का रस सूख गया और समग्र देश में विषाद और शोक की हाय भर गई। जातीयता अतल पाताल में जा डूबी।

---

: १२ :

# मुग़ल और तैमूर लंगड़ा

ईसा की तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से 'चंगेजखाँ' ने पूर्वीय एशिया से निकल कर उत्तरी चीन तथा तातार और अधिकांश एशिया को विजय कर लिया था। सन् १२२७ में चंगेज़ खाँ की मृत्यु हुई। दूसरे ६८ वर्ष के अन्दर चंगेज़ खाँ के उत्तराधिकारियों ने भारत को छोड़ कर लगभग शेष समस्त एशिया और योरोप के एक बड़े भाग को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया। योरोप पर यह हमला सन् १२३८ में हुआ। योरोपियन इतिहास लेखकों का कहना है कि इससे पूर्व ईसा की आठवीं शताब्दी में जब अरबों ने यूरोप पर आक्रमण किया था, उस समय से इस आक्रमण तक और कोई भयङ्कर आपत्ति यूरोप पर नहीं आई थी। कुछ ही वर्षों में समस्त रूस, पोलैण्ड, वलकन, हंगेरी, यहाँ तक कि बाल्टिक समुद्र और पश्चिम में जर्मन तक आधे से अधिक योरोप मुग़लों के आधीन हो गया। रूस पर दो सौ वर्ष तक मुग़लों का अधिकार रहा। ये मुग़ल बौद्ध धर्मानुयायी थे। स्वयं चंगेज़ ख़ाँ बौद्ध था। और मंगोलिया के प्राचीन मूर्ति-पूजक धर्म को भी मानता था। इन्हीं बौद्ध मुग़लों ने एशिया और योरोप को अधिकांश में विजय किया। इन्होंने मुस्लिम ईरान और मुस्लिम ईराक़ को फ़तह किया था। इसके बाद चंगेज़ खाँ के पौत्र हलाकू ने पराजित ईरानियों और अरबों से इस्लाम मत ग्रहण किया।

## तैमूर लंगड़ा

इस नाम का चग़ताई ख़ानदान और तातारी नस्ल का एक मुसलमान था जो कुछ गाँवों पर अधिकार रखता था और बहुत से रेबड़ों, ऊँटों और

घोड़ों का स्वामी था तथा अपने इलाके में दबदबे वाला आदमी था। इस की एक अति सुन्दरी पुत्री थी जिसे बड़े-बड़े बादशाह माँगते थे। जिनमें तुर्किस्तान का बादशाह भी था। पर वह कहीं भी शादी करने को राजी न थी। इसे गुप-चुप गर्भ रह गया, यह जान कर पिता को अत्यन्त क्रोध हुआ, परन्तु कन्या ने कहा—पिता क्रोध न करो—यदि इस रहस्य को जानना है तो प्रातःकाल मेरे कमरे में आइये। पिता ने प्रातःकाल जाकर देखा तो सूर्य की एक किरण कमरे में खेलती पाई गई और देखते-देखते गायब हो गई, तब से पिता को निश्चय हो गया कि कन्या सूर्य से गर्भवती है और उस गर्भ से तैमूर का जन्म हुआ है। वह अपने को सूर्य का पुत्र कहता था और इसी कारण मुग़ल बादशाह और शहज़ादे अपने झण्डे पर सूर्य का चिह्न लगाते थे। उसके जन्म पर ज्योतिषियों ने कहा कि यह अनेक राजों को विजय करेगा।

बचपन से ही उसने सेना भर्ती की और आसपास के इलाकों पर कब्जा करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही सुलतान मुहम्मद के सारे इलाके को कब्जे में कर लिया और अन्त में सुलतान को भी पकड़ कर मार डाला। कुछ दिन बाद काबुल के बादशाह को क़त्ल कर उस पर भी क़ब्जा कर लिया।

अब उसने भारत की ओर मुँह फेरा।

पहले उसने कुरआन शरीफ़ से शकुन लिया। उसको खोलकर नियत स्थान पर पढ़ा गया तो लिखा था....."ऐ पैग़म्बर काफिर और मूर्तिपूजकों के साथ युद्ध करके उन्हें क़त्ल कर।" इसके बाद उसके दो हज़ार सवार अपने सामने बुलाये और कहा—आप जानते हैं कि हिन्दुस्तान के आदमी मूर्ति और सूर्य की पूजा करने वाले काफिर हैं। ख़ुदा और रसूले ख़ुदा का हुक्म है कि ऐसे काफिरों को क़त्ल करें। मेरा इरादा हिन्दुस्तान पर जहाद की चढ़ाई करने का है। इस पर सब लोग 'आमीन अल्ला' चिल्ला उठे। तब अवसर पा तैमूर ने सन् १३९८ ई० में भारत की ओर बाग मोड़ी।

चौदहवीं शताब्दी पठानों के स्वच्छन्द अत्याचारों से भरपूर व्यतीत हुई थी, तभी मध्य एशिया का यह प्रसिद्ध लंगड़ा तैमूर असंख्य तातारी भेड़ियों को लेकर भारत पर चढ़ आया। उसके साथ ९२ हजार सवार थे।

उस समय दिल्ली के तख्त पर मोहम्मद तुगलक था। तैमूर बिना रोक टोक सेना की सहायता से सिन्धु महानद को उतर आया और तेजी से आगे बढ़ने लगा। जिस प्रदेश और नगरी में गुजरता उसी को लूटता हुआ, घरों को जलाता, निरपराध स्त्री-पुरुषों को क़ैद करता बढ़ा चला आया। भटनेर में उसने एक घण्टे में दस हज़ार हिन्दुओं को क़त्ल किया। दिल्ली पहुँचते-पहुँचते एक लाख कैदी उसके साथ हो गये। उन्हें भोजन देना अब कठिन हो गया तब हुक्म दिया कि पन्द्रह वर्ष की अवस्था से अधिक के स्त्री-पुरुष क़ैदी क़त्ल कर दिये जाँय। लाशों का ढेर लग गया और ख़ून की नदी बह गई। पठानों की कायर और आलसी सेना शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गई। दिल्ली में तैमूर ने प्रवेश किया। बादशाह गुजरात भाग गया। दिल्ली वालों ने अभय वचन लेकर द्वार खोल दिया और आत्मसमर्पण किया। भीतर घुसते ही पाँच दिन तक तैमूर ने कत्ले-आम कराया। धाँय-धाँय, नगर भस्म होने लगा। लूट, हत्या, सतीत्व नाश और नरहत्या का अखण्ड राज्य पाँच दिन तक चला। तैमूरी सेना के एक-एक आदमी ने सौ-सौ नागरिकों को ध्वंस किया और एक लाख आदमी कत्ल करके फिरोजशाही मस्जिद में सोलहवीं नमाज पढ़ी। तैमूर ने अपने विजय उत्सव के ये दिन सुरा और सुन्दरी-सेवन में व्यतीत किये। दिल्ली से उसने मेरठ पर धावा बोल दिया और पहुँचते ही हिन्दुओं का सिर काटना शुरू कर दिया। पचास हज़ार स्त्री पुरुष क़त्ल कर दिये, और हजारों जवान स्त्री और बच्चे क़ैद कर लिये। प्रत्येक सिपाही के हिस्से में बीस से लेकर सौ क़ैदी तक आये थे। यहाँ से वह हरद्वार गया—वहाँ गंगा का पर्व था—बहुत भीड़ थी—उसने मेले में क़त्लेआम बोल दिया—गंगा का जल ख़ून से लाल हो गया। फरिश्ता लिखता है—

"मुग़ल सेना लूटने की लालसा से महा नगरी दिल्ली के भिन्न-भिन्न स्थानों पर पागल की भाँति छूटी थी। लूटे हुए द्रव्य को उठाना कठिन हो गया था। वे लोग जाति, आयु, धर्म किसी का भी ख़याल न करके सबको क़त्ल करते थे। मुर्दों से सड़कें रुक गई थीं। वह भयंकर दृश्य वर्णन करना अशक्य है। अनुमानतः एक लाख नर-नारी इन पाँच दिनों में दिल्ली में मारे गये थे। तैमूर अन्त में महामारी, दुर्भिक्ष और अराजकता भारत में छोड़कर

अपरिमित धन और असंख्य क़ैदी लेकर स्वदेश को लौट गया। उसके साथ ही पठानों की शक्ति भी धूल में मिल गयी और शासन सैयदों के हाथ आया—परन्तु इनका शासन दिल्ली के आस-पास था। चारों ओर छोटे-छोटे मुस्लिम राज्य बन गये थे। इन्होंने सैंतीस वर्ष राज्य किया। अब लोदी वंश आया। परन्तु पठानों के जुल्म तो उसी भाँति चल रहे थे। सिकन्दर लोदी मन्दिरों और मूर्तियाँ तोड़ने और हिन्दू तीर्थों और गंगायात्रा को रोकने में लगा हुआ था। एक ब्राह्मण को हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का उपदेश देने के कारण पकड़वा मँगवाया गया और अपना उपदेश लौटाने को कहा गया, पर उसने जब स्वीकर न किया तो उसका सिर कटवा लिया गया।"

तुजक तैमूरी में लिखा है कि प्रत्येक सिपाही के हिस्से में पन्द्रह हिन्दू आये थे। जो क़त्ल कर दिये गये। इस प्रकार दिल्ली में तेरह लाख अस्सी हज़ार हिन्दू क़त्ल किये गये!

इस कार्य को करके उसने जमीन में गिरकर ईश्वर को धन्यवाद दिया कि जिस काम के लिये वह हिन्दुस्तान आया था वह काम पूरा हुआ।

इस विजय के बाद वह क़ाबुल लौट गया। अब वह बेशुमार धन का स्वामी और महान् वैभव का अधिकारी था। इतिहासकार कहते हैं कि कोई आदमी इसकी वीरता और सम्पत्ति का अनुमान नहीं कर सकता था। यह आठ साल तक सेनाओं को पेशगी तनखाह देता रहा। और चौबीस साल दो मास दो दिन शासन करने के बाद मृत्यु को प्राप्त हुआ और क़ाबुल में दफ़ना दिया गया।

तैमूर के बाद उसका पुत्र सुल्तान मीराशाह क़ाबुल की गद्दी पर बैठा। इसकी सारी शक्तियाँ सुल्तान काशगर से युद्ध करने में खर्च होती रहीं। इसने उन्नीस वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद इसका पुत्र सुल्तान अबू सईद गद्दी पर बैठा। यह निष्ठुर और ऐयाश था—इससे नाराज़ होकर सरदारों ने इसे मार डालने का इरादा किया, पर यह भाग गया। तब उन्होंने इसके छोटे भाई को गद्दी पर बैठाया। उसने गद्दी पर बैठते ही अपने तमाम सरदारों को क़त्ल करने का हुक्म दे दिया। इस पर सरदार बड़े घबराये और उसे गद्दी से उतार फिर बड़े भाई को गद्दी पर बैठाया। इसके बाद इसका बड़ा पुत्र सुल्तान

शेख़ उमर गद्दी पर बैठा—यह दयालु और न्यायी था, प्रजा इसे बहुत पसन्द करती थी। इसने लड़ाई-झगड़े नहीं किये, अपनी प्रजा पालन में ही संतुष्ट रहा। इसे कबूतर उड़ाने का बड़ा शौक़ था—एक बार वह कबूतर उड़ाते हुए महल की छत से पैर फिसल जाने से गिर गया और मर गया। इसने पाँच वर्ष दो मास सात दिन राज्य किया।

इस ख़ानदान का पाँचवाँ बादशाह सुल्तान महमूद कट्टर मुसलमान था—इसने बारम्बार हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। यह सदा अपने राज्य के बढ़ाने की धुन में रहता और दिन भर में कई बार कुरान पढ़ता। हिन्दुस्तान पर चढ़ाइयाँ कीं और बहुत से मन्दिरों को ढाया और लूटा।

एक बार उसने एक पठान बादशाह पर चढ़ाई की और विजय प्राप्त की। सायंकाल को जब रणक्षेत्र में हज़ारों लाशों को रोंदता हुआ गर्व से फूला जा रहा था तब एक घायल ने तीर मारकर उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार इस प्रसिद्ध योद्धा का अन्त हुआ।

इसके बाद बाबर ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया। उस वक्त दिल्ली की गद्दी पर कमजोर पठान बादशाह इब्राहीम लोदी राज्य करता था।

इन्हीं दिनों में मेवाड़ में महाराजा संग्रामसिंह जी चमके थे। इन्होंने सन्मुख युद्ध में अठारह बार दिल्लीश्वर को और मालवा के मुसलमान बादशाह को परास्त किया था। इस प्रकार सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही पठानों की लीला समाप्त हुई थी और मुगलों की शक्ति सञ्चित होने के लिये समय की प्रतीक्षा करने लगी थी।

परन्तु इतना होने पर भी हिन्दू संगठित नहीं हो रहे थे। तैमूर के बाद से अकबर के समय तक एक सौ अट्ठावन वर्ष का दीर्घ काल एक प्रकार से अराजक काल था। दिल्ली के तख्त में न शक्ति थी, न दृढ़ता थी। परस्पर के युद्ध जारी थे। पठानों की मुसलमानी सत्ता निर्मूल वृक्ष की भाँति अधर में काँप रही थी। हिन्दू यदि उसे उस समय एक धक्का देने योग्य भी होते तो वह बह जाती।

क़ासिम ने जब सातवीं शताब्दी में आक्रमण किया था तब से और आठ सौ वर्ष बीत जाने पर सोलहवीं शताब्दी में बड़ा अन्तर था। क़ासिम से कड़ाई से मुठभेड़ की गई थी। किसी ने क़ासिम को आत्मसमर्पण नहीं

किया था। लाहौर का राजा जयपाल जब महमूद से पराजित हुआ तो उसने ग्लानि के मारे स्वेच्छा से अपने को अग्निकुण्ड में डालकर यश स्थिर रखा था, वह हम पीछे लिख चुके हैं।

क़ासिम के आगमन काल में प्रायः सर्वत्र ही हिन्दू राज्य था। महमूद के आक्रमण तक भी इसमें कमी न हुई थी। महमूद ने चेष्टा करके पंजाब का कुछ अंश अधिकृत किया, पीछे मुहम्मद ग़ौरी ने अन्तिम आक्रमण के समय बारहवीं शताब्दी के अन्त में भी दिल्ली की हद को छोड़कर सर्वत्र हिन्दू राज्य था। इसके बाद धीरे-धीरे एक-एक करके हिन्दू राज्य नष्ट होने लगे और मुसलमानी राज्य स्थापित होते गये। प्रथम बिहार, फिर पश्चिमी बंगाल, उसके बाद पूर्वी बंगाल भी मुसलमानों के आधीन हो गये। मालवे और उज्जैन में अभी तक हिन्दू राज्य थे—तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक गुजरात में हिन्दू राज्य रहे। काश्मीर चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में मुसलमानों के हाथ पड़ा। अकबर के समय तक उड़ीसा हिन्दू राज्य के आधीन था। बदाऊँनी ने लिखा है—उड़ीसा का राजा अन्य राजा की अपेक्षा सैन्य बल में प्रसिद्ध था। अकबर ने उससे मेल करने को दूत भेजे थे। सन् १५६० में वह मुसलमानों के हाथ में आया।

इसीके पाँच वर्ष पीछे दक्षिण का हिन्दू राज्य विजयनगर मुसलमानों के हाथ लगा। उसके दक्षिणी भाग के हिन्दू राजाओं ने अठारहवीं शताब्दी तक स्वाधीनता की रक्षा की।

सब से प्रथम अकबर ने दिल्ली में बैठकर मध्य भारत के हिन्दू राज्यों को छीनना शुरू किया। सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में हिन्दू राजा हिमालय के उच्च प्रदेशों में शक्तिशाली थे। उनके पास प्रायः एक लाख पैदल और दस हज़ार सवार थे। राजपूताने ने यद्यपि सिर झुका लिया था, पर हिन्दू शक्ति वहाँ भी प्रभावशाली थी। बाबर ने लिखा है कि जिस समय मैंने दिल्ली अधिकृत की थी, उस समय दक्षिण में विजयनगर और राजपूताना में चित्तौड़, ये दो प्रबल शक्तियाँ थीं। अकबर के समय तक जोधपुर के हिन्दू राजा के पास अस्सी हजार सवार थे। उस समय बुन्देलखण्ड का भी राजा महाशक्तिकाली था। आसाम, कूचविहार, टिपटा और अकरान प्रबल हिन्दू राजाओं के आधीन थे। और मुसलमानों

के भी अधिकृत प्रदेशों में अधिक शक्तिशाली हिन्दू जमींदार और हिन्दू प्रजा थी।

बदाऊँनी ने लिखा है:—

"हिन्दुओं के बराबर प्रबल प्रतापान्वित पठान और मुग़लों में एक भी जाति विद्यमान न थी।" ब्लाकमैन साहेब भी कहते हैं कि—"भारत वर्ष एक दिन भी सम्पूर्ण रूप से मुसलमानों के आधीन न हुआ। भारत का सुविस्तृत क्षेत्रफल और असंख्य हिन्दू अधिवासीगण आक्रमण करने वालों से कहीं अधिक थे।

परन्तु इतना होने पर भी हिन्दू संगठित न हो सके और उनकी राज नैतिक शक्ति छिन्न-भिन्न ही रही।

---

: १३ :

## मुगलों का साम्राज्य

बाबर ही का आगमन भारत में सच्चे मुग़ल साम्राज्य की नींव जमाने का कारण हुआ और मुग़लों का आगमन भारत में सच्ची मुस्लिम सत्ता की स्थापना का कारण हुआ। यद्यपि यह काल भी हिन्दूओं के विपरीत न था। इस समय देश में कई हिन्दू और मुसलमान शासक थे—और देश भर में अराजकता फैल रही थी, पर चित्तौर की गद्दी पर प्रबल पराक्रमी राणा सांगा उपस्थित थे। यह हम पहले कह चुके हैं कि उसने अठारह बार दिल्ली के पठान बादशाहों को विजय किया था।

मुग़लवंश का संस्थापक बाबर एक उद्यमी साहसी योद्धा था। वह दयालु और उदार था। वह तैमूर की पीढ़ी में था—और इसलिए दिल्ली को अपनी सम्पत्ति समझता था। उसने सरहद और बुख़ारा प्राप्त करने की बड़ी चेष्टा की पर विफल रहा। तब उसने काबुल फतह किया और बाईस वर्ष वहाँ राज्य किया। इसके बाद उसने भारत पर धावा बोल दिया और अनायास ही दिल्ली व आगरा उसके हाथ आगये। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने पुत्र हुमायूँ को आस पास के प्रान्त विजय करने को भेज दिया और शीघ्र ही बयाना, धौलपुर, ग्वालियर और जौनपुर उसके अधिकार में आगये। उसकी इस सफलता में उसके हिन्दू वजीर रेमीदास को भारी श्रेय है जो अत्यन्त बुद्धिमान, चतुर और दूरदर्शी आदमी था।

अन्त में उसे राणा सांगा के साथ युद्ध करना पड़ा। कनुबा के मैदान में मुठभेड़ हुई और बाबर को सांगा से हार खानी पड़ी और सन्धि कर सागा को कर देने का प्रण किया। परन्तु इसी बीच में कुछ विश्वासघातियों के कारण सांगा को हार खा कर भागना पड़ा और बाबर विजयी होकर

लौट आया। इस विजय के उपलक्ष्य में जो उत्सव मनाया गया था उस समय लाखों हिन्दू कत्ल किये गये थे और शाही तम्बू के सामने खून की नदी बह निकली थी। परन्तु बाबर को दिल्ली के तख़्त पर बैठना नसीब न हुआ, वह शीघ्र ही मर गया। उसका पुत्र हुमायूँ भी जीवन भर युद्ध करता और इधर-उधर भागता फिरा।

इस बीच में एक बार पठान राजा शेरशाह और उसके एक हिन्दू सरदार हेमू ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया—हुमायूँ काबुल को भाग गया—पर यह चिरस्थाई न रहा। परस्पर की फूट और द्वेष ने सबका नाश किया। कुप्रबन्ध ने सुव्यवस्था न होने दी और सैनिक शासन ने सुप्रबन्ध न होने दिया। इस बादशाह ने बहुत सरायें बनवाईं, जिनमें एक विवाहित गुलाम रखा जाता था, जिसका यह काम था कि मुसाफिरों के लिए भोजन बनावे, पीने को ठण्डा पानी और नहाने को गर्म पानी का प्रबन्ध रखे। सराय में प्रत्येक मुसाफिर के लिये एक एक चारपाई चादर सहित मिलती थी। इन सबका ख़र्च सरकारी खजाने से मिलता था। बहुत-सी सरायें सेठों और साहूकारों ने बनवाई थीं, जिनमें बाग, तालाब और आराम की बहुत सी चीजें थीं।

इसी बादशाह के राज्य में तोल नियुक्त की गई। बाट बनाये गये। गज नियत किये गये और सिक्के ढाले गये। इससे पहले प्रायः कपड़ा बालिश्तों से तथा जिन्स नजर से अन्दाज करके बिकती थी। यद्यपि यह प्रजाहित करने की चेष्टाएँ करता था पर एक बार इसने चित्तौर के राणा संग्रामसिंह पर धावा बोल दिया और भारी हार खा अन्तिम दिनों वह बंगाल में रहा और उधर ही मरा।

उसके मरने पर देश भर में क्रान्ति मच गई। उस समय एक फ़क़ीर शाहदोस्त रहते थे—उन्होंने अपने एक चेले को हुमायूँ के पास एक जूता और एक चाबुक लेकर भेजा। हुमायूँ ने फ़क़ीर का मतलब समझ लिया और उसने फिर से भारत पर चढ़ाई की तैयारियाँ कीं। शाह फारिस से उसने सहायता माँगी। हुमायूँ ईरान, काबुल घूम फिर कर पन्द्रह हज़ार सेना इकट्ठी करके फिर भारत में आया और दिल्ली व आगरे पर कब्जा कर लिया। परन्तु इसके छः मास बाद मर गया।

उस समय अकबर सिर्फ तेरह वर्ष का था, और राज्य की परिस्थिति अनिश्चित थी। दिल्ली और आगरे को छोड़ कर उसके पास और कुछ न था। फिर सिकन्दरसूर और हेमू उसके विरुद्ध तैयार हो रहे थे। बाबर ने अपने मित्र बैरम खाँ के हाथ में अकबर को सौंपा। बैरमखाँ एक वीर सेनापति और उच्च वंश का तुर्क था। अकबर नें उसे प्रधान मन्त्री और संरक्षक बनाया। बैरमखाँ ने पानीपत के मैदान में सिकन्दर और हेमू की संयुक्त सेना को पराजित किया। हेमू कत्ल कर दिया गया और सिकन्दर को पंजाब में पराजय कर क्षमा दान दे बङ्गाल जाने दिया। दो वर्ष बाद अकबर ने स्वाधीन होकर राज्य सम्भाला और बैरमखाँ को मक्का भेज दिया, पर वह मार्ग ही में मार डाला गया।

उस समय अकबर की शक्ति डाँवाँडोल थी। पंजाब, ग्वालियर, अजमेर, दिल्ली और आगरा तो उसके आधीन हो गये थे, पर बङ्गाल में अफगानों की अभी शक्ति थी। उसकी फौज में भी जो सिपाही थे अधिकांश तुर्की लुटेरे थे जो लूट मार के लालच से ही सेना में भरती हुए थे। और जो सेनापति थे—वे अपने-अपने अधिकारों को बढ़ाने की चिन्ता में ही रहते थे। जो सरदार जिस प्रान्त में शासक बना कर भेजा गया वह वहाँ का सालम हाकिम बन बैठा। पर अकबर बड़ा मुस्तैद सिपाही था। वह रात दिन कूच करके उनके सावधान होने से प्रथम ही उन्हें धर दबाता। इस प्रकार सात वर्ष इसे अपने अनुयाइयों के दबाने में लगे। अन्त में काबुल के शासक ने पंजाब पर धावा किया जो उसका भाई था, परन्तु वह हरा कर भगा दिया गया।

अब आन्तरिक विवादों को मिटा कर वह राजपूतों को दबाने के लिये झपटा। उसकी नीति पूर्ववर्ती मुसलमान शासकों से भिन्न थी। वह सिर्फ यही चाहता था कि राजे अपने राज्य पर बने रहें केवल उसकी आधीनता स्वीकार करलें।

आमेर का राजा उसका मित्र बन गया और अपनी पुत्री अकबर को दी। अकबर ने उसके पुत्र को प्रधान सेनापति बना दिया। जोधपुर और अन्य राजपूत शक्तियाँ थोड़ा विरोध करके उसके आधीन हो गईं। ये सब लोग उसके सहायक और मित्र बन गये और अकबर ने इन हिन्दू राजवंशों

से अपने वंश में रिश्तेदारियाँ कर लीं। केवल चित्तौर ही अकेला रह गया था, जिसने अन्त तक विरोध किया और अधीनता स्वीकार नहीं की।

अकबर ने स्वयं चित्तौर को घेरा। राणा उदयसिंह पर्वतों में चले गये और राठौर जयमल ने युद्ध किया। भयानक युद्ध के बाद चित्तौर का पतन हुआ। सहस्रों स्त्रियाँ जल गईं और बचे हुए योद्धा केसरिया बाना पहन कर जूझ मरे।

महाराणा प्रताप ने बाईस वर्ष अकबर से युद्ध किया और चित्तौर के अतिरिक्त सब प्रदेश छीन लिया और राजधानी उदयपुर बसाई।

बङ्गाल में दाऊदखाँ अफ़ग़ान की अमलदारी अब भी थी। समय पाकर अकबर ने आगमदल के युद्ध में सदा के लिये उन्हें भी नाश कर दिया। राजा टोडरमल बङ्गाल के हाकिम बने। ये प्रथम श्रेणी के सेनापति और प्रबन्धक थे। मुसलमान बादशाह का यह पहला हिन्दू सरदार था। इसके बाद उसने काश्मीर, सिंधु और कंधार को फतह किया था—इन प्रान्तों को राजा बीरबल ने फतह किया और वे वहीं काम भी आये।

जिस समय दिल्ली में बैठकर अकबर समस्त उत्तर भारत को अधिकृत कर रहा था—उस समय दक्षिण में एक प्रबल हिन्दू राज्य था जो विजयनगर का था। यहाँ के राजा के पास सात लाख सेना थी और वहाँ का वैभव अद्भुत था। उस प्रबल राज्य को पड़ौसी मुसलमान राज्यों ने मिलकर तालीकोट के मैदान में विजय कर लिया, और बड़ी क्रूरता से हिन्दुओं का विध्वंस किया। फिर वे स्वयं परस्पर लड़ने लगे। अवसर पाकर अकबर ने अपने पुत्र मुराद को सेना लेकर दक्षिण में भेजा और शीघ्र ही अहमदनगर बरार और ख़ानदेश अधिकृत कर लिये।

अकबर ने अपनी चतुराई और विलक्षण राजनीति से शक्तिशाली राजपूतों को मित्र बना लिया। उसने राजपूत सरदारों की आधीनता में राजपूतों की सेनाएँ भेजीं और उन्हें परास्त किया। उसने गुजरात को विजय किया। फिर बुरहानपुर आर दौलताबाद तक फतह करता चला गया और दक्षिण में पूरा दबदबा पैदा कर लिया। इसके बाद उसने काश्मीर को फतह किया, जिसमें उसको कुछ भी कष्ट न उठाना पड़ा। उसके बाद उसने चित्ताड़ पर आक्रमण किया और बड़ी कठिन लड़ाई के बाद उसे विजय किया। इसके

बाद उसने बङ्गाल, ठठा या सिंध का इलाक़ा फ़तह किया। इसी बीच में बादशाह के पुत्र सलीम ने विद्रोह किया पर वह कैद कर लिया गया। इसके बाद उसने फतहपुर सीकरी और आगरा बसाया, क्योंकि मथुरा साम्राज्य के विद्रोह का एक मजबूत अड्डा था। कहा जाता है उसने आगरे के महल और किला ताम्बे का बनाने का इरादा किया था परन्तु कारीगरों के सहमत न होने से लाल पत्थर के बनवाये। बादशाह को मस्त हाथियों की लड़ाई का बहुत शौक था, वह स्वयं बेधड़क ऐसे हाथियों पर सवार होता जिसमें प्राणों का बड़ा भारी भय था। अकबर को छोटे छोटे विद्रोहों को दबाने में बार-बार बहुत परिश्रम उठाना पड़ा। इन विद्रोहियों को पकड़ कर बहुधा इनके सर काट डाले जाते थे। 'मनूची' योरोपियन ग्रंथकार लिखता है—

"ये सर चौबीस घण्टे शाही दालान में रखे रहकर मार्ग में दरख्तों या मीनारों में लटका देने को भेज दिये जाते थे। मीनारें ख़ास तौर पर इसी काम के लिये बनाई गई थीं। हर एक मीनार में सौ सर आ सकते थे। शहर के बाहर मैंने कई बार इनमें चोर देहातियों के सर देखे हैं जो अपनी बड़ी-बड़ी मूँछों, लाल रङ्ग और मुड़े हुए सर से पहचाने जाते हैं!···आगरे से देहली जाती बार रास्ते में सड़कों पर वध किये डाकुओं के इतने सर लटके हुए थे कि बदबू के मारे सर फटा जाता था और मार्ग चलने वालों को नाटक पर कपड़ा देकर रास्ता तै करना पड़ता था।"

अन्त में उसने पठानों पर चढ़ाई की। अस्सी हजार सेना प्रथम बार भेजी गई। पठान बड़े लड़ाके और योद्धा होते हैं। पठानों ने ऐसा मोर्चा लिया कि एक भी सैनिक जीता बचकर न आया। पथ-प्रदर्शक उन्हें खैबर की घाटी में घुसाकर ग़लत मार्ग में ले गये और नष्ट कर दिया। इस बादशाह ने तोप-खाने की उन्नति की और फिरङ्गी तोपची रक्खे। एक बार ऐसी घटना हुई कि उसने तोपों की चाँदमारी की ठानी। प्रधान तोपची जो ५००) वेतन पाता था बुलाया गया। जमना पर चादर तानी गई, पर तोपची ने जान बूझ कर ग़लत गोला चलाया। बादशाह ने क्रुद्ध हाकर उसे सम्मुख बुलाया और कहा—

बादशाह—"क्या तुम ऐसे ही निशानेबाज हो? तुम्हारी तो बहुत तारीफ़ सुनी थी।"

तोपची—"खुदाबन्द, बन्दा निशाने को देख नहीं सका, यदि शराब पी होती तो सम्भव था निशाना ख़ाली न जाता।"

बादशाह ने शराब लाने का हुक्म दिया। तोपची ने सारी बोतल चढ़ा ली और फिर मूँछे पूछता हुआ बोला, "हुज़ूर, चादर हटाली जाय और एक लकड़ी पर एक बर्तन रख दिया जाय।" यही किया गया। तोपची ने ऐसा गोला मारा कि लकड़ी और बर्तन के धुर्रे उड़ गये। बादशाह ने तबसे फिरङ्गियों को अपने पीने के लिये शराब खींचने की आज्ञा देदी। वह बहुधा कहा करता था—फिरङ्गी और शराब साथ ही साथ पैदा हुए हैं। और शराब के बिना उनकी वही दशा होती है जो पानी के बिना मछली की। अकबर के दर्बार में सुनार, तोपची, डाक्टर आदि बहुत से फिरङ्गी नौकर थे। इन्होंने अर्ज की कि हमें एक पादरी दिया जाय। तब अकबर ने गोआ से पादरी बुलवाया और आगरे में गिरजा बनाने की आज्ञा देदी।

इस बादशाह ने यह कानून अपने वंश के लिये बनाया कि शाही खानदान की लड़कियों की शादियाँ न की जायें। यह काम इस प्रकार हुआ कि बादशाह ने अपनी पुत्री की शादी एक अमीर के साथ कर दी थी—कुछ दिन बाद वह विद्रोही हो गया और प्राण दण्ड दिया गया। उसी समय से यह क़ानून बनाया गया, जिसे औरङ्गजेब ने अपनी बेटी की शादी करके तोड़ा। शाहजादियों की शादी न होने से मुग़ल खानदान में बहुत से भीतरी गुल खिलते रहे, यह बात सभी जानते हैं। बादशाह पठानों से सदा सतर्क रहता था और उसका हुक्म था कि किसी पठान को चार हज़ार रु० वार्षिक से अधिक वेतन न दिया जाय। न सूबे का अधिकारी बनाया जाय। बादशाह ने यह भी नियम बनाया था कि दर्बार में सिवा शाहज़ादों और एलचियों के सब सर्दार खड़े रहें। यह नियम मुग़ल दर्बार में अन्त तक बना रहा। इसके बाद उसने 'दीने इलाही' नामक मज़हब चलाया।

बादशाह को शिकार का बहुत शौक़ था। एक बार वह एक शेर के पीछे दौड़ते दौड़ते बीहड़ जङ्गल में घुस गया। अन्त में एक स्थान पर थक कर सुस्ताने लगा। उसने देखा कि एक अगरवानी रङ्ग का साँप पेड़ से उनकी तरफ आ रहा है। बादशाह ने एक तीर से उसे बींध दिया। तीर साँप को मार कर बादशाह के पास आ गिरा। इतने ही में एक हिरन चौकड़ी भरता

उधर से गुज़रा। बादशाह ने वही तीर उठा कर हिरन पर छोड़ दिया। यद्यपि तीर ने हिरन को छुआ ही था कि हिरन मर गया। बादशाह यह देखकर आश्चर्यचकित हो गया—इतने में शिकारी लोग आ पहुँचे। बादशाह ने उन्हें हुक्म दिया कि हिरन को यहाँ घसीट लाओ। उन्होंने हिरन को छुआ ही था कि उसके बन्द-बन्द अलग हो गये। यह देख शिकारी बोले--जहाँपनाह यहाँ से जल्दी भागिये वरना इस जहरीले साँप की हवा से हम सब मर जायेंगे। हुज़ूर हवा के रुख़ के विरुद्ध बैठे हैं यही खैरियत हुई है।

बादशाह ने उस साँप को एक बोतल में बन्द करके रखने का हुक्म दिया और एक अफसर नियत किया कि जब बादशाह चाहे ज़हर तैयार करे। तब से एक महकमा इसी ज़हर का बन गया जो कई भाँति के विष तैयार रखते थे। यह विष तब काम में लाये जाते थे जब बादशाह किसी सर्दार को गुप्त रीति से मारने के काम में लाते। यह विष या तो वस्त्रों में लगाकर उसको दर्बार में पहना दिया जाता था या यदि वह दूर पर हो तो भेज दिया जाता था जिसे सम्मान प्रदर्शन करने के लिये उसे पहनना पड़ता था और उसके प्राण जाते थे। मुगल ख़ानदान में इस रीति से प्राण नाश करने का रिवाज़ पीछे तक जारी रहा।

इस महान् बादशाह की मृत्यु ऐसी ही एक दुर्घटना से हुई। बादशाह यदि अपने हाथ से किसी को पान देता था तो वह उसकी भारी प्रतिष्ठा समझी जाती थी। पर इस प्रतिष्ठा को पाकर कुछ ही मिनटों में बहुत से सर्दार जीवन-लीला समाप्त कर चुके थे। बादशाह के पानदान में तीन ख़ाने थे, जिन में एक में पान, दूसरे में सुगन्धित गोलियाँ रहती थीं, जिन्हें बादशाह स्वयं खाता था, तीसरे में वैसी ही सुगन्धित गोलियाँ थीं परन्तु वह हलाहल ज़हर होती थीं। बादशाह प्रसन्न होने पर उसे पान देता—फिर एक खुशबूदार गोली देता—पर जिसे मारना होता जहर की गोली देता था। एक बार एक अमीर को जहर की गोली देते हुए भूल से वह स्वयं ही गोली खा गया और इस प्रकार अजमेर में उसकी मृत्यु हुई। इसने उन्चास वर्ष सात मास तीन दिन राज्य किया और अनेक मुल्क विजय किये तथा मुग़ल सल्तनत क़ायम की।

उसके अन्तिम दिन अशान्ति ही में कटे। उसके सभी पुत्र शराबी और लम्पट थे। शराब ही के कारण मुराद दान्याल की मृत्यु हुई।

आमेर का मानसिंह चाहता था कि उत्तराधिकारी में उसके भांजे खुशरू को तख्त पर बैठाया जाय। मगर अकबर सलीम को बादशाह बनाना चाहता था। उधर मानसिंह बड़ा प्रतापी था, उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी, बादशाह ने उसे विष देना चाहा था, पर वह स्वयं खा गया।

इस बादशाह ने आमेर से तीन फर्लाङ्ग के फासले पर एक विशाल मक़बरा बनाया आर एक भारी बाग़ लगाया जिसका नाम सिकन्दरा रक्खा। यह मक़बरा बहुत ऊँचा और भारी गुम्मद वाला है। यह संगमर्मर और बहुमूल्य जवाहरात से जड़ा हुआ था। तमाम छत पर गिलिट का काम बहुत कारीगरी से किया हुआ था, और भाँति-भाँति के रंग से दीवारें रंगी हुई थीं। बाग बहुत बड़ा और सफीलों से घिरा था, जगह-जगह बैठने के स्थान बने थे। औरंगजेब ने सब चित्रकारी पर सफेदी करा दी थी, क्योंकि वह चित्रकारी को इस्लाम धर्म के विपरीत समझता था।

वीनस निवासी 'मनूची' इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

"मेरी इच्छा थी कि औरंगजेब की आज्ञा कार्यरूप में परिणत होने से प्रथम ही एक बार इन चित्रों को देख लूँ। अतएव इस विचार से कई बार इस मकबरे को देखने के लिये बाग़ में गया। बाग़ के बड़े द्वार पर सलीब, कुवांरी मरियम और स्नेर इगनेस के चित्र थे। मेरे मन में उपरोक्त गुम्मद के अन्दर जाकर देखने की बड़ी इच्छा थी। चुनांचे एक अफसर ने जो मुझसे राजवैद्य होने के कारण कुछ काम लेना चाहता था, मुझे इस शर्त पर वहाँ ले जाना स्वीकार किया कि मैं बड़े अदब और प्रतिष्ठा से इस प्रकार कबर को सलाम करूँ जिस तरह पर कि वह करे। गोया कि बादशाह जिन्दा हैं और उसे ही अभिनन्दन कर रहे हैं। उसने द्वार खोला और मैंने चुपचाप अदब से कबरको सलाम करके भीतर प्रवेश किया, जिसके पश्चात् नंगे पाँव चारों तरफ घूम फिरकर हर वस्तु को देखा। जैसा कि मैंने लिखा है, दीवार में पवित्र सलीब खड़ी है, जिसके दायीं ओर कुवांरी मरियम और बाँई ओर इगनेस के चित्र थे। गुम्मद की छत पर फरिश्तों के, वलियों के और दूसरे कई एक प्रकार के चित्र थे एवं कई एक ऊदसोज (वह पात्र

जिसमें ऊद रखकर जलाया जाता है) थे—जिनमें प्रति दिवस ऊद जलाया जाता था। इस कमरे में चारों तरफ भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्थर लगे थे। मकबरे के बाहर बाग़ में बहुत से मुल्ला कुरान पढ़ रहे थे। खुद गुम्मद के बाहर की तरफ़ सबसे ऊँची चोटी पर एक गुम्मद था और इसपर गिलट का बना हुआ दीनर था। मुझे एक सबसे बढ़कर आश्चर्य इस बात पर था कि इन चित्रों के होने की तह में क्या कारण था और बहुत सोचने के पश्चात् यही फल निकाल सका कि इसका मज़हब नहीं था बल्कि चूँकि यह वस्तुएँ उन दिनों में अद्भुत गिनी जाती थीं इसीलिए ऐसा किया गया था। जिन दिनों में औरंगजेब शिवाजी से लड़ रहा था तो सन् १६६१ ई० में विद्रोही देहातियों ने मकबरे में घुसकर तमाम मूल्यवान् पत्थर और सुनहरी काम चुरा लिया और बादशाह की हड्डियों को मकबरे में से निकाल कर जला डाला।"

## जहाँगीर

अकबर के पुत्र जहाँगीर ने बाईस वर्ष राज्य किया। वह शराबी, ऐयाश और निष्ठुर था, पर राज्य शासन उसने बड़ी ही चतुराई और तत्परता से किया। उसके काल में राज्य में कला कौशल, व्यवस्था और शान्ति रही। मलिका नूरजहाँ का भी इस शासन में भारी हाथ रहा।

उसके गद्दी पर बैठने के बाद ही उसके पुत्र खुशरू ने विद्रोह किया, पर उसे क़ैद कर लिया गया और उसके साथी क़त्ल करा दिये गये। इसने उदयपुर के राणा से सन्धि की और उसका पद दर्बार में जहाँगीर से दूसरा नियत किया। इसी के शासनकाल में इङ्गलैंड का दूत टामस रो भारत में आया, और अपनी कम्पनी के लिये व्यापार का अधिकार प्राप्त किया। इस विदेशी यात्री ने अपने अनुभव से जो कुछ लिखा है उसका अर्थ यह है—

"राजसभा की विशालता और वैभव आश्चर्ययुक्त है, पर सरदार क़र्जदार हैं। प्रबन्ध सदोष है, किसान दरिद्र हैं, कुशासन के चिह्न देश में हैं, प्रजा का वैभव नष्ट हो रहा है। ठगों और डाकुओं के जुल्मों से गाँव और पब्लिक अरक्षित है। बहुत सी भूमि जङ्गल है, दक्षिण के नगर खण्डहर हो रहे हैं। जो प्रान्त राजधानी से दूर हैं उनकी हालत निकृष्ट है।"

वह एक अद्भुत ऐयाश और खुशमिजाज तबियत का आदमी था।

वह न रोजे रखता, न मुसलमानी धर्म की परवाह करता था, खूब शराब और अफीम का सेवन करता था। एक बार इसने पादरियों को बुलाकर पूछा—

"सुअर का मांस स्वाद में कैसा होता है ?"

इस पर पादरियों ने उसकी तारीफ की। बादशाह का जी ललचाया, और पादरियों के घर जाकर शराब पी और सुअर का मांस खाया। इसके बाद वह खुल्लमखुल्ला खाने लगा। 'मनूची' कहता है कि मौलवियों को चिढ़ाने के लिये उसने सोने की सुअर की मूर्तियाँ बनवा कर महल में रख छोड़ी थीं और प्रातःकाल उन्हीं का मुँह देखकर उठता था और कहता था—'मैं मुसलमान का मुँह देखने के बजाय सुअर का मुँह देखना अधिक अच्छा समझता हूँ।' ये सोने के सुअर शाही महल में शाहजहाँ के समय तक रहे, जिसने उन्हें लाहौर के किले में शाही तख्त के सामने जमीन में गढ़वा दिया था। रमजान के दिनों में जहाँगीर प्रतिदिन दो दफा दरबार करता और सबके सामने खाता पीता तथा मुल्लाओं को तंग करता था, और अपने हाथ से खाना देता जिसे दर्बारी कायदे के मुताबिक अदब से लेकर उन्हें खाना पड़ता था। बादशाह की इस प्रणाली की अवज्ञा करने से भय था कि वे आदमी शेरों से फड़वा दिये जांय, जो दर्बार के नजदीक बँधे रहते थे।

बादशाह नश्तरों से भरे एक बर्तन को अपने पास रखता था। यदि कोई व्यक्ति उसके सामने वीरता की डींग हाँकता तो नश्तर से उसकी नाक में छेद करा देता, इस पर यदि वह कष्ट प्रकट करता तो उसे मुक्कों से पिटवाकर बाहर निकलवा देता और यदि सह जाता तो दूनी तनखा कर देता। एक दफा एक दर्बारी ने शेर मारा और उसकी खाल का कोट पहन कर दर्बार में आया। यह देखकर बादशाह ने अपनी बन्दूक उठाई और अमीर को निशाना बनाया। वह बेचारा चिल्लाकर गिरा। गोली टाँगों में लगी थी, बादशाह बोला—यदि मैं इस शेर को न मारता तो मेरा शेर जोश में आ जाता। यदि कोई नवयुवक स्त्रियों का अत्यन्त प्रेमी होता तो बादशाह उसे पकड़कर किसी नीच जाति की मैली और गन्दी स्त्री के साथ कई दिन तक बन्द रखता था।

जहाँगीर अपने हकीम से बहुत चिढ़ता था। वह पक्का मुसलमान और धर्मात्मा आदमी था। एक बार वह उस समय दर्बार में पहुँच गया जब बादशाह शराब पिये था। इसे देखते ही बादशाह ने कहा—मेरा तीर कमान लाओ, मैं इस खूसट को खतम करूँगा। नूरजहाँ पर्दे में बैठी थी, उसने ग़ुलामों को इशारा किया कि असली तीर न दिये जायँ, बेत के तीर दिये जायँ। बस बादशाह ने तीर बरसाने शुरू किये। यह सब कुछ होने पर भी हकीम साहब झुक झुक कर सलाम किये जाते तथा आदाब बजाये जाते थे, अन्त में मलका के इशारे पर ग़ुलामों ने उसे संकेत किया कि 'अभागे लेट जा क्यों जान का दुश्मन बना है।' हकीम बेचारा लेट गया। बादशाह ने समझा कि मर गया। तब बोला, अच्छा हुआ—इसने भी बहुतों की जानें ली हैं।

बादशाह का नूरजहाँ को हथियाना इतिहास की प्रसिद्ध घटना है। कदाचित् ही कोई ऐसा प्रेम-दीवाना पुरुष हो जो किसी एक स्त्री पर इस भाँति मुग्ध हो जाय। नूरजहाँ का जीते दम तक बादशाह पर असाध्य अधिकार रहा। सारी सल्तनत नूरजहाँ के अधिकार में थी, सब स्याह सफेद करने का उसे अधिकार था। नूरजहाँ ने एकबार उससे प्रतिज्ञा कराई कि वह शराब पीना कम कर देगा। और दिन भर में नौ प्यालों से ज्यादा न पीवेगा। कुछ दिन तो प्रतिज्ञा चली। एकबार ऐसा हुआ कि एक जलसा हुआ, बादशाह को मलका प्याले भर भर कर देती गई। जब नौ प्याले बादशाह पी चुका तो और माँगा—पर मलका ने इन्कार कर दिया। बादशाह ने बहुत मिन्नत चापलूसी की पर बेकार। अन्त में बादशाह को गुस्सा आगया और हाथा-पाई होने लगी। शीघ्र ही गुत्थम गुत्था हो गई। अब इन्हें अलग कौन करे?

बाहर भाँडों ने यह देख स्वयम् गुत्थमगुत्था होना, धमाचौकड़ी मचाना, चिल्लाना शुरू कर दिया। बाहर का शोर सुनकर बादशाह लड़ाई रोक बाहर निकले—और पूछा यह क्या शोर गुल है। भाँडों ने दस्तवस्ता अर्ज की, हज़ूर की लड़ाई रोकने की यही तर्कीब समझ में आई। इस पर मलका व बादशाह दोनों खूब हँसे और खूब इनाम दिया। परन्तु नूरजहाँ इस घटना से बहुत नाराज हुई और उसने बादशाह से बोलना भी छोड़ दिया। उसके तमाम तोहफे वापस भेज दिये, बादशाह, ने बहुत खुशामद की पर

उसने न माना। तब एक दिन बादशाह, जब मलका धूप में टहल रही थी, इस भाँति उसके सामने जा खड़ा हुआ कि उसके सिर की परछांई, मलका के पैरों पर पड़ी। तब बादशाह बोला—अब तो खुश हो जाओ, अब तो तुम्हारे पैरों पर मेरा सिर हाजिर है। इस पर नूरजहाँ प्रसन्न हो गई और इस सुलह की खुशी में मलका ने आठ दिन भारी जल्सा किया जिसमें उसने बाग़ के सब तालाबों और फव्वारों को अर्क गुलाब से भरवा दिया और हुक्म दिया कि कोई इन्हें गन्दा न करे। दैवयोग से एक तालाब के पास ही मलका सो गई। प्रातःकाल उसने तालाब पर चिकनाई तैरती पाई। मलका ने समझा किसी ने गन्दगी डाल दी है, उसने बाँदी को हुक्म दिया, हाथ से देख यह चिकनाई कैसी है? जब उसने देखा तो अति उत्तम सुगन्ध पाई। और तब समझी कि यह गुलाब की चिकनाई ओस की भाँति जम गई है। उसने चिकनाई अपने हाथों में लेकर कपड़ों में मल ली, और दौड़ी हुई बादशाह के कमरे में गई और बादशाह का आलिङ्गन किया। बादशाह सो रहे थे। उठे तो खुशबू से महक उठे। इस भाँति गुलाब का इत्र ईजाद हुआ जो बाजार में १००) तोला बिकने लगा। पीछे जब गुलाब की खेती बढ़ी तो उसका भाव भी कम हो गया।

इस बादशाह ने मुलतान से इलाहाबाद तक शाही सड़कों पर पेड़ लगाने का हुक्म दिया। यह फासला पाँच सौ तेरह फरसंग का था। एक-एक फरसंग पर बुर्ज बनाये गये। प्रत्येक बुर्ज के निकट एक गाँव होता था जहाँ सब आवश्यक सामग्री मिल सके। इसके सिवा स्थान-स्थान पर सराय, बाग और कुएँ भी बनवाये थे।

इस बादशाह को एक सेनापति महावत खाँ ने जो राजपूत से मुसलमान बना था और बड़ा वीर था, बादशाह की ऐयाशी से क्रुद्ध होकर एक बार अवसर पाकर बादशाह को कैद कर लिया और एक साल तक रखा—और उसे समझाया कि इस भाँति शराब और औरत के फेर में पड़ना बादशाहों के लिये उचित नहीं—फिर सम्मान पूर्वक छोड़ दिया।

जहाँगीर बड़ा दाता था। यदि किसी को कुछ देता तो उसकी तादाद एक लाख से कम न होती थी। इस बादशाह से इनाम पाने के लिये कुछ

चिकनी-चुपड़ी बातें काफी थीं, इसी पर खुश होकर वह जो चाहे दे डालता था।

वह बहुधा भेष बदल कर शहर में घूमा करता था। एक बार का जिक्र है कि वह भेष बदल कर घूमता फिरता एक शराबख़ाने में जा घुसा। वहाँ एक जुलाहा बैठा मजे से ठर्रा जमा रहा था। जहाँगीर उसके पास बैठ गप्पें लड़ाने लगा। दोनों दोस्त हो गये और प्याले पर प्याले लगे उड़ाने। चलती बार बादशाह ने उसका नाम-पता पूछा। उसने कहा—सिकन्दर जुलाहे के नाम से मशहूर हूँ। तुम कल मेरे मकान पर आना, ऐसा खाना खिलाऊँ और शराब पिलाऊँ कि खुश हो जाओ। इस पर बादशाह ने आने का वादा किया, दोनों दोस्त हँसते हुए हाथ मिलाकर विदा हुए।

दूसरे दिन जब वह हथौड़ी से कीलें गाड़ कर ताना बुनने की तैयारी कर रहा था कि बादशाह की सवारी आती दिखाई दी। बादशाह हाथी पर था—सेवक गण दायें बायें चल रहे थे। जब उसके घर के निकट सवारी पहुँची, तब गुलाम ने आगे बढ़ कर पूछा—सिकन्दर जुलाहे का घर कौनसा है ? बादशाह उसके घर दावत खाने आ रहे हैं। इस पर जुलाहे की आँखें खुलीं और रात के दोस्त का भेद पहचान गया। वह इतना घबराया कि जवाब ही न दे सका। इतने में सवारी आ गई। जुलाहे ने बिना आँख उठाये पुकार कर कहा, "जो शराबी की बात पर एतबार करे, इस हथौड़ी से पीटे जाने के लायक है।" बादशाह यह सुन कर ठहाका मार कर हँस दिया। और इतना रुपया उसे दिया कि वह अमीर बन गया।

एक बार बादशाह हाथी पर सवार हवाख़ोरी को जा रहा था। एक शराबी रास्ते में मिला, बोला—ओ हाथी वाले हाथी बेचोगे ?

बादशाह ने उसे पकड़ कर हवालात में बन्द करने का हुक्म दिया। अगले रोज जब वह बादशाह के सामने पेश किया गया तब बादशाह ने कहा—कहो क्या हाथी खरीदोगे ?

शराबी ने कहा—हुजूर, हाथी ख़रीदने वाला निकल गया, मैं तो एक ग़रीब दलाल हूँ। इस जवाब से खुश होकर बादशाह ने उसे बहुत सा इनाम दिया।

बहुधा बादशाह हाथी पर सवार हो सैर-सपाटे को निकल जाता। सब सरंजाम हाथियों ही पर होता था, किसी पर शराब की प्याली बोतल, किसी पर रोटियाँ पकतीं, किसी पर गोश्त पकता, किसी पर मेवों की डालियाँ होतीं, किसी पर गाने बजाने का सरंजाम। बादशाह खाता-पीता मौज करता जाता था।

एक दिन बादशाह इसी प्रकार हाथी पर खाता-पीता जा रहा था कि चाँदनी चौक में येकैद-फ़कीरों का एक गिरोह मिला। उन्होंने पुकार कर कहा, "अरे अकेले ही खाते हो—हमें न शरीक करोगे ?"

यह सुन बादशाह हाथी से उतर पड़ा और फ़कीरों के बीच बैठ गया। सबने मिल कर खूब खाया पीया।

जहाँगीर की भाँति इसके पुत्र खुर्रम ने भी विद्रोह किया, पर अन्त में हारा। जहाँगीर ने भी लाहौर में अपना मकबरा स्वयं बनाया जो लाहौर में शहादरे के नाम से मशहूर है। इसमें बहुमूल्य पत्थर लगवाये थे जिन्हें औरङ्गजेब ने पीछे से उखड़वा लिया था।

बादशाह अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अंगरेजों से क्रुद्ध होगये थे और उन्होंने सूरत बन्दर में मक्का के कुछ यात्रियों के साथ अनुचित काम किया था। बादशाह ने प्रथम तो बहुत कुछ नर्मी से काम लिया, पर जब काम न चला तो गिरफ्तारी का हुक्म दिया, जिसे उन्होंने मानने से इन्कार कर दिया। इस पर क्रुद्ध होकर बादशाह ने उनके कत्लेआम का हुक्म दे दिया, इस पर बहुत से अंग्रेज काट डाले गये। यह सन् १६२२ ई० की घटना है। इस समय क़न्धार फिर ईरानियों के हाथों में चला गया। बंगाल में उसने पुर्तगालों की कोठियाँ बनाने की आज्ञा दे दी थी। वह ग्रीष्म ऋतु में काश्मीर चला जाता और सर्दियों में लाहौर लौट आता था। एक बार वह जब काश्मीर से लौट रहा था तो मार्ग ही में दमे से उसका शरीरान्त हो गया। उसने बाईस वर्ष सात मास ग्यारह दिन राज्य किया। उसकी आयु उस समय साठ वर्ष की थी।

जहाँगीर की मृत्यु के बाद उसका पोता सुलतान ब्लाकी गद्दी पर बैठ गया। शहजादा खर्रम उन दिनों बीजापुर राजा के यहाँ आश्रित था। ब्लाकी ने राजा को कहला भेजा कि खर्रम को नज़रबन्द करलो—यदि

हुक्म की पाबन्दी में ढील हुई तो बीजापुर की ईंट से ईंट बजा दूँगा। बीजापुर के राजा ने डर कर शाहजादे पर पहरे बैठा दिये। शाहजादे के साथ उसके चारों पुत्र, तीनों लड़कियाँ और बेगम थीं। औरङ्गजेब अभी बच्चा था—पर उसे खुर्रम सफेद साँप कहा करता था—किसी साधु ने उसे कहा था कि यह तुम्हारे राज्य को नष्ट करने वाला होगा। खुर्रम ने कई बार मार डालने का भी विचार किया, पर रोशनआरा ने सदैव उसकी रक्षा की। खुर्रम को यह उसके श्वसुर आसफ़खाँ की चिट्ठी मिली कि किसी तरह भाग कर बुरहानपुर के हाकिम महाबत खाँ से मिल जाओ और उसे ले यहाँ पहुँच जाओ तो राज तुम्हारा है। यह सुन युक्ति से शाहजादा यहाँ से भाग निकला। आगरे पहुँचने पर आसफ़खाँ बारह हजार सवार ले उससे जा मिला। खुर्रम ने धूम-धाम से नगर में प्रवेश किया। और अनायास ही तख्त पर अधिकार कर लिया और शाहजहाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

## शाहजहाँ

इस बादशाह के शासनकाल में मुग़ल साम्राज्य का वैभव मध्याह्न के सूर्य की भाँति शिखर पर पहुँच चुका था। गद्दी पर बैठते ही उसने सुलतान ब्लाकी की तलाश करवाई। पर वह घर से भाग गया। उसके दो पुत्र लाहौर में रहते थे। बादशाह ने हुक्म दिया, उन्हें मकान में बन्द कर दर्वाजों में दीवार चुन दी जाय। जब उनके पास यह हुक्म पहुँचा, वे जहाँगीर के दीवानेखास के कमरे में बैठे पढ़ रहे थे। उन्हें उसी दालान में तत्काल चुन दिया गया। इसके बाद उसने हुगली के पुर्तगीजों पर सेना भेजी। वे लोग प्रजा पर बड़ा अत्याचार कर रहे थे। जब बादशाह पितर से विद्रोही होकर भागा फिरता था, तब उन्होंने बादशाह की बेगम मुमताज महल की दो बाँदियों को पकड़ लिया था। पाँच हजार पुर्तगीज पकड़ कर लाये गये। पर उनके आगरे पहुँचते-पहुँचते मुमताज का स्वर्गवास हो गया। कुछ कैदी मारे गये। कुछ गुलाम के तौर पर बेच दिये गये। उनकी स्त्रियों को अमीरों में बाँट दिया गया—कुछ को हरम में रख लिया गया।

मन्त्री सादुल्लाखाँ के प्रबन्ध से आय बढ़ गई थी। देश में शान्ति

का राज्य था। उसने साठ करोड़ की लागत का तख्ते ताऊस बनवाया जिस पर बैठना उसे नसीब न हुआ।

मुमताज़ की मृत्यु पर उसके लिये बादशाह ने ताजमहल बनवाया। जो मुग़ल काल का अनोखा रत्न है जिसे संसार के प्रमुख कारीगरों ने बनाया था। इसके बनाने में कारीगरों ने आठ वर्ष लगाये और इस पर करोड़ों रुपया व्यय हुआ था। तैयार होने पर बादशाह ने प्रमुख कारीगरों के हाथ कटवा डाले थे जिससे कि वे ऐसी इमारत अन्यत्र न बना सकें। औरङ्गजेब के समय तक इसमें कोई जा नहीं सकता था—इस पर औरतों और ख़ाजा सराओं का पहरा रहता था। इसके बाद इस बादशाह ने वर्तमान दिल्ली की नींव डाली। इसमें बे-अन्दाज़ रुपया ख़र्च किया गया। इसकी नींव में कुछ कैदियों के सिर काट कर बतौर कुर्बानी के डाल दिये गये। वह इन्द्र धनुष की शकल में यमुना किनारे बनाया गया था। सफीलों के बारह दर्वाजे थे। चहार दीवारी आधी ईंट और आधी पत्थर की बनवाई। हर सौ क़दम पर एक बुर्ज बनाया गया था, पर तोपें नहीं चढ़ाई गई थीं, लाहौरी दर्वाज़ा और दिल्ली दर्वाजा बहुत प्रसिद्ध थे। बाज़ार खूब सजधज का था। उस दिल्ली का वर्णन 'मनूची' इस भाँति करता है—

देहली में अमीरों के महल हैं और बहुत से घर हैं जिनकी छतें फूँस की हैं लेकिन अन्दर से बहुत सजे हुए सुन्दर और आरामदायक हैं। शहर के पूर्वी ओर जिधर यमुना बहती है उस तरफ दीवार नहीं है उत्तर की ओर एक कोने में पूर्व सामना किला है जिसके सामने और दरिया के इस ओर हाथियों की लड़ाई के लिए मैदान छूटा हुआ था। बादशाह यह दृश्य देखने के लिये एक झरोके में बैठ जाते हैं और औरतें भी झरोकों में होती हैं लेकिन पर्दों के पीछे। इसी जगह बैठ कर बादशाह राजाओं, अमीरों और नवाबों की परेड देखते थे, बादशाह के बैठने के स्थान के नीचे दिन रात एक मस्त हाथी नुमायश के तौर पर बँधा रहता है।

किले के चारों तरफ लाल पत्थर की बड़ी-बड़ी दीवारें हैं जिसमें एक बारह महराब का पुल है जिस पर से गुजर कर सलीमगढ़ के किले में, जो

दरिया के बीच एक टापू पर है जा सकते हैं। उसे शाह सलीम पठान ने बनवाया था—और उसी के नाम से मशहूर है।

शाही किले के दो दरवाजे शहर को गये हैं, बीच में बहुत खुली जगह छोड़ी गई है। शाहजहाँ ने किले में दो बड़े भारी बाग लगवाये। एक तो उत्तर की तरफ, दूसरा दक्षिण की तरफ और चूँकि दरिया यमुना का पानी इतना नहीं चढ़ता कि इन बागों में पानी मिल सके, इसलिये इससे बड़ा भारी ख़र्च करके सर हिन्द के पास एक गहरी नहर खुदवाई थी। जो देहली से सौ फरसंग की दूरी पर है। यह नहर किले में बहती और पानी की हौजों को भरती है जिनमें शाहजहाँ के हुक्म से खूबसूरत मछलियाँ डाली गई हैं। जिनके सिरों पर सुनहरी कण्ठे थे और हर कण्ठे में एक-एक लाल और एक-एक मोती जड़ा था। यह नहर जमना की तरफ़ के हिस्से के सिवाय तमाम क़िले में इधर-उधर घूमी है। क़िले के सामने पश्चिम की ओर शाही मस्जिद है जिसमें बादशाह सप्ताह में एक बार नमाज़ पढ़ने जाते हैं।

देहली के बनियों का वर्णन मनूची ने बड़े अद्भुत ढङ्ग से किया है, उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं—

बनिये हिन्दुओं की एक क़ौम है। जो न माँस और न मछली खाते हैं। यह लोग प्रायः अनाज, सब्ज़ी, घी और दूध बहुत खाते हैं। यह गाय को घर में रखते और उसकी पूजा के बहुत प्रेमी होते हैं। गउओं पर वह ऐसे मोहित होते हैं कि मृत्यु के समय भी गऊ की पूँछ को हाथ में लेकर मरते हैं। उनका विचार है कि इससे पाप क्षमा हो जाते हैं। और गाय उन्हें आसमान पर उन अग्निमय स्थानों से छुए बग़ैर ले जाती है जिनके कि वह अपने पापमय ज़ीवन के कारण योग्य होते हैं। इनकी इस श्रद्धा की बेवकूफ़ी आश्चर्यजनक है कि यदि इत्तिफ़ाक से गाय उस शख़्स पर पेशाब कर दे जो मरते समय उसकी दुम को धोता होता है तो बजाय इसके कि उसे परे हटाये वह बहुत अच्छा समझते हैं और ख्याल करते हैं कि उसका शरीर पवित्र हो गया और बहुत खुशियाँ मनाते हैं।

पाठक समझ लें कि गाय को ऐसा समझना सिर्फ बनिये ही नहीं करते बल्कि तमाम के तमाम हिन्दू उसे पूजनीय समझते हैं। लेकिन इस

बारे में बहुत अन्धविश्वासी हैं। यहाँ तक कि अगर किसी से कोई पाप हो जाय जैसे कि मूर्तियों का अपमान या धर्म च्युत होना इत्यादि, तो वह ब्राह्मणों के पास जाते हैं, जो उनके पुरोहित हैं। ब्राह्मण पापी को कुछ गाय का गोबर गाय के पेशाब में घोलकर और कुछ मीठा-घी और दूध पिलाकर पीने को देते हैं जिससे वह पवित्र हो जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रायश्चित भी कराया जाता है। मैंने उनमें से एक मनुष्य को देखा है, जो कई दिन तक प्रायश्चित के तौर पर अपने होठों पर ताला लटकाये फिरता था।

बनिये लोग बहुत डरपोक होते हैं और हथियार उठाने से बचते हैं। यह अपने घरों में कोई शस्त्र तो एक तरफ चाकू या छुरी तक नहीं रखते जिससे किसी को कष्ट पहुँचने की सम्भावना हो। प्रश्नों का उत्तर देने में यह बहुत कतराते हैं। जैसे कि उस किस्से से किस्से पढ़ने वालों को पता लग गया होगा जिसका बयान मैं पीछे कर चुका हूँ। प्रायः लोग कहते हैं कि यदि उनसे केवल यह पूछा जाय कि आज कौन दिन है तो इस पर भी वह बहुत झेंपते हैं, और जवाब बड़ा भद्दा देते हैं। अगर कुछ पूछने वाला फिर जिद्द करे तो वह कह देते हैं कि हम नहीं जानते। अगर इस पर भी वह फिर पूछे तो कहेंगे क्या तुम्हें नहीं मालूम कि कल रविवार था। अगर वह फिर भी न माने तो जवाब देंगे तुम्हें पता नहीं कल शनीचर है। और अगर इसपर भी पूछने वाला पूछता चला जाय तो बहुत ठहर के और सोच के जवाब देंगे कि आज शुक्र (जुम्मा) है।

और यदि व्यापार के विषय में कोई प्रश्न किया जाये तो उसका फौरन उत्तर देते हैं। और ऐसा अच्छा हिसाब जानने वाले होते हैं कि थोड़े से थोड़े समय में बड़े से बड़े सवाल को हल कर देते हैं और हिन्दसे की भी भूल नहीं करते।

यह लोग किसी जीव को मारना बड़ा पाप समझते हैं और इस कारण यदि इनके शरीर पर कहीं कोई मच्छर, खटमल, जूँ, च्यूँटी या कोई दूसरा जीव चलता हुआ नजर आ जाय तो मारने के बजाय उसे आहिस्ता से उँगलियों के सिरों में पकड़कर दूर रक्षा के स्थान में जा रखते हैं। उनके घरों में खास-खास खाने बने होते हैं, जो इन जीवों से भरे होते हैं।

जिनकी खुराक का प्रबन्ध इस तरह से होता है कि यह लोग किसी ज़रूरत-मन्द कमबख़्त को ढूँढ़कर और रुपया देकर सारी रात उस स्थान में जो इन जीवों के लिये होता है ले जाकर चारपाई से बाँध देते हैं और इस तरह से वह जीव इनके खून पर गुजारा करते हैं। क्योंकि यह बनिये लोग मनुष्य से ज्यादा जीवों पर दयालु होते हैं। इसी तरह से यह शख्स अपने घरों की दीवारों पर सूराख रख छोड़ते हैं। जहाँ कई प्रकार के परन्दे घोंसले बना लेते हैं। इन परन्दों को यह लोग नित्य प्रति खाने को देते हैं। गुजरात में कम्बे नामी शहर में इन लोगों ने बीमार परन्दों के लिये एक अस्पताल खोल रखा है। जहाँ पर एक जर्राह को इनकी चिकित्सा के लिये इनाम व इक़राम मिल जाते हैं। यहाँ एक बार एक जख्मी शाहीं आ गया। जिसे दूसरे परन्दों के बीच रखा गया। इस कम्बख्त ने यहाँ इन्हें मारना और खाना शुरू कर दिया अतएव उन्होंने उसे यह कह कर निकाल दिया कि यह अवश्य फिरङ्गी नस्ल का होगा।

यह बनिये दरिया गङ्गा को बड़ा मानते हैं और कहते हैं कि इसमें स्नान करने से पाप दूर हो जाते हैं। और यदि मुरदे की राख इसमें डाली जावे तो भी उसके पापों का नाश हो जाता है। चुनाँचे बड़े-बड़े अमीरों की राख बड़ी शान और बाजे-गाजे के साथ बड़ी-बड़ी दूर से यहाँ लाकर डाली जाती है। बहुत से हिन्दू राजा इस दरिया का जल पीना अपना धर्म समझते हैं। और इसी अभिप्राय के लिये हर रोज़ ऊँट भेजते हैं चाहे दो तीन मास का रास्ता क्यों न हो। वह लोग एक मूर्खता भी करते हैं और वह यह कि जब कोई शख्स मरने के करीब हो तो उसे इस दरिया के किनारे ले जाते हैं और पानी पिला-पिला कर ही मार डालते हैं।

प्रायः ऐसा होता है कि भक्तिभाव से ही कुछ मनुष्य इस दरिया के किनारे पर आ मरते हैं। और मैंने स्वयं देखा है कि आने जाने वाले हिन्दू इनकी लाशों को दरिया में ढकेल देते हैं—मेरे विचार में उन लोगों के विषय में जिन्हें मनुष्य कहना मनुष्य नाम से अपमान करना है, और जो मुग़लिया सल्तनत में बहुत बड़ी तादाद में हैं।"

'मनूची' दिल्ली के फ़कीरों का भी मज़ेदार वर्णन लिखता है वह भी सुनिये—

"उनके दो गिरोह हैं। एक तो बेकैद अर्थात् स्वतन्त्र और दूसरे बेतरस अर्थात् निर्यय। बेकैद फकीर बहुत अक्खड़ होते हैं और बातचीत में बहुत आज़ादी बरतते हैं। इच्छा हो तो गाली भी सुना बैठते हैं कि तौबा ही भली। ये बड़ी निर्भीकता से लोगों के घरों में घुस जाते हैं, और अगर दरबान इन्हें रोकने की चेष्टा करे तो उसके स्वामी और बच्चों को ऐसी-ऐसी अनुचित गालियाँ सुनाते हैं कि कुछ न पूछिये। तिस पर भी कोई इनकी बातों पर नाराज नहीं होता और खुशामद व चापलूसी से इनके क्रोध को कम करते, क्षमा माँगते हैं और भिक्षा देकर टालते हैं। यदि इन लोगों को दरवाज़े पर न रोका जाय तो यह सीधे मालिक के पास जाकर बिना सलाम बन्दगी किये उन्हीं फटे पुराने कपड़ों और मिट्टी में भरे हुए हाथ पाँव के साथ उसके पास जा बैठते हैं और उसके मुँह से हुक्का छीनकर खुद पीने लग जाते हैं। घर का स्वामी इसे बड़ी भारी प्रतिष्ठा समझता है और उसके लिये उन्हें धन्यवाद देते हुए उन्हें रुपया इत्यादि देकर खुश करते हैं। किसी दिन यह लोग ऐसी जिद करते हैं कि जो मुँह से माँगे, लेकर छोड़ते हैं। यह लोग कभी परमेश्वर के नाम पर भिक्षा नहीं माँगते। क्योंकि कहते हैं कि उसके नाम पर कुछ माँगना उसका अपमान करना है। हर मनुष्य शक्ति के अनुसार इन्हें कुछ न कुछ अवश्य देते हैं क्योंकि एक तो यह लोग ईश्वर के बड़े विश्वासी हैं और दूसरे प्राकृतिक ही बड़े दयालु होते हैं।

"बेतरस फ़कीर वह हैं जो अपने हाथों में तेज छुरी लिये हुए भीख माँगते हैं। उनके भिक्षा माँगने का कायदा यह है कि वह दूकान के सामने खड़े हो जाते हैं और जिस वस्तु की आवश्यकता होती है उसकी तरफ इशारा कर देते हैं। ये जो माँगते हैं वह अगर दूकान वाला दे दे तब तो खैर वरना अपने हाथ की छुरी से हाथ पाँव सर इत्यादि में जख्म करके खून दूकान के भीतर फेंक देते हैं। ये लोग प्रायः बनियों की दूकान पर जाकर माँगते हैं क्योंकि वह डरपोक होने के कारण खून का दृश्य नहीं देख सकते और शीघ्र ही उनकी इच्छानुसार वस्तु देकर छुटकारा पाते हैं।"

बादशाह अपने छोटे पुत्र औरङ्गजेब से बहुत सतर्क रहता और उससे घृणा करता था। चारों शाहजादों में अल्पावस्था से ही द्वेषाग्नि भड़कने लगी थी। अतः उसने चारों को अलग-अलग करने की सोची। शुजा को बङ्गाल

का हाकिम नियत किया, औरङ्गजेब को मुल्तान और मुराद को गुज़रात का हाकिम बनाया। दारा को दरबार में रहने दिया। औरंगजेब पिता के मन को जानता था—पर ऊपर से मीठा बना रहता था—यह दारा को भी लल्लोचप्पो में ही रखता था और दारा भोला-भाला व सीधा-सादा पुरुष था वह उसकी बातों में आ जाता था। उसे भर्रे पर रख कर औरङ्गजेब ने दक्षिण को अपनी बदली कराली। इस काम में उसका गूढ़ उद्देश्य गोल-कुण्डा और बीजापुर की सैनिक शक्तियों का अध्ययन करना था। वहाँ पहुँचते ही उसने नया शहर औरंगाबाद बसाया। बादशाह बहुधा दारा से कहा करता था कि तुम साँप को पाल रहे हो जो तुम्हें अन्त में कष्ट देगा।

यह बादशाह गाने-बजाने का शौक़ीन, काम का प्रेमी और इमारतों के बनाने का बड़ा इच्छुक था। इसे स्त्रियों से भी विशेष रुचि थी, वह अपने महल ही की स्त्रियों पर सन्तुष्ट न था, बल्कि उमराओं की स्त्रियों पर भी हाथ साफ़ करता था। अन्त में यही दोष उसके पतन का कारण बना। उसने ज़फरखाँ की स्त्री के प्रेम में अन्धा होकर ज़फरखाँ को मारने का इरादा कर लिया। पर उसने प्रार्थना की कि उसकी जान बख्श दी जाय और उसे पटने का हाकिम बना कर भेज दिया जाय। यही किया भी गया। इसी प्रकार खलीलउद्दीन के साथ उसने किया। जिसने औरङ्गजेब के युद्ध में दारा से बदला लिया। एक बार किसी ने बादशाह से कहा कि ख़लीलउद्दीन की स्त्री के पैर में जूता है वह बीस लाख रु० मूल्य का है। बादशाह यह सुन कर क्रुद्ध हो गया और अगले दिन भरे दरबार में ख़लील-उद्दीन से पूछा—

"हम सुनते हैं कि तुम्हारी औरत इस क़दर क़ीमती जूते पहनती है, इससे मालूम होता है तुम्हारे पास बहुत धन है जिसका अधिक भाग चोरी से अवश्य एकत्र किया गया है इसलिये अपना हिसाब हमें समझा दो।"

ख़लीलुल्लाह चुप ही रहा। इस पर इसका एक दोस्त बोला—"जहाँ-पनाह, हुक्म हो तो बन्दा इसके जवाब में अर्ज करे।"

बादशाह—"अच्छा कहो।"

दोस्त—"खुदाबन्द, ख़लीलखाँ की सारी सम्पत्ति इन्हीं जूतों में सुर-

क्षित है। क्योंकि इसकी स्त्री नित्य इसके मुँह पर वे जूते मारती है। इस प्रकार सारी सम्पत्ति उसे दे देती है।"

बादशाह यह जवाब सुन मुस्कराये और खलीलउद्दीन लज्जित हो दरबार से चले आये।

बादशाह ने अपने साले नबाब शाइस्ताखाँ की स्त्री पर भी हाथ साफ करके छोड़ा। वह राज़ी न होती थी – इस पर बादशाह ने चालाकी से काम लिया। इससे उसे इतना रंज हुआ कि उसने खाना कपड़ा त्याग दिया और जान दे दी। शाइस्ताखाँ ने उस समय तो चुप साध ली पीछे बदला लिया। जफरखाँ और खलीलखाँ की स्त्रियों का शाह से सम्बन्ध इतना प्रसिद्ध हो गया था कि रास्ते में जब वे गुजरतीं तो फक़ीर कहते—ऐ नाश्ते शहन्शाह ! हमें भी याद रखना, या-लुक़मे शाहजहाँ, हमें भी कुछ दिलवा।

बादशाह ने अपने ऐश के लिये चौबीस हाथ लम्बा और आठ हाथ चौड़ा एक कमरा बनवाया था। जिसमें चारों ओर बड़े-बड़े शीशे लगे थे। इसकी सजावट में जो सोना खर्च हुआ था वह डेढ़ करोड़ की लागत का था। जवाहरात की कीमत का कहना क्या ! इसकी छत में दो शीशों के बीच में सोने की क्यारियाँ जड़ी थीं जिनमें जवाहरात जड़े थे। शीशों के गोशों में मोतियों के गुच्छे लटकते थे। इस कमरे की दीवार संगेयशब की थीं। इसी में वह अमीरों की स्त्रियों के साथ विहार करता था।

यह बादशाह क़िले में मीना बाजार भी लगाता था जो आठ दिन तक लगा रहता था। इन आठ दिनों में कोई मर्द क़िले में नहीं आ सकता था—फाटक बन्द रहता था। क़िले के भीतर खूब नाच-रङ्ग तमाशे होते थे। सब काम स्त्रियाँ करती थीं। वहाँ नीच-ऊँच सब जाति की स्त्रियाँ जातीं और वस्तुएं बेचा करती थीं। जाने वालियों का उद्देश्य बादशाह की दृष्टि में पड़ जाना होता था—इसी कारण कोई प्रतिष्ठित स्त्री वहाँ नहीं जाती थी। फिर भी इन जाने वाली स्त्रियों की संख्या तीन हजार तक पहुँच जाती थी।

बादशाह नित्य बाजार में जाता। वह एक सुन्दर छोटे तख्त पर सवार होता, जिसे कुछ तातारी बाँदियाँ उठाये होती थीं। आस-पास कई स्त्रियाँ हाथों में स्वर्ण के आसा लिये और कई ख्वाज़ासरा रहते थे जो

चीजों की ख़रीद-फ़रोख्त में बड़े निपुण होते थे। बादशाह इस रूप सागर को बारी-बारी से निरखता जाता था—ज्योंही कोई सूरत उसे पसन्द आती कि वह उधर रुख़ करता और उससे कुछ ख़रीद लेता। मुँह-माँगा दाम देता, फिर एक इशारा करता और आगे चल देता था। साथ वाली कुटनियों का यह काम होता कि वह उस स्त्री को नियत समय पर उस कमरे में पहुँचा दें और बादशाह के सामने पेश करें। वहाँ से बहुत सी स्त्रियाँ तो माला-माल हो-होकर लौटतीं, परन्तु बहुत-सी हरम में ही दाखिल करली जाती थीं। नाचने वाली स्त्रियाँ जिन्हें कंचनी कहते थे उनकी भी दरबार में भारी क़द्र थी। ऐसी पाँच सौ स्त्रियाँ दरबार से तनखा पाती थीं।

इतना होने पर भी बादशाह न्याय और राजकाज के मामलों में बड़ा चाक चौबन्द था। उसने एक अफ़सर रख छोड़ा था जो बहुत-से साँप पिटारों में बन्द रखता था—बादशाह ज्योंही किसी अफ़सर से नाराज़ हुआ कि साँप से डसवा दिया। एक बार एक कोतवाल ने जिसका नाम मुहम्मद शहीद था रिश्वत लेकर मुकदमों का ग़लत फैसला किया था—बादशाह ने उसे साँप से अपने सम्मुख कटवाने की आज्ञा दी। जब साँप ने उसे डस लिया तो बादशाह ने पूछा कि यह कितनी देर में मर जायेगा? अफ़सर ने कहा—एक घण्टे में।

बादशाह तब तक बैठा रहा जब तक उसने दम न तोड़ दिया। इस के बाद दो दिन तक उसके शरीर को वहीं पड़े रहने की आज्ञा दी। वह मस्त हाथियों से भी अपराधियों को कुचलवा दिया करता था। पर कोई ऐसे उस्ताद ओहदेदार थे कि बादशाह को पूरा चकमा दे देते थे। एक मुक़दमे में एक क़ाजी साहब ने बीस हज़ार मुद्दई से और तीस हज़ार मुद्दा-यले से वसूल कर लिये। मुद्दायला झूठा था—अतः क़ाजी ने बादशाह के सम्मुख तीस हजार रु० रख कर कहा—हुजूर, यह आदमी मुझे तीस हज़ार रु० रिश्वत देकर इन्साफ से हटाना चाहता है। बादशाह ने क़ाजी की पीठ ठोकी और वह निहायत मजे से बीस हज़ार रु० पचा गया।

गुजरात का हाकिम नास खाँ बड़ा दुष्ट था। वहाँ की प्रजा ने तंग होकर कुछ नक्क़ालों को इस काम के लिये ठीक किया कि वे बादशाह तक उसकी अरजी पहुँचादें। इनमें कुछ प्रतिष्ठित व्यापारी भी नक्क़ाल बनकर

मिल गये। बादशाह ने जब सुना कि मशहूर नक्क़ाल आये हैं तो तमाशा करने का हुक्म दिया। उन्होंने उन सब जुल्मों की नकल की जो उन पर हुए थे। यह देख बादशाह ने हुक्म दिया-क्या ऐसा भी जुल्म किसी बादशाह की प्रजा पर होना मुमकिन है? तब सौदागरों ने कोशिश करके सब भेद खोल दिया। बादशाह ने जाँच की और हाकिम को गिरफ्तार कर रोहतास-गढ़ के क़िले में कैद करा दिया। जहाँ से कैदी का जीवित निकलना अस-म्भव था। उसकी सब सम्पत्ति भी जब्त कर ली।

एक और न्याय का नमूना सुनिये। एक बदमाश ने एक स्त्री को खूब तङ्ग किया कि मुझसे शादी करले। पर वह राजी नहीं हुई। उसने एक बुढ़िया से साँठ-गाँठ की जो उसे नहलाती थी और उसके शरीर के गुप्त चिह्न मालूम कर लिये। तब दावा कर दिया कि यह स्त्री मुझसे विवाह का वादा करके वादे से हटती है। स्त्री ने इन्कार किया तो युवक ने कहा कि मैं इसके गुप्त अङ्गों के भेद को जानता हूँ। अब परीक्षा से युवक की बात सच हुई। तो काज़ी ने हुक्म दिया कि यह झूठी है इसे शादी करनी पड़ेगी। स्त्री ने मोहलत माँगी और समझ गई कि बुढ़िया ने पते दिये हैं। एक दिन वह दो मज़बूत दासियों को संग लेकर उसके घर जा पहुँची और कहा—तू चोर है, मेरा कङ्गन उतार लाया है, ला। उसके इन्कार करने पर वह उसे जबर्दस्ती पकड़कर हाकिम के पास ले आई और अपना आरोप कह सुनाया। पुरुष ने कहा—मैं इसे जानता भी नहीं। तब उसने कहा—उस दिन तुमने कहा था कि तुम मेरे साथ मुद्दत तक रहे हो, अब यह कहते हो कि जानता तक नहीं—यह क्या बात है? फिर वह बादशाह के पास गई और सब कारगुज़ारी कह सुनाई। बादशाह ने सुनकर बुढ़िया और युवक को कमर तक जमीन में गढ़वाकर तीरों से छिदवा दिया।

बादशाह अपने भारी अमीरों को भी ऐसी भयानक सजायें दिया करता था। एक अमीर ने अपने नौकर की तनख़ा कई महीने तक नहीं दी, अवसर पाकर शिकार के समय उसने बादशाह से शिकायत कर दी। उसने उसी समय अमीर को बुलाकर पूछा। ज़ब उसने अपराध स्वीकार कर लिया तो बादशाह ने हुक्म दिया कि वह घोड़े से उतर जाय और नौकर सवार हो अमीर उसके साथ-साथ पैदल चले। यही किया गया। अमीर

जब दौड़ते-दौड़ते बेदम होकर गिर गया, तब बादशाह ने कहा—जब मैं तुम्हें ठीक समय पर तनखा देता हूँ तब तुम क्यों नहीं देते ?

एक अमीर जिसे दो हज़ारी मनसब प्राप्त था और पचास हजार रु० प्रतिमास की आय थी और उस पर बादशाह अत्यन्त प्रसन्न था। यहाँ तक कि उसे एक पुर्तगीज औरत भी बाँट दी गई थी। उसकी शाही पान देने की नौकरी थी। शाही पान के लिए बादशाह का हुक्म था कि किसी को न दिया जाये। परन्तु वह गुप्त रूप से उमरा को पान दे दिया करता था। एक दिन बादशाह ने उसे पान देते देख लिया। उस समय तो वह चुप रहा और जब वह शाम को बाग़ में पहुँचा तो बुलाकर हुक्म दिया—इसे इतना पीटो कि इसकी जान निकल जाय क्योंकि यह शाही हुक्म की परवाह नहीं करता। इसके मरने पर इसकी सब सम्पत्ति उसकी स्त्री को दे दी गई। यद्यपि शाही क़ानून से उसका अधिकारी बादशाह होता था। एक बार एक हिन्दू मुंशी की दासी को एक मुसलमान सिपाही ने ज़बर्दस्ती छीन लिया। मुन्शी ने बादशाह से अर्ज़ की। सिपाही ने कहा—दासी मेरी है। दासी ने भी यही कहा। बादशाह ने हुक्म दिया कि दासी को महल में बुलाया जाय। रात को जब बादशाह लिखने बैठे तो दासी से दवात में पानी डालने को कहा। उसने ठीक अन्दाज़ से पानी डाला। जिससे बादशाह को निश्चय हो गया कि यह अवश्य मुन्शी की दासी है और उसे मुन्शी को दिला दिया, तथा सिपाही को दण्ड दिया। बादशाह चोरों को कड़ा दण्ड देता है। वह बहुधा उन्हें सरहदी पठानों के पास भिजवा देता और पठानी कुत्तों से बदलवा लेता था। यदि अफ़सर चोर को न पकड़ पाते तो चारी का धन उन्हें गाँठ से देना पड़ता था।

कुछ लोग ऐसे जीवट वाले भी दुनिया में होते हैं जो बड़े-बड़े बादशाहों को हेय समझते हैं। ऐसे ही एक धृष्ट सेनापति का मजेदार किस्सा यहाँ हम लिखते हैं।

पाठकों को मालूम है कि बादशाह के सामने कोई बैठ नहीं सकता था। एक सेनापति पर बादशाह बड़े क्रुद्ध हुए और उसे नौकरी से बर्खास्त कर दिया। वह जान की परवाह न कर बादशाह के सामने पालथी मार कर बैठ गया और बोला—अब तो मैं हुजूर का नौकर न सेवक, अब कम से

कम इतना तो हुआ कि आराम से बैठ तो सकूँगा ! बादशाह उसकी दबंगता पर दंग होगया और फिर उसे बहाल कर दिया। यह हुक्म सुनते ही वह उठ खड़ा हुआ और कोर्निस बजा लाया। एक बार शाह गोलकुण्डा का एक मन्त्री दरबार में हाज़िर था, बादशाह ने उससे मजाक किया और अपने पीछे खड़े ख़ास बरदार की ओर इशारा करके पूँछा—क्या तुम्हारे आक़ा का क़द इस आदमी के बराबर है ? उसने कहा—जहाँपनाह मेरा आक़ा क़द में हुजूर से चार अंगुल ऊँचा है ! बादशाह बहुत खुश हुआ, और दरबार में उसकी स्वामि-भक्ति की बहुत तारीफ़ की। तथा शाहे गोल-कुण्डा के जुम्मे तीन साल का कर जो नौ लाख रु० के लगभग था छोड़ दिया और उसे पान तथा एक घोड़ा इनाम दिया।

हम यह पीछे कह चुके हैं कि बादशाह अपने सरदारों और सेवकों की सम्पत्ति के मालिक होते थे। एक सिपहसालार बड़ा धनवान् समझा जाता था। पर वह अपने पीछे बादशाह को कुछ सम्पत्ति छोड़ जाना नहीं चाहता था। जब वह मर गया तो राज-कर्मचारी उसकी सम्पत्ति पर क़ब्जा करने को गये, तो देखा नौ बड़े-बड़े भारी और मजबूत सन्दूकों में सोने की मेखों के ताले लगे हैं और सब तालों पर सील मोहर लगी हैं। उस पर एक-एक चिट भी चिपकी हुई है कि यह सब बादशाह को समर्पित है। जब वे भरे दरबार में खोले गये तो किसी में सींग और किसी में पुराने जूते थे। बादशाह यह देख अत्यन्त लज्जित हुआ और कहा—मालूम होता है इसका बाप कसाई और माँ चमारिन थी, इन्हें ले जाकर उसके साथ दफ़न करदो।

इस प्रकार जो हक मिलता था। उसे बादशाह ख़जाने में नहीं भेजता था। किन्तु इसके लिये दो पृथक ख़जाने थे। एक सोने के लिये व दूसरा चाँदी के लिये। दो बड़े-बड़े हौज थे। जिनकी लम्बाई सत्तर फुट और गहराई तीस फट थी। बीच-बीच में सुन्दर संगमरमर के स्तून थे। इनमें सोने वाले को ख़जीरा और चाँदी वाले को भौरा कहा जाता था। उनको चोर दरवाजों से बन्द किया जाता था। इन हौजों पर बड़े-बड़ कमरे थे जो खर्च होने वाले ख़जाने के तौर पर काम में लाये जाते थे। यह जबरदस्त ख़जाना

और नूरजहाँ का भारी ख़जाना औरङ्गजेब के जमाने में मालगुजारी की कमी से खर्च हो गये।

इन ख़जानों में से उच्च अधिकारी असाधारण चोरियाँ भी करते थे। एक बार बादशाह प्रातःकाल बागीचे में घूमने और अपने हाथों से फल तोड़ने लगे। फिदाईखाँ अमीर साथ था। बादशाह उसे फल देता जाता था। महल में जाकर जब बादशाह ने फल माँगे तो उसने कहा—हुजूर मेरे पास फल कहाँ हैं? वह इधर-उधर तलाश करने के बहाने करने लगा। बादशाह ने नाराज़ होकर कहा—यह तुम मेरे सामने झूँठ बोल रहे हो? इस पर फिदाईखाँ ने कहा—जहाँपनाह। इन मामूली फलों की चोरी भी हुज़ूर ने मुझे नहीं करने दी। परन्तु जहाँपनाह वजीर की चोरियों से किस प्रकार आँखें बन्द किये हैं, जो रोज़ाना तीस हज़ार रुपये जेब में डाल लेता है। बादशाह ने धीरे से कहा—हमको सब मालूम है। मगर मसलहतन चश्मपोशी करनी पड़नी है।

अमरसिंह राठौर की प्रसिद्ध घटना इसी बादशाह के भरे दरबार में हुई। अमरसिंह के मरने पर उनका दर्जा उनके छोटे भाई जसवन्तसिंह को दिया गया। बुन्देलखण्ड के राजा चम्पतराय ने भी इसी बादशाह के जमाने में साठ हजार सेना लेकर विद्रोह खड़ा कर दिया और कर देने से इन्कार कर दिया। कई किले भी लूटकर क़ब्जे में कर लिये। इस पर बादशाह ने स्वयं उस पर चढ़ाई की और मन्त्री सईदुल्लाखाँ की चतुराई से उस पर विजय पा सका। परन्तु काश्मीर पर चढ़ाई करने में असफल रहा।

शाहजहाँ ने अपने केवल चार पुत्र और पुत्रियाँ जीवित रहने दीं और जब कभी उनकी संख्या अधिक होने लगती थी, तो वह अपनी स्त्रियों के हमल गिरवा दिया करता था। यह बुरा कार्य औरङ्गजेब ने भी किया था और इसके उपरान्त उसके लड़कों ने भी। शाहजहाँ की सबसे बड़ी लड़की बड़ी बेगमसाहबो (जहाँआरा) जिसको वह सबसे अधिक प्रेम करता था, बड़ी सुन्दर, चतुर, दाता और दयावाली थी। सब लोग उसे प्रेम की निगाहों से देखते थे और वह बड़ी सज-धज से रहती थी। इस शहजादी को बन्दरगाह सूरत के सिवाय जो इसे पान के खर्च के लिये दे रखा था, और भी वार्षिक तीस लाख रुपये खर्च के लिए मिलते थे। इसके अतिरिक्त इसके

पास पिता के दिये हुये बहुमूल्य जवाहरात थे। यह दारा को चाहती थी और उसे सदा इस बात की चिन्ता रहती थी कि दरबार के सब उमरा उसके विपक्षियों से न मिल जायें।

इसने इस बात की बड़ी कोशिश की कि राजगद्दी का मालिक दारा हो। क्योंकि वह विवाह की बड़ी इच्छा रखती थी और दारा ने प्रतिज्ञा की थी कि सिंहासन पर बैठते ही तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। इस बात को मन में रखते हुए उसने अपनी सारी चतुराई बादशाह को प्रसन्न करने में लगा दी। वह सदा बड़े प्रेम और मन से शाहजहाँ की सेवा करती थी। और यही कारण था कि साधारण पुरुष कहते थे कि बादशाह का इसके साथ अनुचित सम्बन्ध है। दारा चाहता था और उसने बादशाह से विनोद भी किया कि शहज़ादी का विवाह नज़ाबतखाँ नामी सिपहसालार से कर दिया जाये, जो बलख़ के शाही ख़ानदान से सम्बन्ध रखता था। वह पुरुष वीर और सुन्दर था। परन्तु शाहजहाँ के साले शाईस्ताखाँ ने इस समाचार को जानकर शाहजहाँ को समझाया कि ऐसा न करना। क्योंकि यदि उसकी शादी शहजादी से हो गई तो उसे अवश्य ही शहजादों की पदवी देनी होगी। इसके अतिरिक्त नजाबतखाँ शाहे बलख़ का सम्बन्धी है। जिसके साथ कभी न कभी आपको लड़ना पड़ेगा, और दूसरे अकबर का भी यह फ़रमान है कि लड़कियों की शादी नहीं होनी चाहिए। यही कारण था कि यद्यपि शाहजहाँ की इच्छा थी तो भी उसने अपनी लड़की की शादी नहीं की।

यह शहजादी गाने-बजाने और नाच-रंग में बड़ी चतुर थी। एक दिन नाच में लीन हो रही थी कि नाचने वाली की एक बारीक पोशाक में जो इतर में बसी हुई थी आग लग गई। शहज़ादी इसे बहुत प्रेम करती थी इसलिये इसे बचाने दौड़ी और आग बुझाते-बुझाते छाती जला बैठी, इसलिये दरबार में चर्चा हुई। परन्तु शहजादी को बड़ा दुःख हुआ जब उसे पता मिला कि वह स्त्री जिसके लिये इसने इतना कष्ट उठाया था बच नहीं सकी। इन खेल-तमाशों के अतिरिक्त शाहज़ादी अंगूरी शराब को बहुत चाहती थी जो फ़ारिस, काश्मीर और काबुल से मँगाई जाती थी। परन्तु इसके पीने की अच्छी शराब वह थी, जो उसके अपने घर में बनाई जाती थी। यह शराब बड़ी स्वादिष्ट होती थी और अंगूर में गुलाब और बहुत से

पदार्थ डालकर बनाई जाती थी। मैंनें इसके हरम के कई मनुष्यों को स्वस्थ किया था। इसलिये बहुधा कृतज्ञता प्रकट करने के लिये उस शराब की बोतलें मेरे पास भेज दिया करती थी। इससे मुझे बहुत लाभ होता था। बेगम साहबा रात को उस समय शराब पिया करती थीं, जब गाना बजाना इत्यादि होता था और कभी-कभी इस दशा को पहुँच जाती थी कि वह खड़ी भी नहीं रह सकती थीं। इसलिये उठाकर बिस्तर पर ले जाना पड़ता था। जिस समय बेगम साहबा महल से दरबार को चलती थीं तो बड़ी स -धज कर और बहुत से सवार और प्यादे तथा ख्वाजासरा जलूस में लिये चलती थीं। ख्वाज़ासरा जो इसके चारों ओर घेरा डाले होते थे—जिस किसी को सामने खेते, धकेल कर एक तरफ कर देते थे और किसी का कोई मान नहीं रखते। बल्कि चलते हुए हटो बचो के नारे लगाये जाते थे। इसी प्रकार सब शाहज़ादियाँ आतीं और इसीलिये जो इन्हें आते देखता शीघ्रता से रास्ता छोड़ कर एक ओर हो जाता था।

इनकी सवारी बड़ी धीरे-धीरे चलती है। आगे-आगे सक्के सड़कों पर पानी छिड़कते थे जिससे कि धूल न उड़े। शाहज़ादियाँ पालकी में सवार होती हैं, जिसके ऊपर एक बहुमूल्य वस्त्र या सुनहरी जाली होती है जिसमें बहुधा क़ीमती पत्थर और जवाहरात लगे रहते थे। पालकी के गिर्द ख्वाज़ासरा मोर के परों के गुच्छों से मक्खियाँ उड़ाते, जिनके दस्ते जवाहरात से जटित और ऊपर सुनहरी काम होता था। सेवक सुनहरी या रुपहली झण्डे लिये हुए हटो बचो पुकारते थे। पालकी के साथ नाना प्रकार की सुगन्ध रहती है।

यदि मार्ग में कोई अमीर अपने आदमियों सहित मिल जाय तो वह आदर भाव से सड़क से हट और घोड़े से उतर कर दोनों हाथ जोड़े हुए दो सौ कदम के फासले पर खड़ा हो जाता था। इस जगह वह उस समय तक खड़ा रहता जब तक कि शाहज़ादी समीप न आ जाय और फिर उसे बड़ा गहरा सलाम करता।

शाहजहाँ का सबसे बड़ा लड़का दारा था। यह रोबदार, सुन्दर, स्वच्छ दिल, अच्छे आचार, मधुर भाषी, दयालु और निस्सहायों पर दया करने वाला था। परन्तु अपनी धुन का इतना पक्का था कि सदा यह सम-

ज्ञता था कि मुझे किसी अन्य पुरुष की अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं। वह सदा अनुमति देने वालों से घृणा करता था और यही कारण था कि उसके प्रिय मित्र भी आवश्यकीय घटनाओं में इसको कुछ राय देने का साहस नहीं करते थे। उसके संकल्प से परिचित होना कठिन था। वह सदा यह विचार करता था कि उसका भाग्य बड़ा प्रबल है और प्रत्येक मनुष्य उसे प्रेम की दृष्टि से देखता है। वह राग-रंग और नाच-कूद को बहुत चाहता था। दारा फिरङ्गी लोगों को बहुत चाहता था, इसके अतिरिक्त जैसे कि हर मनुष्य जानता था, इसका कोई दीन नहीं था।

यही कारण था कि औरङ्गजेब ने इसे काफ़िर के नाम से पुकारा। दारा पादरियों के साथ धार्मिक विषयों पर बातचीत करने और मुसलमान मौलवियों से उनका मुकाबला कराने में बड़ा आनन्द लेता था। इस दशा में वह कमरे के चारों ओर एक परदा लगा लेता था। शाहजादा पादरियों को उन लोगों की दलीलों के सामने हारता हुआ देखकर खुश होता था।

दारा को ज्योतिषियों पर पूरा विश्वास था। और बहुत से ज्योतिषी उसके दरबार में रहते थे। जिनमें सबसे बड़ा मेरा मित्र था। जिसका नाम भवानीदास था। क्योंकि वह मेरे पास कई बार शराब पी जाया करता था। इस शाहज़ादे के दो लड़के थे। बड़ा सुलेमान शिकोह और छोटा शहर शिकोह। ये दोनों बड़ी बेगम के पेट से हुए थे जो शाही ख़ानदान से थी। जिस समय शाहजहाँ ने प्रत्येक शहज़ादे को पृथक-पृथक देश बाँट दिये तो उसने दारा को काश्मीर लाहौर और काबुल का देश देकर अपने पास रख लिया। उसे इससे इतना प्रेम हो गया था कि इसे उसने बहुत से हक़ूक दे दिये जैसे हाथियों का लड़ाना, अपने सामने सोने चाँदी के गुर्ज रखवाना। जो केवल बादशाह के सामने ही रखे जाते हैं। अपने प्रेम को प्रकट करने के लिये उसने आज्ञा दी कि उसके राजसिंहासन के पास एक और छोटा सा सिंहासन रखा जाय, जिसपर शाहज़ादा बैठा करे। यद्यपि दारा पिता का मान करता हुआ उस पर कभी बैठना नहीं चाहता था।

इसके अतिरिक्त शाहजहाँ ने अपने सब उमरा को आज्ञा दी कि सबेरे का सलाम दारा को देकर फिर शाही हुज़ूर में आये। कई अवसरों

पर उसने कहा कि मैं दारा को अपना युवराज बनाना चाहता हूँ और जहाँ तक भी बनेगा इसको अपना युवराज बनाऊँगा।

यह भी किम्बदन्ती थी कि दारा ने महाप्रसिद्ध और चतुर अमीर सईदउद्दौला के प्राण ज़हर से लिये थे, क्योंकि वह औरङ्गजेब का पक्षपाती था। बादशाह और सारा दरबार इससे प्रेम करता था। इसी प्रकार उसने एक हिन्दू राजा जयसिंह को भी अप्रसन्न कर लिया। यह पुरुष चालीस हज़ार सवार और एक लाख पचास हज़ार सेना दल का अधिराज था। दारा ने एक बार कहा कि जयसिंह मिरासी प्रतीत होता है। राजा दिखावटी रूप में तो उस कटाक्ष को हज़म कर गया, परन्तु जिस समय दारा को उसकी आवश्यकता पड़ी तो उसने अपना बदला लेकर ही छोड़ा।

उसने उमरा को भी अपने प्रतिकूल बना कर महावीर मीरजुमला से भी मखौल किया, और जब बादशाह के दरबार में आया तो अपने चलते पुर्जों के द्वारा उसकी तलवार चुरा ली और समय-समय पर अपने मसख़रों से उसकी चाल-ढाल पर नक़ल कराता रहा।

शाहजहाँ का तीसरा बेटा औरंगजेब अपने सब भाइयों से स्वभाव में निराला, संजीदा और कार्य गुप्त रूप से निकालने का आदी था। इसका चित्त कुछ रोगी सा था और सदा कुछ-न-कुछ करता रहता था। इसका उद्देश्य यह रहता था कि बात की तह को पहुँचकर पूरा न्याय करे। उसे यह बड़ी चाह थी कि दुनिया उसे बुद्धिमान, चतुर और न्यायरक्षक समझे। दान-पुण्य करने में भी वह अच्छा था, और केवल वहीं पारितोषिक और दान देता था जहाँ पूरी आवश्यकता हो।

परन्तु चिरकाल तक उसने यह प्रसिद्ध कर छोड़ा कि उसने दुनिया को त्यागकर राजसिंहासन के सब हक़ छोड़कर अपनी आयु ख़ुदा की पूजा में व्यतीत करने का निश्चय कर लिया है।

फिर भी दक्षिण में होते हुये वह अपनी बहन रोशनआरा के द्वारा सिंहासन के लिये पूरा उद्योग करता रहा परन्तु जो कुछ होता था वह गुप्त रूप से और ऐसी चतुराई से होता था कि किसी को भेद न लगे। इसके अतिरिक्त उसे भय था कि उसे दक्षिण से बुला न लिया जाय। इसीलिये वह सदा इस उद्योग में था कि शाहजहाँ के दिल पर घर करे।

शाहजहाँ का सबसे छोटा और चौथा लड़का मुरादबख्श था। यह पुरुष बहुत कम बुद्धि वाला था। खाने-पीने और आनन्द भोगने की रुचि थी, परन्तु बहादुर, पुरुषार्थी और सदा शस्त्र चलाने में लगा रहता था। वाण-विद्या में तो अपने फ़न का उस्ताद ही था। कई बार बड़े-बड़े भेड़ियों और रीछों को अपने हाथ से भाला मारने के शौक़ में अपने प्राण संकट में डाल चुका था। इसका कोई भाई शूरवीर इतना नहीं था। जब कभी लड़ाई का वर्णन आता तो उसे बड़ी प्रसन्नता होती और अपने हाथों और तलवार पर भरोसा रखता हुआ वह सदा दरबार की बातों को घृणा की दृष्टि से देखता था। और किसी की अपने सामने कुछ हस्ती नहीं समझता था।

अपने अन्तिम दिनों में बादशाह अपने पुत्रों से भयभीत रहने लगा। वे सब बालिग और बाल-बच्चेदार थे। पर परस्पर उनमें प्रेम न था। दरबार में भी प्रत्येक शाहज़ादे के पृथक्-पृथक् पक्षपातियों के दल थे। वह बहुधा उन्हें ग्वालियर के क़िले में क़ैद करने की सोचा करता था, पर उसे हिम्मत न होती थी। उसे ऐसा ख़याल हो गया था कि या तो वे राजधानी में ही मारकाट मचावेंगे या पृथक् राज्य क़ायम करेंगे। उसने तीनों को दूर दूर प्रदेशों का सूबेदार बनाकर भेज दिया था। केवल दारा उसके पास था। तीनों शाहज़ादे पृथक्-पृथक् अपने अपने प्रान्तों में स्वतन्त्र बादशाह की भाँति रहते थे। वे सारी आमदनी स्वयं खर्च करते और सेना संग्रह करते थे।

औरंगजेब के विषय में लिखा जा चुका है कि यह बड़ा तत्पर, ढोंगी, दूरदर्शी एवं मुस्तैद आदमी था। इसे एक ऐसा मित्र मिल गया जिसने इसके भाग्य का सितारा चमका दिया। इस आदमी का नाम मीर जुमला था। यह मनुष्य ईरानी था, और अत्यन्त साधारण व्यक्ति था। वह एक सौदागर के साथ उसके घोड़ों पर नौकर होकर गोलकुण्डे आया था। इसके बाद उसने जूते बेचने का काम किया। पर शीघ्र ही उसका भाग्य चमका और वह भारी व्यापारी सिद्ध हो गया। उसने धन भी बहुत इकट्ठा कर लिया और समुद्र में उसके अपने कई जहाज़ चलने लगे। अपनी बुद्धिमत्ता से दरबार में भी प्रसिद्ध हो गया था। उसने शाह गोलकुण्डे को चीन से मँगवाकर कुछ सौगातें दीं और कुछ अन्य बहुमूल्य भेंट देकर उन्हें प्रसन्न कर लिया और कर्नाटक का हाकिम बना दिया गया। जहाँ उसने वहाँ के मन्दिरों के

अटूट खज़ाने लूटकर बेतौल सम्पदा इकट्ठी की। इस प्रान्त में इसने 'लाल' की खान भी ढूँढ़ निकाली और वहाँ एक स्वतन्त्र, सशक्त फौज संगठित करली जिसमें फिरङ्गी तोपची थे। इन सब बातों से शाह इस आदमी से चौकन्ना हो गया, उसे ऐसा भी सन्देह हुआ कि शाही बेगमों से इस व्यक्ति का गुप्त सम्बन्ध है। एक बार उसने भरे दरबार में उसे दुर्वचन कहे। मीर जुमला शाह का रुख समझ गया, उसके औरंगजेब को एक खत—जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था और औरंगाबाद में रहता था। उस खत का मज़मून यह था—

साहेब आलम,

मैंने शाह गोलकुण्डा की वह बड़ी-बड़ी ख़िदमते की हैं कि जिन्हें तमाम ज़माना जानता है और जिनके लिये उन्हें मेरा बहुत मामून होना चाहिए। मगर इतने पर भी वह मेरी और मेरे ख़ानदान क़ी बर्बादी की फ़िक्र में हैं। इसलिये मैं आपकी पनाह लेना और आपके हुजुर में हाज़िर होना चाहता हूँ। और इस दरख़ास्त क़बूलियत के शुक्राने में जिसकी आपकी जानिब से पूरी उम्मीद है एक मनसूबा अर्ज़ करता हूँ। जिसके ज़रिये आप आसानी से बादशाह को गिरफ्तार करके मुल्क पर कब्ज़ा कर सकते हैं। आप मेरे वादे की सच्चाई पर एतबार और भरोसा फ़र्माए। इन्शाअल्ला यह युक्ति न तो कुछ मुश्किल ही होगी और न कुछ ख़तरनाक ही। यानी आप पाँच हज़ार चुने हुये सवारों के साथ बहुत जल्द बिना तकल्लुफ़ कूच करते हुए गोलकुण्डा की तरफ चले आवें जिसमें सिर्फ सोलह दिन लगेंगे। और यह मशहूर कर दें कि शाहजहाँ का सफीर शाहे गोलकुण्डा से जरूरी बातें तय करने आया है। यह फौज उसकी अरदली में है। वह शख्स जिसकी मार्फत हमेशा उमूर की इत्तला बादशाह को होती है मेरा क़रीबी रिश्तेदार है और उस पर मुझे कामिल भरोसा है। इसलिए मैं वादा करता हूँ कि एक ऐसा हुक्म जारी हो जायगा कि जिसकी बदौलत आप बिना सन्देह के भागकर-नगर के दरवाजे तक पहुँच जायेंगे। परन्तु जब बादशाह मामूल के मुआफ़िक़ फर्मान के इस्तक़बाल के लिये जो सफ़ीर के पास हुआ करता है आये, तब उसे बाआसानी गिरफ्तार करके जो मुनासिब समझें उसके लिए तजवीज कर

सकते हैं। इस मुहिम का कुल खर्चा मैं आपको दूँगा और इसके इखतताम तक पचास हज़ार रूपये रोज देता रहूँगा।

औरङ्गजेब इस स्वर्ण सुयोग को कब छोड़ता। वह तत्काल चल पड़ा पर ठीक वक्त पर बादशाह पर भेद खुल गया और वह भाग कर गोलकुण्डा के किले में चला गया। इस किले को औरङ्गजेब ने घेर लिया। दो महीने बीत गये। औरङ्गजेब के पास तोपें न थीं वह लाचार था पर उधर किले में पानी और रसद चुक गई। पर इसी बीच में शाहजहाँ ने उसे तत्काल आने का हुक्म भेज दिया जिससे वह पछताकर लौट गया। पर इतनी सन्धि करता गया—

१—चढ़ाई का कुल खर्च शाह से वसूल किया जाय।

२—मीर जुमला मय कुटुम्ब और सम्पत्ति के राज्य से बाहर चला जाने दिया जाय।

३—बड़ी शहजादी की अपने बड़े पुत्र महमूद से शादी कर दी जाय और उसका पुत्र ही गोलकुण्डा का उत्तराधिकारी समझा जाय। दहेज में रामगढ़ का क़िला मय सामान दिया जाय।

४—सिक्कों पर शाहजहाँ के शस्त्र की छाप रहे।

औरंगजेब के इस काम में दारा और बेगम साहेब (शाहजहाँ की बड़ी पुत्री) ने विघ्न डाला था। औरंगजेब मीरजुमला के साथ वहाँ से चला। रास्ते में उन्होंने बीजापुर में बीदर का किला फ़तह कर लिया और दौलताबाद में रहने लगे। वहाँ औरंगजेब ने उसे चिकनी-चुपड़ी बातों से अपना सहायक बना लिया। मीर ने भी प्रतिज्ञा की कि मैं आपके लिये तन मन धन न्यौछावर कर दूँगा। औरंगजेब भी समझ गया कि यही पुरुष तख्ते हिन्दुस्तान पर बैठाने की ताकत रखता है।

शाहजहाँ तक भी उसकी वीरता और योग्यता की सूचनाएँ पहुँचीं और उसने उसे बुलाने के बार-बार निमन्त्रण भेजने प्रारम्भ किये। अन्त में वह दिल्ली आया। शाही हुक्म से मार्ग में उसका सरदारों ने भारी सत्कार किया। जब वह आगरे पहुँचा तो बड़े-बड़े सेनापति उसके स्वागत को आये और तमाम बाज़ार सजाये गये जिस प्रकार बादशाह के लिये सजाये

जाते हैं। उसने बादशाह को भारी कीमत की भेंटें दीं, जिनमें जगत प्रसिद्ध कोहनूर हीरा भी था और बादशाह को गोलकुण्डा के शाह के विरुद्ध ख़ूब उभारा। वह राज़ी हो गया और एक भारी सेना मीर जुमला की आधीनता में भेजी, जिसे लेकर उसने बीजापुर का कल्याण का क़िला जा घेरा। इस काम में दारा और शाहजहाँ ने दो चालाकी के काम किये—एक तो यह कि मीर जुमला के स्त्री बच्चों को बतौर जमानत अपने पास रख लिया, दूसरे उससे वादा करा लिया कि उस काम में औरंगजेब का कोई सरोकर न होगा।

इस वक्त बादशाह सत्तर वर्ष से ऊपर आयु को पहुँच चुका था और उसे एक भयङ्कर बीमारी लग गई थी। उसने इस अवस्था में अपनी शक्ति का विचार न कर बहुत सी कामोत्तेजक दवाइयाँ खाई थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि तीन दिन तक बादशाह का पेशाब बन्द रहा। इस खबर ने देश भर में हलचल मचा दी। बादशाह ने यह देख क़िले के सब दरवाज़े बन्द कराकर केवल दो दरवाज़े खुले रखने की आज्ञा दी। एक पर जसवन्तसिंह राठौर को और दूसरे पर रामसिंह को तीस-तीस हजार सैनिकों सहित नियत कर दिया और हुक्म दिया कि सिवा दारा के किसी को भीतर न आने दे। उसे भी सिर्फ़ दस आदमी लेकर भीतर आने की आज्ञा थी मगर वह रात भर क़िले में नहीं रह सकता था। सिर्फ़ बादशाह की बड़ी बेटी बेगम साहेब ने ज़िद की और कुरान उठाकर क़सम खाई कि दग़ा न करेगी।

यह सब अवसर देख दारा ने दिल्ली, आगरा और लाहौर में तत्काल सेना-संग्रह प्रारम्भ कर दिया। बाज़ार बन्द हो गया। कहीं-कहीं बादशाह के मरने की भी खबर पहुँच गई। शाहशुजा को बंगाल में ख़बर लगते ही वह सेना लेकर कूच दर कूच करता दिल्ली की ओर बढ़ा। उसके साथ चालीस हज़ार सवार और अनगिनत प्यादे थे। इसके सिवा उसने पुर्तगीज़ों की आधीनता में एक बेड़ा भी गंगा में तैयार करा लिया था। वह यह प्रचार करता आ रहा था कि दारा ने बादशाह को विष दिया है और मैं उसे दण्ड देने जाता हूँ। बादशाह ने उसे लौट जाने का हुक्म भेजा, पर उसने न माना। तब बादशाह ने हारकर उसी रोग की हालत में दिल्ली से आगरे तक की यात्रा की और दारा के बेटे सुलेमान शिकाह को राजा जयसिंह और

सेनापति दिलेरखाँ के साथ शुजा पर एक भारी सेना लेकर भेजा, जिन्होंने उसे बंगाल की ओर खदेड़ दिया।

अब बादशाह ने देहली कूच की तैयारी की। उसका इरादा देहली राजधानी ले आने का था। कई दिन तक सड़कें लश्करों से भरी चलती रहीं पर ज्योंही बादशाह चलने को हुआ कि ख़बर मिली कि औरंगजेब ने विद्रोह किया है। यह सुनकर बादशाह ने यात्रा रोक दी और औरंगजेब को लौट जाने का हुक्म भेजा। मगर उसने इसकी परवाह न की। रास्ते में उसे पता लगा कि मुरादबख्श भी सेना सजा चुका है, अतः उसने उसे पत्र लिखा। उसका आशय यह था—

बहादुर भाई ! मैंने सुना है कि दारा ने जहर देकर हमारे पिता बुजुर्गवार को मरवा डाला है। मैं इस पत्र द्वारा आप पर प्रकट करना चाहता हूँ कि आप के सिवा कोई भी शाहजादा गद्दी का हक़दार नहीं। दारा क़ाफिर है, शुजा अली का पेरौकार है, मेरी सल्तनत क़ुरान है और इरादा कर चुका हूँ कि जीवन के शेष दिन मक्के में व्यतीत करूँगा। मैंने इरादा किया है कि जी जान से कोशिश करके आपको तख्त पर बैठा दूँगा। मेरी सारी चतुराई, धन, फ़ौज आपकी है। मेरी यही अर्ज़ है कि जब आप बादशाह हो जायँ मेरे बाल बच्चों पर महरबानी की नजर रखें। एक लाख रुपये मैं आपको बतौर नजराने के भेज रहा हूँ। आप फ़ौरन सूरत के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लीजिये, जहाँ बहुत सी दौलत सुरक्षित है।

आपका प्यारा भाई—औरंगजेब।

पत्र पाकर मुराद फूलकर कुप्पा होगया। उसने फ़ौरन फ़ौज भर्ती करना शुरू कर दिया और औरंगजेब को शीघ्र लश्कर समेत आ मिलने को लिख भेजा। उसने महाजनों को भी यह पत्र दिखा कर बहुत सा रुपया क़र्ज ले लिया।

औरंगजेब ने अब अपने पुत्र सुल्तान मुहम्मद को मीर जुमला को लेने भेजा जो कल्याण के किले का मुहासरा किये पड़ा था और लिखा कि आपकी सम्मति की बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि कई कठिन काम आ पड़े हैं। आप मुझे तुरन्त औरङ्गाबाद में आकर मिलें। उसने जवाब में लिखा—

कल्याण का मुहासरा छोड़ और फ़ौज से अलहदा होकर मैं

औरंगाबाद नहीं आ सकता। इसके अलावा आप विश्वास करें कि मैंने ठीक खबर पाई है कि बादशाह सलामत अभी ज़िन्दा हैं। फिर यह भी बात है कि जब तक मेरे बाल बच्चे दारा के क़ब्जे में हैं, मैं आपके साथ शरीक नहीं हो सकता।

यह जवाब पाकर औरंगजेब ने अपने दूसरे पुत्र मुअज्ज़म को उसके निकट भेजा। जो समझा-बुझाकर उसे ले आया। वहाँ दोनों दोस्तों ने सलाह की और फ़र्जी तौर से मीर जुमला क़ैद होकर दौलताबाद के क़िले में रख दिया गया। उसने औरंगजेब को रुपया भी बहुत दिया जिससे उसने फौजें भर्ती कर डालीं। उसने दक्खिन के सब क़िलेदारों और फ़ौज-दारों को अपना साथ देने को तैयार कर लिया। नर्वदा पर एक क़िला था जहाँ होकर दक्खिन का रास्ता था। वहाँ के क़िलेदार मिर्जा अबदुल्ला को उसने कहला दिया कि यदि कोई क़ासिद इधर से गुज़रे और उसके पास ऐसी चिट्ठियाँ हों जिनमें बादशाह के जिन्दा होने की बात हो तो वे चिट्ठियाँ जला दी जायँ और उस आदमी का सिर काट लिया जाय। इस प्रकार उसने दक्खिन में असली ख़बर पहुँचने न दी और सब सरदार अपनी-अपनी फ़ौज़ लेकर उसके साथ हो लिये।

मुराद को वह बराबर चिकनी-चुपड़ी चिट्ठियाँ लिख रहा था। माँडो के जंगलों में दोनों सेनाएँ मिलीं। औरंगजेब हाथ बाँधे मुराद के सामने गया। उसे बादशाह कहा और बड़े-बड़े सब्ज़ बाग़ दिखाये। मुराद ने भी बड़े-बड़े वादे किये। अब दोनों लश्कर साथ-साथ चले।

यह भयानक समाचार आगरे पहुँचा तो दरबार में हलचल मच गई। शाहजहाँ ने दोनों शाहजादों को वापस जाने को लिख भेजा। उत्तर में औरंगजेब ने लिखा—

'मुझे बन्दगाने वाला की सलामती की ख़बर पर यक़ीन नहीं आता। और बिलफ़र्ज अगर वे जिन्दा और सलामत हैं तो क़दमबोसी हासिल करने और इर्शाद अहकाम से सरफ़राज होने की मुझे बड़ी तमन्ना है।'

लाचार बादशाह ने अपने सरदारों से सम्मति ली और क़ासिमख़ाँ तथा जसवन्तसिंह को एक टुकड़ी सेना देकर उन्हें रोकने को भेजा गया।

उन्हें आज्ञा थी जहाँ तक बने औरंगजेब को वापस लौटा दें और उज्जैन में क्षिप्रा नदी पार न करने दें।

गर्मी की ऋतु थी और नदी का जल बहुत कुछ सूख गया था। राजा और क़ासिम नदी के इस पार थे कि टीले पर औरङ्गजेब की फ़ौज दिखाई दी। यदि राजा साहेब उसी वक्त हमला बोल देते तो औरंगजेब की थकी हुई सेना के पाँव उखड़ जाते, परन्तु उन्हें तो आज्ञा ही यह थी कि नदी के इस पार रहें और औरङ्गजेब को इस पार आने से रोकें। औरङ्गजेब तीन दिन तक नदी के उस पार पड़ा रहा। तीसरे दिन उसने एक ऊँचे टीले पर तोपखाना जमाया और राजा साहेब की सेना पर गोले बरसाने की आज्ञा दी। साथ ही अपनी सेना को पार उतरने की भी। राजा साहेब ने वीरता से युद्ध किया पर क़ासिम खाँ पहले ही औरङ्गजेब से मिल गया था। उसने रातों-रात गोला बारूद नदी में फिंकवा दिया था। शीघ्र ही उनका गोला बारूद चुक गया। औरङ्गजेब इस पार उतर आया और क़ासिमखाँ घोर संकट में जसवन्तसिंह को छोड़कर भाग खड़ा हुआ। राजा जसवन्त-सिंह खूब लड़े। उनके अठारह हजार राजपूतों में सिर्फ छः सौ बचे। तब जसवन्तसिंह आगरे न जाकर सीधे जोधपुर चले आये। वहाँ पहुँचते-पहुँचते सिर्फ पन्द्रह योद्धा उनके साथ बचे थे।

इस विषय से औरंगजेब का साहस बढ़ गया और इसने प्रसिद्ध किया कि शाही फ़ौज में ऐसे तीन हजार सिपाही हैं जो हमारी सेना में आने को तैयार हैं।

औरंगजेब ने उस स्थान पर एक सराय बनवाई और बाग़ लगाया और उसका नाम फ़तहपुर रखा। उसके हाथ बहुत सा सामान गोला बारूद लगा, जो क़ासिमखां ने जमीन में गड़वा दिया था।

शाहजहाँ ने यह सुना तो दुःख और बेचैनी से बेहोश होगया। दारा का भी बुरा हाल था। उधर सुलेमान शिकोह शुजा के पीछे लगा था, उसे बादशाह बार-बार लौट आने का सन्देश भेज रहा था।

दारा ने एक लाख सवार, बीस हजार पैदल, अस्सी तोपें एकत्र कीं और युद्ध की तैयारी की। औरङ्गजेब के पास चालीस हज़ार सवार थे। वे थके हुए भी थे, पर दारा को चैन न था, अब वह बादशाह का हुक्म नहीं

मानता था, बल्कि हुक्म चलाता था। बादशाह हर तरह उससे लाचार हो गया था। विश्वासी सरदार सुलेमान शिकोह के साथ थे, दरबार में जो सरदार थे, उनके ऊपर विश्वास नहीं किया जा सकता था। क्योंकि दारा ने बहुतों का अपमान किया था।

बादशाह स्वयं इस युद्ध में सेनापति बनना चाहता था। यदि ऐसा होता तो युद्ध टल जाता, पर दारा को गर्व था कि विजय का सेहरा मैं अपने सिर बाँधूँगा। दारा को यह भी समझाया कि सुलेमान शिकोह के आने तक ठहरो जो तेजी से बढ़ा आ रहा है—पर उसने न माना। वह जब कूच करके पिता से मिलने गया तो बादशाह ने कहा—तुमने अपनी मर्जी का काम किया, खुदा तुम्हें सुर्खरू बनाये। दारा चल दिया और आगरे से साठ मील दूर चम्बल नदी का घाट रोक पड़ाव डाल दिया।

औरङ्गजेब ने भेदिये लगा रखे थे और उसे दारा की गतिविधि मालूम थी। इतने पर भी उसने अपने डेरे उस पार लगा दिये और जान-बूझ कर इतने पास लगाये कि जिन पर दारा की दृष्टि पड़ सके। इसके बाद उसने चम्पतराय से सन्धि कर वहाँ से बारह फर्लांग की दूरी पर दुर्गम वन में होकर सेना इस पार उतार ली। जब वह चुपचाप जमना किनारे तक पहुँच गया तब दारा को इस बात का पता चला और उसने उसका पीछा किया। अब आगरा निकट आ गया था। औरङ्गजेब यहाँ सेना को विश्राम की आज्ञा देकर सामग्री और मोर्चेबन्दी की तैयारी करने लगा।

उधर दारा ने सबसे आगे तोपें लगा कर ऐसी जकड़ दी कि शत्रु के सवार पंक्ति भंग न कर सके। उनके पीछे उसने ऊँटों पर छोटी तोपें सजाईं। इसके पीछे पैदल सेना पंक्ति बाँध बन्दूक दाग़ने को तैयार होगई। शेष सेना सवारों की थी जिनमें राजपूतों पर तलवारें या बर्छियाँ थीं और मुग़लों पर तलवारें, तीर और धनुष। इस सेना के दाहिनी ओर ख़लीलुल्लाहखाँ था जिसके आधीन तीस हज़ार सवार थे। बाँईं ओर रुस्तमख़ाँ दक्षिणी, राव छत्रसाल और सरदार रामसिंह थे। औरंगजेब की सेना की भी यही व्यवस्था थी। अन्तर यह था कि कुछ छोटी तोपें उसने दायें बायें भी छिपा दी थीं। यह युक्ति मीर जुमला ने बताई थी जो बहुत उपयुक्त निकली।

ज्यों ही युद्ध प्रारम्भ हुआ कि तोपों ने आग बरसानी शुरू करदी और तीरों की इतनी वर्षा हुई कि बादल छागया। पर इतने में जोर से वर्षा होने लगी। थोड़ी देर के लिये युद्ध रुक गया। पर पानी बन्द होते ही तोपें फिर चलने लगीं। इस समय दारा शिकोह एक सुन्दर सिंहलद्वीपी हाथी पर सवार होकर सेनाओं का उत्साह बढ़ाता शत्रु की तोपें छीनने को आगे बढ़ा। उधर शत्रु ने इतने गोले बरसाये कि मृतकों के ढेर लग गये। फिर भी दारा साहसपूर्वक बढ़ता ही गया। उसने बहुत चेष्टा की पर औरंगजेब के पास तक न पहुँच सका क्योंकि उधर के तोपखाने ने इनके सिपाहियों के छक्के छुड़ा दिये। परन्तु दारा ने साहस करके उनकी तोपों पर आक्रमण कर ही दिया। उनकी साँकल खोल डालीं और खेमों में घुस तोपचियों और पैदलों को रौंद डाला। इस अवसर पर इतना घमासान युद्ध हुआ कि लाशों के ढेर लग गये और तीरों से आसमान छा गया। परन्तु ये तीर व्यर्थ जाते थे। दस में नौ बेनिशाने पड़ते थे। जब तरकश ख़ाली होगये तो तलवार खटकीं। अन्त में शत्रुओं के सवार भाग खड़े हुए।

औरंगजेब भी निकट ही था। वह हाथी पर बैठा सेना को साहस दे रहा था। पर कोई सुनता न था। उसके एक हजार सवार बच रहे थे जो तेज़ी से काटे जा रहे थे। यह देख उसने सरदारों से कहा भाईयो! दक्खिन दूर है। उसने अपने हाथी के पैरों में साँकल डाल दी। यह देख सैनिक फिरे। दारा ने औरंगजेब पर छापा मारना चाहा, पर उसके सवार पंक्ति-बद्ध नहीं थे, धरती भी ऊबड़-खाबड़ थी अतः वह सफल नहीं होता था। इस समय औरंगजेब के सिर पर संकट आया। इतने ही में उसने देखा कि सेना के बायें भाग में बड़ी हलचल मची है। कुछ क्षण बाद ही समाचार मिला कि रुस्तमख़ाँ मारे गये और रामसिंह शत्रु-सेना में घिर गये।

अतएव वह औरंगजेब पर छापा मारने का विचार छोड़ बाँई ओर को भागा। उसके पहुँचने पर वहाँ लड़ाई का रंग बदल गया। शत्रु पीछे हटने लगे। वहाँ रामसिंह ने बड़ी वीरता प्रकट की थी। उसने मुरादबख्श को घायल कर दिया था और उसकी अमारी का रस्सा काट हौदे से गिराने की चेष्टा कर रहा था। पर वह भी वीरता से बचाव कर रहा था। वह फुर्ती से अपने आठ वर्ष के बच्चे को ढाल से बचा रहा था। अन्त में एक

तीर से उसने रामसिंह को मार गिराया। रामसिंह के मरते ही राजपूत जोश में आकर भिड़ गये। उन्होंने मुराद को घेर लिया। अब दारा भी इसमें पिल पड़ा। ऐसा करने से, औरंगजेब बचा जाता था, पर वह मुराद को भी छोड़ न सकता था। इस समय सरदार ख़लीलुल्ला ने विश्वासघात किया। वह दाहिने पक्ष का सरदार था, और उसके आधीन तीस हज़ार शिक्षित सवार थे। अकेला यही औरंगजेब के लिये काफ़ी था—पर उसने कुछ भी नहीं किया। उसने सैनिकों से कहा—हमें एक तीर भी छोड़ने की आवश्यकता नहीं। हम खास मौके पर काम आवेंगे। इस सरदार का एक बार दारा ने अपमान किया था, जिसका इस प्रकार बदला लिया।

परन्तु दारा ने उसकी सहायता के बिना ही विजय प्राप्त करली थी। परन्तु ऐन मौके पर उसने दारा को पुकार कर कहा—'मुबारिकबाद हज़रत-सलामत, अलहम्दुलिल्लाह, हुजूर को बख़ैर व सलामती बादशाही-फ़तह मुबारिक हो। अब हुजूर इतने बड़े हाथी पर क्यों सवार हैं, जबकि कई गोलियाँ व तीर अमारी के सायबान से पार हो चुके हैं। अगर ख़ुदा-ना-ख्वास्त कोई गोली या तीर जिस्मे-मुबारिक़ से छू जाय तो हम ग़ुलामों का कहाँ ठिकाना रहेगा। ख़ुदा के वास्ते जल्द उतरिये और घोड़े पर सवार हो लीजिये। अब क्या रह गया है सिर्फ चन्द भगोड़ों को रस्सी से बाँध करके पकड़ना है।'

अगर दारा यह समझ लेता कि इस बड़े हाथी ही की बदौलत उसे विजय प्राप्त हुई है, क्योंकि सैनिक उसे देखते रहे और हिम्मत बाँध रहे हैं तो वह विशाल साम्राज्य का स्वामी होता। पर घोड़े पर सवार होने पर उसे अपनी यह भूल मालूम हुई। वह बहुत बका-झका और कहने लगा कि मैं उसे जीता न छोड़ूँगा। पर अब कुछ नहीं हो सकता था। सिपाही हाथी को खाली देख कर समझ बैठे कि दारा मारा गया और उनमें खलबली मच गई। क्षण भर में माया उलट गई। दारा की फ़ौज में भगदड़ मच गई। सिर्फ़ पाव घण्टे हाथी पर चढ़कर औरङ्गजेब ने सल्तनत पाई और क्षण भर हाथी से उतर कर दारा ने पाई हुई विजय-लक्ष्मी को खो दिया।

खलीलुल्लाह वहाँ से हटकर औरङ्गजेब से जा मिला जो ईश्वरीय दत्त विजय को देखकर आश्चर्य कर रहा था। उसने ख़लीलुल्लाह को बहुत

से सब्ज़ बाग़ दिखाये और मुराद के पास ले जाकर उसे पेश किया और मुराद ही बादशाह है, यह भी प्रकट कर दिया।

अब औरंगजेब ने सब अमीरों को मीठे-मीठे पत्र लिखकर अपने आधीन किया। उसका मामा शाइस्ताख़ाँ इस काम में उसका मददगार था। दारा ने एक बार इसका अपमान किया था उसका बदला उसने अब इस भाँति लिया। औरंगजेब सब काम मुराद के नाम से करता और प्रकट करता कि वह बिलकुल बेलौस है।

दारा आगरे लौट गया। मगर वह बादशाह को मुँह न दिखा सका। पर बादशाह ने ख़बर सुन कर दारा को बहुत आश्वासन दिला भेजा और अपना प्रेम प्रकट किया, और यह भी कहा कि निराश न हो। सुलेमान शिकोह की सेना संगठित और व्यूहबद्ध है तुम तत्काल दिल्ली चले आओ। वहाँ के हाकिम को लिख दिया गया है। वह तुम्हें एक हज़ार हाथी, घोड़े देगा, कुछ धन भी देगा। तुम आगरे से दूर न जाना, बल्कि ऐसी जगह ठहरना जहाँ हमारे पत्र तुम्हें मिल सकें।

पर दारा इतना शोकाकुल था कि उसने कुछ उत्तर न दिया। उसने अपनी बहिन के पास कुछ सूचनाएँ भेजीं और आधी रात के समय अपनी स्त्री और बच्चों के तथा छोटे पुत्र सिफ़रशिकोह के साथ तीन चार सौ आदमी लेकर देहली को चल दिया।

अब औरंगजेब ने सुलेमान शिकोह की सेना में फूट के बीज बोये। उसने एक पत्र राजा जयसिंह और दिलेरख़ाँ को लिखा, इसका आशय यह था—

"दारा तो बिल्कुल तबाह हो गया। वह बड़ा लश्कर जिसका उसे भरोसा था शिकस्त खाकर हमारे क़ब्जे में आगया। अब वह ऐसी बे सरो-सामानी से भागा जारहा है कि सवारों का एक रिसाला भी साथ नहीं। हम उसे जल्द गिरफ्तार कर लेंगे। हज़रत बादशाह इस क़दर अलील हैं कि अब सिर्फ चन्द रोज़ के मेहमान हैं। इसलिये इस हालत में अगर तुम हमारा मुक़ाबला करोगे तो नतीजा बजुज़ ख़राबी और हलातक के कुछ न होगा। इसके सिवा इस अबतर हालत में दारा की तरफ़दारी करना महज़ नादानी है। तुम्हारे हक़ में यही बेहतर है कि हमारे पास हाज़िर हो जाओ और सुलेमान शिकोह को गिरफ्तार करके अपने साथ लेते आओ।"

जयसिंह यह पत्र पाकर चिन्ता में पड़ गये। वे राज परिवार के व्यक्ति पर हाथ उठाना ठीक न समझते थे। उन्होंने दिलेरख़ाँ से सलाह की और औरंगजेब के पत्र को लेकर सुलेमान के खेमे में गये। और पत्र दिखाकर कहा—

"जिस खतरनाक हालत में आप पड़ गये हैं मैं उसे आप से छिपाना मुनासिब नहीं समझता। स्थिति बदल गई। इस समय आपको न दिलेरख़ाँ पर भरोसा करना चाहिये न दाऊदख़ाँ पर और न फ़ौज ही पर। आप यदि इस वक्त अपने पिता की मदद को आगे बढ़ेंगे तो आप भी दुर्दशा में पड़ेंगे। अतः मुनासिब है कि श्रीनगर के पहाड़ों में चले जायें। वहाँ के राजा के यहाँ आपको आश्रय मिलेगा और वहाँ औरंगजेब भी न पहुँच सकेगा। वहाँ जाकर यहाँ के हालातों पर नज़र रखें और जब मौक़ा देखें चले आवे।"

यह सुनते ही शाहजादा समझ गया कि अब कोई मित्र नहीं रह गया। लाचार वह फ़ौज़ को वहीं छोड़ कर कुछ हितैषियों को साथ लेकर चल दिया। सेना जयसिंह और दिलेरख़ाँ के साथ रही। उसका बहुत सा क़ीमती सामान और मुहरों से लदा एक हाथी भी इन्होंने ले लिया। रास्ते में भी उसे देहात के लोगों ने बहुत कुछ दिया। ज्यों-त्यों करके वह श्रीनगर पहुँचा। वहाँ के राजा ने उसका सत्कार किया और आश्रय दिया। और कहा—जब तक आप यहाँ हैं मैं प्राण पण से आपके लिये हाज़िर हूँ।

इधर सब झगड़ों से निपट कर औरंगजेब ने आगरे से तीन मील दूर एक बाग़ में मुक़ाम किया और बादशाह को एक पत्र लिख कर एक अत्यन्त धूर्त और चालाक आदमी के हाथ भेजा। पत्र का विषय यह था—

"दारा शिकोह की कजराई और वेजा ख्यालात के बाइस से जो वाक़आत पेश आये हैं, उनके लिये औरंगजेब को बहुत ही रंज और अफ़सोस है। हुजूर की तबियत अब अच्छी होती जाती है इसलिये हुजूर की खिदमत में मुबारिकबाद अर्ज़ करने और महज़ इस ग़रज़ से कि जो कुछ इर्शाद हो उसकी तामील की जाय, वह आगरे में आया है।"

शाहजहाँ भी भारी राजनीतिज्ञ था। उसने सिर्फ़ यह जवाब ज़ुबानी

दिया "उसकी सआदतमन्दी और फ़र्मादितमन्दी से हम निहायत खुश हैं।" इसके बाद उसने पत्र में लिखा—

"दारा ने जो कुछ किया बेसमझी और नालायक़ी से पुर था। तुम पर तो हम इब्तदा ही से सफ़क्कत रखते हैं, बस तुमको जल्द हमारे पास आना चाहिये ताकि तुम्हारे मश्विरे से उन उमूर का इन्तज़ाम किया जाय ज़ो इस गड़बड़ की बाइस ख़राब और अबतर पड़े हैं।"

पर औरंगजेब एक ही काँइयाँ था, उसने क़िले में जाने का साहस न किया। उसे भय था कि वह अवश्य कैद कर दिया जायग़ा। अतः वह बार-बार आने के वादे करता रहा। उधर बड़े-बड़े सरदारों से बातचीत करता रहा। एक दिन उसके बड़े पुत्र मुहम्मद सुलतान ने सहसा क़िले पर अधिकार कर लिया। इससे सब लोग हक्के-बक्के होगये। यह काम बड़ी चालाकी से क़िया गया। बादशाह इस प्रकार कैद होकर मर्माहत हो गया और उसने मुहम्मद सुलतान को ख़त लिखा—

"मैं तख्त और कुरान मजीद की क़सम खाकर कहता हूँ कि अगर तुम इस वक्त ईमानदारी से बरतोगे तो तुम्हीं को बादशाह बना दूँगा। इस मौके को ग़नीमत जानो और दादा जान को क़ैद से छुड़ा लो। याद रखो कि इस सवाबे आखिरत के आलावा दुनिया में भी तुम्हें एक दायमी नेकनामी हासिल होगी।"

यदि मुहम्मद सुलतान जरा साहस करके बादशाह की बात मान लेता तो सब कुछ हो जाता। क्योंकि अब भी बादशाह पर लोगों की श्रद्धा थी, दारा के पतन के बाद यदि बादशाह स्वयं युद्ध को कमर कसता तो न तो औरंग-जेब ही उसके मुक़ाबले का साहस करता और न सरदार उसकी बात टालते। पर वह चतुराई के दाव पेच खेलना चाहता था और उसकी बड़ी बेटी का उसमें भारी हाथ था। अतः वह कुछ भी न कर सका। मुहम्मद सुलतान के भाग्य में भी ग्वालियर के क़िले में दिन काटने बदे थे।

अस्तु मुहम्मद सुलतान ने जवाब दिया, "मुझे हुज़र में हाज़िर होने का हुक्म नहीं है। बलिक ताकीदी हुक्म है कि यहाँ से जल्द क़िले के कुल दरवाज़ों की कुंजियाँ खुद अपनी सुपुर्दगी में लेकर जल्द वापस आऊँ क्योंकि वे हुज़ूर की क़दम बोसी के निहायत मुश्ताक़ हो रहे हैं।"

बादशाह दो दिन तक आगा पीछा सोचता रहा। धीरे-धीरे सब लोग उसे छोड़ छोड़ कर चले जा रहे थे। जब उसके निज के संरक्षकों ने भी उसे छोड़ दिया तो उसने चाबियाँ देदीं और कहला भेजा—

"अब समझदारी इसी में है कि औरंगजेब हम से आकर मिले। क्योंकि सल्तनत के बाज़ बहुत जरूरी इसरार हम उसे समझाना चाहते हैं।"

पर वह धूर्त अब भी न आया और तुरन्त एतबार खाँ नामक एक विश्वासी व्यक्ति को क़िलेदार नियुक्त करके भेज दिया, जिसने यहाँ पहुँचकर सब बेगमों, बड़ी राजकुमारी बेगम साहिबा और स्वयं बादशाह को भी कैद कर लिया और क़िले के कई दरवाजे एक दम बन्द करा दिये। शाहजहां के शुभचिन्तकों का आना-जाना और पत्र-व्यवहार कतई बन्द हो गया। और यह बिना क़िलेदार को सूचना भेजे कमरे से भी बाहर नहीं निकल सकता था।

अब औरंगजेब ने पर निकाले। उसने बादशाह को खत लिखा और सब को सुनाया। खत यह था—

"यह बेअदबी मुझसे इसलिये सरज़द हुई है कि हुजूर जाहिरा मेरी निस्बत इज़हारे-उल्फ़त व मिहरबानी फ़रमाते थे, और यह इर्शाद होता था कि दारा के तौर व तरीक़ों से हम सख्त नाराज़ हैं। मगर मुझे पुख्ता खबर मिली है कि हुजूर ने अशर्फ़ियों से लदे हुए दो हाथी उसके पास भेजे हैं कि जिनसे वह नई फ़ौज भर्ती करके खूँरेज लड़ाई को तवालत देगा। बस हुजूर ही ग़ौर फ़र्माएँ कि मुझसे इन हरकतों के—जो फ़र्जन्दों के मामूली तरीके के खिलाफ़ और सख्त मालूम होते हैं—सरजद हो जाने का बाइस क्या दारा शिकोह की खुदसरी नहीं है? इन बातों का सबब कि हुजूर क़ैद किये गये और मैं फ़र्जन्दाना खिदमत बजा लाने के लिये हुजूर की खिदमत में हाजिर न हो सका, क्या काफ़ी नहीं है? मैं हुजूर से इल्तजा करता हूँ कि मेरी इस हरकत की जाहिरी सूरत पर ख्याल न फ़र्माकर सिर्फ़ चन्द रोज बर्दाश्त करें। ज्योंही दारा हुजूर को और मुझे तकलीफ़ देने के क़ाबिल न रहेगा, मैं खुद क़िले की तरफ दौड़ा आऊँगा, और हुजूर के क़ैदखाने का दर्वाजा अपने हाथों खोल, हाथ जोड़कर अर्ज करूँगा कि अब कुछ रोक-टोक नहीं है।"

इस प्रकार कठोरतापूर्वक जब बादशाह कैद हो गया तो सब अमीर औरंगजेब को सलाम करने उसके दरबार में जा हाजिर हुए। किसी ने बेचारे वृद्ध बादशाह की नमकहलाली का ख्याल नहीं किया। इनमें बहुत से ऐसे थे, जो बादशाह के धन से प्रतिष्ठित और धनी हुए थे। कुछ को बादशाह ने ग़ुलामी से मुक्त करके उच्च पद दिये थे।

इस प्रकार दोनों भाई पिता का बन्दोबस्त कर, और अपने मामा शाइस्ताख़ाँ को आगरे की सूबेदारी सौंप, ख़जाने से ख़र्च का इन्तजाम कर, दारा की खोज में आगरे से रवाना हुए।

इस यात्रा का असल उद्देश्य कुछ और ही था। वह था मुराद का भुगतान करना। मुराद के हितैषी यह भेद पा गये थे, और उन्होंने मुराद से कहा भी कि अपने लश्कर-सहित आगरा-दिल्ली से दूर न जाइये। औरंगजेब दग़ा करेगा, जब वह खुद कहता है कि बादशाह आप हैं, तो फिर आपको क्यों राजधानी से दूर ले जाता है? उसी को दारा के पीछे जाने दें। पर वह क़ुरान की क़स्मों और प्रतिज्ञाओं के ऐसे फेर में पड़ा था कि उसकी बुद्धि में यह बात नहीं जमी।

दोनों ने कूच किया। जब मथुरा के पास पहुँचे तो औरंगजेब ने उसे अपने यहाँ भोजन का न्यौता दिया। मित्रों ने समझाया कि बीमारी का बहाना करके टाल जाय, पर उसने न माना। रात्रि को भोजन का सरंजाम था। औरंगजेब ने मीरखाँ आदि को ठीक-ठाक कर रखा था।

जब मुराद पहुँचा तो औरंगजेब ने बड़ी आवभगत की। अपने हाथ से उसके मुँह की गर्द-पसीना पोंछा। जब तक भोजन होता रहा, हँसी-मजाक की बातें होती रहीं। इसके बाद जब शराब के दौर चले, तो औरंगजेब ने उठते हुए मुस्कराकर कहा—

"हज़रत को मालूम है कि मैं अपने मजहबी ख़यालात के बाइस इस ऐशो-निशात की सोहबत में मौजूद नहीं रह सकता, ताहम ये लोग जो इस पुर-लुत्फ़ जलसे में शरीक हैं, मीर साहेब और दीगर मुसाहिब आपकी ख़िदमत गुज़ारी के लिये हाजिर रहेंगे।"

निदान, मुराद को इतनी शराब पिलाई गई कि वह बेहोश हो गया। तब उसके नौकर लोग भी विदा कर दिये गये और कह दिया गया कि अब

इन्हे यहाँ आराम करने दें। जब वह चले गये, तब उसके हथियार खोलकर कब्जे में कर लिये गये। इतने में औरंगजेब भी वहाँ आ गया, और सारा अदब-कायदा ताक में रख पाँच-सात ठोकर लगाईं और कहा—"तुम्हें शर्म नहीं आती—बादशाह होकर इतनी शराब पीते हो! लोग मुझे भी क्या कहेंगे, जो तुम्हें बादशाह बनाने में मदद देता है।" इसके बाद उसने अपने आदमियों से कहा—

"इस बदबख्त के हाथ-पाँव बाँध कर खिलवतखाने में ले जाओ, ताकि यह नशा उतरने तक वहीं बेशर्मी का सोना सोए।"

तुरन्त आदमी टूट पड़े। उस समय मुराद बहुत चीखा-चिल्लाया, मगर पुख्ता हथकड़ी-बेड़ियों से जकड़ दिया गया, और बन्द कर दिया। चीखना-चिल्लाना सुन, उसके सेवक दौड़े, पर उनको एक नमकहराम सरदार मीर आतिशअली खाँ ने रोक दिया, जिसे लालच देकर औरंगजेब ने पहले ही वश में कर लिया था।

यह घटना तत्काल ही लश्कर में फैल गई। औरंगजेब ने सब बड़े-बड़े सरदारों को बड़े-बड़े लालच देकर राजी कर लिया और मुराद को एक बन्द जनाना अम्बारी में दिल्ली भेजकर सलीमगढ़ में कैद कर दिया, जो उस समय जमना के बीचों-बीच टापू में था।

यह कर, वह दारा के पीछे दौड़ा, जो लाहौर को तेजी से जा रहा था और वहाँ किलेबन्दी कर सैन्य-संग्रह करना चाहता था। पर औरंगजेब इतनी तेजी से पीछे दौड़ा कि दारा को वहाँ किलेबन्दी का अवकाश न मिला, आर वह मुल्तान की ओर भाग गया। यद्यपि भयानक गर्मी पड़ रही थी, पर औरंगजेब की सेना रात-दिन कूच कर रही थी। वह स्वयं पाँच-छः कोस आगे चलता, सूखे टुकड़े खाता और जमीन पर लेटता था।

दारा ने यहाँ भी भूल की। यदि वह काबुल चला जाता, तो उसे बहुत-कुछ आशा थी। वहाँ प्राचीन सरदार महावतखाँ था, जो औरंगजेब का दोस्त भी न था। उसके आधीन दस हजार जबर्दस्त सेना थी। दारा के पास अब भी धन-रत्न की कमी न थी। वहाँ से ईरान और उजबक देश भी निकट थे, जहाँ से उसे बहुत सहायता मिल सकती थी। उसे इस ऐतिहासिक बात का खयाल करना उचित था कि जब शेरशाह ने हुमायूँ को

हराया था, तब ईरान के शाह ने ही उसकी सहायता की थी, जिससे राज्य-प्राप्ति हुई थी।

पर भाग्यवश उसने वहाँ न जाकर ठट्ठ के किले में आश्रय लिया। औरंगजेब ने जब देखा कि वह काबुल नहीं जा रहा है, तब उसका खटका मिट गया और वह मीर बाबा नामक धाय के बेटे के सुपुर्द आठ हज़ार सेना छोड़कर आगरे की ओर लौटा। उसे भय था जयसिंह या जसवन्तसिंह या सुलेमान शिकोह ही स्वयं आकर बादशाह को छुड़ा न ले, या शुजा ही न चढ़ाई कर बैठे।

अस्तु, ठट्ठ के दुर्ग में जा, दारा ने एक ख्वाजासरा को वहाँ का क़िलेदार नियत किया, और अपना सब खज़ाना वहाँ रखा, जो बहुत था। फिर वह तीन हज़ार सेना को साथ लेकर सिन्धु नदी के किनारे-किनारे कच्छ होता हुआ गुजरात पहुँचा और अहमदाबाद के बाहर डेरा डाल दिया। यहाँ शाहनेवाज़खाँ ने, जो औरङ्गजेब का श्वसुर था और किलेदार था—वह कोई योद्धा न था—किले के द्वार खोल दिये और सम्मान से दारा का सत्कार किया। दारा ने उसकी सरलता पर मुग्ध हो अपने सब गुप्त भेद उस पर प्रकट कर दिये।

औरंगजेब ने यह सुना, तो उसे चिन्ता हुई, क्योंकि अभी उसके बहुत शत्रु थे, और अहमदाबाद जैसी मजबूत जगह में उसके पाँव जमने उसे स्वीकार न थे। उसे भय था कि जयसिंह और जसवन्तसिंह भी उससे मिल जायेंगे। उधर उसने यह भी सुना कि भारी सेना लिये सुलतान शुजा दौड़ा चला आरहा है, और इलाहाबाद तक आ चुका है। उसे यह भी ख़बर मिली कि श्रीनगर के राजा की मदद से सुलेमान शिकोह भी तैयारी कर रहा है। सब विपत्तियों पर विचार कर, दारा का ध्यान छोड़, वह आगरे की राह छोड़ शुजा पर लपका, जो इलाहाबाद में गंगा के इस पार तक आ गया था। खजुआ नामक गाँव में दोनों सेनाएँ मिलीं। यहाँ मीर जुमला भी उससे बहुत-सी सेना-सहित आ मिला। युद्ध हुआ। इस युद्ध में जसवन्तसिंह ने जो औरंगजेब से आ मिले थे, सहसा पीछे से आक्रमण कर, उसका सारा ख़ज़ाना और माल लूट लिया। इससे औरंगजेब की कठिनाई बढ़ गई। सेना विचलित हो गई, पर वह विचलित नहीं हुआ। पर शुजा

ने उधर से भारी आक्रमण किया। एक तीर महावत की आँख में आ लगने से औरंगजेब का हाथी बेक़ाबू हो गया। वह हाथी से उतरने ही को था कि मीर जुमला ने कहा—"हज़रत, यह दकन नहीं है, क्या गजब करते हैं।" मीर जुमला के रण-कौशल का क्या ठिकाना था। सन्ध्या हो चली थी, लक्षण बुरे थे, पर मीर जुमला ने औरंगजेब को हाथी से न उतरने दिया।

औरंगजेब प्रतिक्षण शत्रु के चंगुल में फँसने की सोच रहा था। उधर शुजा शीघ्र उसे गिरफ्तार करने को हाथी से उतरा। बस, उसकी वही दशा हुई, जो दारा की हुई थी। उसके हाथी को ख़ाली देख सैनिकों ने उसके मरने का सन्देह किया और वे भाग निकले।

औरंगजेब की विजय देख, जसवन्तसिंह आगरे लौट आये। वहाँ यह ख़बर उड़ी कि औरंगजेब और मीर जुमला पकड़े गये, तथा शुजा आगरे की ओर बढ़ रहा है। शाइस्ताखाँ इन बातों से इतना घबराया कि विष पीने लगा, पर स्त्रियों ने प्याला उसके हाथ से छीन लिया। इस बीच में जसवन्तसिंह चेष्टा करते तो शाहजहाँ को क़ैद से छुड़ा सकते थे, पर वे स्थिति समझ और आगरे में ठहरना ठीक न समझ, मारवाड़ को लौट आये

उधर औरंगजेब सोच रहा था कि न जाने आगरे में जसवन्तसिंह ने क्या किया होगा। वह तेज़ी से लौट रहा था। पर उसने सुना—शुजा अब भी इलाहाबाद में पाँव जमा रहा है, उसके पास बहुत धन है, और वहाँ के राजा उसके सहायक हैं।

अब औरंगजेब को सिर्फ दो आदमियों पर भरोसा था। एक अपने पुत्र मुहम्मद सुलतान, दूसरे मीर जुमला पर। पर वह दोनों ही से भय खाता और सन्देह करता था। उसने दोनों को दूर करने का उपाय कर लिया। मीर जुमला को बड़ी सेना देकर शुजा पर भेजा और कहा—"बंगाल के ज़रखेज़ सूबे की हुकूमत आप और आपके ख़ानदान में रहेगी, और जब आप शुजा पर फ़तह पा लेंगे, तब अमीरुल-उमरा का सब से बड़ा ख़िताब भी आपको दिया जायगा।"

इसके बाद उसने मुहम्मद सुलतान से कहा—"बेटे, तुम मेरे सब से बड़े पुत्र हो, और अपने ही काम पर जाते हो। तुमने बड़े-बड़े काम किये हैं,

पर याद रक्खो, हमारे भारी बैरी शुजा को पकड़कर जब तक न ले आओ, सब काम अधूरे हैं।"

इसके बाद उसने दोनों को बहुत सी-भेंटे दीं। फिर उसने चालाकी से मुहम्मद सुल्तान की बेगमों और मीर जुमला के पुत्र मुहम्मद अमीन को रोक लिया।

हम कह चुके हैं कि मीर जुमला एक ही अद्‌भुत प्रतिभा का आदमी था। शुजा उसे रोकने की बड़ी-बड़ी मोरचेबन्दी कर रहा था। वह गंगा के घाटों को सावधानी से रोके हुए बैठा था। सहसा उसे समाचार मिला कि जो सेना आ रही है, वह तो दिखावा है—मीर जुमला तो आस-पास के राजाओं से सन्धि कर, राजमहल पहुँच भी गया और अब बंगाल की ओर इसके लौटने का मार्ग बन्द है। यह सुनकर शुजा हत्‌बुद्धि रह गया। वह बड़ी कठिनाइयों से मुँगेर और राजमहल के बीच पेचीले चक्कर की गंगा को उतर राजमहल पहुँचा और मीर जुमला से लोहा लिया, तथा पाँच दिन के युद्ध के बाद भाग खड़ा हुआ। वर्षा आ लगी थी। मीर जुमला वर्षा-ऋतु राजमहल में काटने को ठहर गया। मुहम्मद सुलतान भी उसके साथ था। शीघ्र ही दोनों में झगड़ा हो गया। मुहम्मद सुल्तान अपने को समस्त सेना का स्वामी और मीर जुमला को तुच्छ समझने लगा। यह ख़बर जब औरंगजेब को लगी तो बहुत नाराज़ हुआ। इस पर वह भय-भीत होकर चुपचाप यहाँ से चलकर शुजा से जा मिला। पर शुजा ने उस पर विश्वास ही न किया। तब वह बिगड़ कर वहाँ से भी चला और इधर-उधर घूमकर मीर जुमला से आ मिला। मीर जुमला ने उसे क्षमा करके रख लिया। पर बादशाह ने उसे दिल्ली आने का हुक्म दिया, और ज्यों ही वह गंगा के पार उतरा कि एक सैनिक टुकड़ी ने उसे गिरफ्तार कर लिया और एक बन्द अमारी में रखकर ग्वालियर दुर्ग में क़ैद कर दिया, जहाँ उसकी समस्त आयु व्यतीत हुई।

उधर जसवन्तसिंह ने लूट के धन से एक भारी सेना संग्रह कर, दारा को लिखा कि आप आगरे को कूँच कर दें, मैं राह में आपसे आ मिलूँगा। दारा ने भी भारी सेना संग्रह कर ली थी, और कूँच कर दिया। पर राजा जयसिंह ने समझा-बुझाकर जसवन्तसिंह को इस झमेले में पड़ने से रोक

दिया। उधर औरंगजेब ने दारा को अजमेर ही में जा रोका। फिर युद्ध हुआ। परन्तु फिर विश्वासघातियों और मूर्खताओं के कारण अन्त में उसे सब सामग्री छोड़, बाल-बच्चों सहित भागना पड़ा। इस युद्ध में दारा के साथ यहाँ तक दग़ा की गई कि तोपों में गोलों के स्थान पर बारूद की थैलियाँ भरकर छोड़ी गईं।

वह फिर अहमदाबाद को लौटा। अब खेमे तक उसके पास न थे। मार्ग में सब राजा उसके विपक्षी थे। भयानक गर्मी थी। भील लोग रात-दिन उसके पीछे लगे रहते और मौका पाकर लूट लेते थे। किसी तरह वह अहमदाबाद के निकट पहुँचा तो उसी के नियुक्त किये क़िलेदार ने उसे लिख भेजा—"क़िले के निकट न आइये, फाटक बन्द है और सेना शस्त्र सहित मुस्तैद खड़ी है।"

दारा की दुरवस्था का वर्णन प्रसिद्ध फ्रेंच डॉक्टर बरनियर इस भाँति करता है—

"इस समय मैं तीन दिन से दारा शिकोह के साथ था। मैं उसे अचानक मार्ग में मिल गया था। उसके साथ कोई वैद्य न था, इसलिये उसने मुझे ज़बर्दस्ती अपने साथ ले लिया था। अहमदाबाद के गवर्नर का पत्र पहुँचने से एक दिन पहले की बात है कि दारा ने मुझसे कहा कि 'कदाचित् आपको गोली मार डालें।' यह कहकर वह आग्रहपूर्वक मुझे अपने साथ उस कारवाँ में ले गया, जहाँ वह स्वयं ठहरा था। अब उसकी यह दशा थी कि एक खेमा तक उसके पास नहीं था। उसकी बेगम और स्त्रियाँ केवल एक क़नात की आड़ में थीं। क़नात की रस्सियाँ मेरी सवारी की बहली के पहियों से, जिसमें मैं सोया करता था, बाँधी गई थीं। जो लोग इस बात को जानते हैं कि भारतवर्ष के अमीर लोग अपनी स्त्रियों के पर्दे के विषय में कितनी अत्युक्ति करते हैं, वे मेरे इस कथन पर विश्वास न करेंगे। परन्तु मैंने इस घटना का हाल उस दुःखद अवस्था के प्रमाण में लिखा है, जिसमें दारा उस समय पड़ा हुआ था। अस्तु, उसी रात की पौ फटने के समय जब अहमदाबाद के हाक़िम का उक्त सन्देश आया, तब औरतों के रोने-चिल्लाने ने हम सब को रुला दिया। उस समय एक विलक्षण प्रकार की हैरानी और निराशा छा रही थी। सभी डर के मारे चुपचाप एक-दूसरे

के मुँह देखते थे ; कोई उपाय नहीं सूझता था ; कुछ नहीं मालूम था कि क्षण-भर में क्या हो जायगा। जब दारा शिकोह स्त्रियों से मिलकर क़नात के बाहर आया, तब मैंने देखा कि उसके मुख पर मुर्दनी-सी छा रही है। वह कभी इससे कुछ कहता है, कभी इससे कुछ बात करता है। एक साधारण सिपाही से भी पूछता है कि अब क्या करना चाहिए। जब उसने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति डरा और घबराया हुआ मालूम होता है, तब उसे विश्वास हो गया कि सम्भवतः अब इनमें से एक भी मेरा साथ न देगा। वह बड़ा ही हैरान था कि अब क्या होगा, किधर जाना चाहिए, यहाँ ठहरने से तो ख़राबी ही ख़राबी दीखती है।

"इस तीन दिन की अवधि में जब कि मैं दारा के साथ था, हम लोगों को रात-दिन बिना कहीं ठहरे हुए जाना पड़ा। गर्मी ऐसी प्रचण्ड थी, और धूल इतनी उड़ती थी कि दम घुटा जाता था। मेरी बहली के तीन बहुत सुन्दर और गुजराती बैलों में से एक मर चुका था, दूसरा मरने की दशा को पहुँच चुका था, और तीसरा इतना थक चुका था कि चल नहीं सकता था। यद्यपि दारा बहुत चाहता था कि मैं उसके साथ रहूँ, विशेषकर इस कारण से कि उसकी एक बेगम के पैर में बहुत बुरा घाव था, पर वह इस दुर्दशा को पहुँच गया था कि धमकाने और अनुनय-विनय करने पर भी किसी ने उसको मेरी सवारी के लिये कोई घोड़ा या बैल या ऊँट नहीं दिया। जब कोई सवारी नहीं मिली, तब लाचार होकर मैं पीछे रह गया। दारा को चार पाँच सौ सवारों के साथ जाते देखकर (क्योंकि घटते-घटते अब उसके साथ इतने ही सवार रह गये थे) मैं एकदम रो पड़ा। परन्तु अब तक भी दो हाथी उसके साथ थे, जिन पर लोग कहते थे कि रुपये और अशर्फ़ियाँ लदी हुई हैं। उस समय मैं समझा था कि दारा ठट्ठ की ओर जायगा। वर्त्तमान अवस्थाओं को देखते हुए यह उपाय कदाचित् बुरा नहीं था, पर वास्तविक बात तो ऐसी है कि इधर भी विपत्ति का सामना था और उधर भी। मुझे कदापि ऐसी आशा नहीं थी कि वह उस मरुस्थल से जो अहमदाबाद और ठट्ठा के बीच में है, कुशलपूर्वक बचकर निकल जायगा। हुआ भी ऐसा ही। उसके साथियों में से बहुत-सी स्त्रियाँ मर गईं, और पुरुषों पर तो ऐसी आपत्ति आई कि कुछ तो भूख-प्यास और थकावट से मर गये,

और अधिकांश को निर्दय कोलियों ने मार डाला। यदि ऐसी आपदाओं से भरी यात्रा में स्वयं दारा शिकोह मर जाता तो मैं उसे बड़ा ही भाग्यवान् समझता। पर सब प्रकार के कष्ट और विपत्ति सहता हुआ अन्त में वह कच्छ प्रान्त में पहुँच गया।

"यहाँ के राजा ने, जैसा कि चाहिये, बड़ी उत्तम रीति से उसका स्वागत किया और अपने यहाँ उसे स्थान दिया। पश्चात् उसने दारा से कहा कि यदि आप अपनी कन्या का विवाह मेरे पुत्र से करदें तो मैं अपनी सब सेना आपकी सहायता के लिये उपस्थित कर दूँ। परन्तु पीछे जिस प्रकार यशवन्तसिंह पर जयसिंह का जादू चल गया था, उसी प्रकार यहाँ भी हुआ। शीघ्र ही उसके भाव बदले हुए दिखाई दिये। जब कई बातों से दारा शिकोह ने देख लिया कि यह दुष्ट तो मेरे प्राण ही लेना चाहता है, तब वह तुरन्त वहाँ से ठट्ठ की ओर चल दिया।

"जिस समय दारा ठट्ठ की आपदापूर्ण यात्रा में लगा हुआ था, उस समय बंगाल में लड़ाई पहले की तरह हो रही थी। दारा शिकोह ठट्ठ के निकट पहुँच चुका था, और केवल दो ही तीन दिन का मार्ग बाक़ी था। मुझको उन फ्रांसीसियों और कई दूसरे यूरोपियनों से जो उस दुर्ग की सेना में थे, मालूम हुआ कि यहाँ पहुँचकर दारा को यह समाचार मिला कि मीर बाबा ने, जो बहुत दिनों से दुर्ग को घेरे हुए था, भीतरवालों को यहाँ तक तंग कर दिया है कि आध सेर माँस या चावल २।।) रुपये का मिलता है और दूसरी वस्तुएँ भी बहुत महँगी हैं, तो भी बहादुर क़िलेदार अब तक उसी प्रकार साहस किये हुए है, और वह प्रायः दुर्ग के बाहर निकलकर शत्रुओं पर आक्रमण करता है, और हर प्रकार की सचाई, वीरता और स्वामि-भक्ति से मीर बाबा के आक्रमणों को रोकता है। उसके इस प्रशंसनीय कार्य के विषय में वे योरोपियन भी, जो उसकी सेवा में थे, कहते थे कि सब सच है। उन्होंने मुझसे यह भी कहा कि जब उसको दारा के निकट आने का सम्वाद मिला, तब उसने और भी उत्साह दिखलाया और इस प्रकार सिपाहियों को अपने वश में कर लिया कि दुर्गवाले मीर बाबा का घिराव तोड़कर दारा को दुर्ग में जाने देने लिये वे अपने प्राण दे देने को तैयार हो गये।

"इसके अतिरिक्त उस साहसी सरदार ने और भी कई अच्छे उपायों से युक्ति-निपुण जासूसों को मीर बाबा की सेना में भेजकर घेरा करने वालों के मन में इस बात का विश्वास उत्पन्न कर दिया कि दारा एक बहुत बड़ी सेना के साथ घेरा तोड़ देने के लिये यहाँ आ रहा है, और अब शीघ्र पहुँचना चाहता है। उसने यहाँ तक कह डाला कि हम दारा और उसकी सेना को अपनी आँखों से देख आये हैं। यह युक्ति इतनी सफल हुई कि घेरे वालों के छक्के छूट गये। इसमें सन्देह नहीं कि यदि दारा उस समय जा पहुँचता तो मीर बाबा के लोग अवश्य तितर-बितर हो जाते। यह समझकर कि थोड़े-से आदमियों के साथ घेरे का तोड़ना असम्भव है, पहले तो उसका यह विचार हुआ कि सिन्धु नदी पार करके ईरान को चला जाय, परन्तु उसकी बेगम ने एक निर्बल और वाहियात सी बात कहकर उसका यह विचार भंग कर दिया। उसने कहा—'यदि आप ईरान जाने का विचार करेंगे तो खूब समझ लीजिए कि मुझको और मेरी बेटी दोनों को शाह ईरान की लौंडियाँ बनना पड़ेगा, जो ऐसी बेइज्जती है कि हमारे खानदान में किसी को गवारा न होगी।' इस बात को दारा शिकोह और बेगम दोनों भूल गये कि हुमायूँ जब ऐसी ही आपदाओं में पड़ कर ईरान गया था, और उसकी बेगम भी उसके साथ थी, जब उन दोनों के साथ कोई अनुचित व्यवहार नहीं हुआ था, बल्कि बहुत ही सम्मान और शिष्टाचार से वहाँ उनका स्वागत हुआ था। अस्तु इसी प्रकार विचार करते-करते दारा ने सोचा कि जीवनखाँ पठान के यहाँ जाना उचित होगा। वह एक प्रसिद्ध और बलवान सरदार है, और उसका स्थान भी कुछ बहुत दूर नहीं है। दारा के मन में जीवनखाँ की सहायता का ध्यान आने का कारण यह था कि उसके विद्रोह मचाने और दुष्टता करने के कारण शाहजहाँ ने दो बार उसे हाथी के पाँवों के नीचे कुचलवा डालने की आज्ञा दी थी। पर दोनों ही बार दारा के कहने-सुनने से वह छूट गया था। दारा का इस समय उसके पास जाने का मतलब यह था कि उससे कुछ सैनिक सहायता लेकर वह मीर बाबा को ठट्ठ के दुर्ग से हटा सके, और वह ख़जाने जो वहाँ के क़िलेदार के पास हैं, लेकर क़न्धार चला जाय और वहाँ से सहज ही में काबुल पहुँच जाय। उसे विश्वास था कि उसके वहाँ पहुँच जाने पर

काबुल का सूबेदार महाबतखाँ, जो एक बड़ा भारी अमीर था, और जिसे काबुल वाले बहुत मानते थे, बिना कुछ आगा-पीछा किये बड़े प्रेम से उसकी सहायता करने को तैयार होगा ; क्योंकि काबुल की सूबेदारी उसे इसी की मदद से मिली थी। दारा का यह विचार किसी प्रकार भी बुरा नहीं था, परन्तु उसकी स्त्रियाँ यह विचार सुनकर बहुत ही घबराईं। उन्होंने कहा कि जीवनखाँ के यहाँ जाना उचित नहीं है। बेगम और उसकी पुत्री सिफर शिकोह उसके पैरों में पड़ गईं और प्रार्थना करने लगीं कि आप उधर का विचार छोड़ दें। यह पठान एक प्रसिद्ध डाकू और लुटेरा है, ऐसे आदमी पर भरोसा करना अपनी मृत्यु को आप बुलाना है। उन्होंने यह भी समझाया कि ठट्ठ का घिराव उठा देने की कुछ ऐसी आवश्यकता भी नहीं है। इस लड़ाई-झगड़े में हाथ डाले बिना भी आप काबुल का मार्ग अवलम्बन कर सकते हैं। मीर बाबा भी ठट्ठ का घेरा छोड़कर आपका रास्ता नहीं रोकेगा। परन्तु दारा की उल्टी समझ सदा उसको सीधे मार्ग से भड़का देती थी। उसे उनकी बात बिल्कुल नहीं जँची। उसने कहा कि काबुल की यात्रा बहुत ही कठिन और भयानक है, और जिस व्यक्ति के मैंने प्राण बचाये हैं, वह इस समय मेरी सहायता अवश्य करेगा। आख़िर बहुत समझाने और प्रार्थना किये जाने पर भी वह काबुल न जाकर जीवनखाँ पठान के यहाँ चला गया। जीवनखाँ यह समझता रहा कि दारा के साथ बहुत बड़ी सेना आती होगी। यही समझकर उसने उसके साथ बड़े सम्मान का बर्ताव किया, उसके साथी सिपाहियों को सादर स्थान दिया, और उनके आराम के प्रबन्ध कर देने की अपने आदमियों को आज्ञा दी, परन्तु जब उसे मालूम हो गया कि दारा के साथ दो-तीन-सौ आदमियों से अधिक नहीं हैं, तब तुरन्त ही उसके भाव बदल गये। यह पता ही नहीं लगता कि औरङ्गजेब के कहने से अथवा स्वयं अपनी इच्छा से उसने ऐसा विश्वासघात किया, पर जान पड़ता है कि अशर्फियों के लदे हुए उन कई ख़च्चरों को देखकर उसे लालच आगया। उसने एक रात को बहुत से लड़ने-भिड़ने वाले आदमी इकट्ठा करके पहले तो दारा के सब रुपये-पैसे और स्त्रियों के आभूषण छीनकर अपने अधिकार में कर लिये, पीछे दारा शिकोह और सिफ़र शिकोह पर आक्रमण किया, और जिन लोगों ने उनको बचाना

चाहा, उन्हें मार डाला। इसके बाद दारा को बाँधकर उसनें एक हाथी पर बैठाया, और एक बधिक को इसलिये पीछे बैठा दिया कि यदि वह अथवा उसका कोई और आदमी कुछ भी हाथ-पाँव हिलावे, तो बधिक उसी क्षण उसकी समाप्ति कर दे। इस प्रकार अप्रतिष्ठा के साथ उसने दारा को लाकर ठट्ठ में मीर बाबा के सुपुर्द कर दिया। मीर बाबा ने आज्ञा दी कि इसे लाहौर होते हुए देहली ले जाओ।

"जब भाग्यहीन दारा देहली के निकट पहुँचा, तब औरङ्गजेब ने अपने दरबारियों से इस बात की राय ली कि ग्वालियर के दुर्ग में क़ैद करने से पहले उसे देहली में घुमाना चाहिए या नहीं? इस पर कुछ लोगों ने तो यह उत्तर दिया कि ऐसा करना उचित नहीं, क्योंकि प्रथम तो यह बात राज-कुटुम्ब की प्रतिष्ठा के विपरीत है, दूसरे इसमें बलवा हो जाने का डर है, और कुछ आश्चर्य नहीं कि लोग उसे छुड़ा लें। पर प्रायः लोगों की यह राय हुई कि उसे अवश्य एक बार नगर में घुमाया जाय—ताकि लोगों को भय हो, उन पर बादशाह का रोब छा जाय, तथा जिन लोगों को अभी तक उसके पकड़े जाने में सन्देह बना हुआ है, उनका सन्देह मिट जाय और उसके छिपे पक्षपातियों की आशायें भंग हो जायँ। अन्त में औरङ्गजेब ने भी इसी राय को उचित समझा और दारा को नगर में घुमाने की आज्ञा दी। अभागा दारा और उसका पुत्र सिफ़र शिकोह दोनों एक ही हाथी पर बैठाये गये और बधिक की जगह बहादुरखाँ को बैठाकर नगर-पर्यटन कराया गया। परन्तु वह सिंहल द्वीप का पेरू का हाथी नहीं था, जिस पर दारा बहुत बढ़िया सामग्रियों से सजकर बैठा करता था, और बहुमूल्य झूल तथा सैनिक आभूषणों से ढका रहता था; यह एक बहुत सड़ियल और गन्दा जानवर था। स्वयं उसके गले में भी वह बड़े-बड़े मोतियों की माला, शरीर पर वह ज़रबफ्त का क़बा और सिर पर वह पगड़ी नहीं थी, जा भारतवर्ष के बादशाह और उनके कुमार पहना करते हैं। इन वस्तुओं के स्थान में पिता-पुत्र बहुत ही मोटे वस्त्र पहने थे। इसी दशा में दोनों शहर-भर के बाजारों में फिराये गये। उनकी दशा देखकर मुझे भय होता था कि कहीं खून-ख़राबी न हो जाय। आश्चर्य है कि ऐसे राजकुमार के साथ, जो लोगों का प्रिय था, ऐसा बर्ताव करने का दरबारियों को कैसे साहस

हुआ ? यह और भी आश्चर्य की बात है कि बचाव के लिये कुछ सेना भी साथ में नहीं भेजी गई थी ; विशेषकर ऐसी अवस्था में जबकि औरङ्गजेब के अनुचित काम देखकर सब लोग कुछ दिनों से उससे रुष्ट हो रहे थे ।

"इस अविचार का तमाशा देखने को बड़ी भीड़ जमा थी । स्थान-स्थान पर खड़े होकर लोग दारा के दुर्भाग्य पर हाथ मल रहे थे । मैं भी नगर के सबसे बड़े बाज़ार में एक अच्छे स्थान पर अपने दो मित्रों तथा सेवकों के साथ बढ़िया घोड़े पर चढ़ा खड़ा था । सब ओर से रोने-चिल्लाने के शब्द सुन पड़ते थे । स्त्री, पुरुष और बच्चे इस प्रकार चिल्लाते थे, मानों उन पर बहुत ही भयानक विपत्ति पड़ी हो । दुष्ट जीवनखाँ घोड़े पर दारा के साथ था । चारों ओर से उस पर गालियों की बौछार पड़ रही थी ; बल्कि कई एक फकीरों और ग़रीब आदमियों ने उस पाजी पठान पर पत्थर भी फेंके । परन्तु राजकुमार के छुड़ाने का साहस किसी को न हुआ ।

"जब सवारी देहली के नगर में सर्वत्र घूम चुकी, तब अभागा क़ैदी अपने आप ही एक बाग़ में, जिसका नाम हैदराबाद था क़ैद कर दिया गया । परन्तु उसके नगर में घुमाये जाने का सर्व-साधारण पर कैसा बुरा असर पड़ा, लोग जीवनखाँ पर कैसे क्रुद्ध हुए, किस प्रकार पत्थर मार-मारकर कुछ लोगों ने उसे मार डालना चाहा, और किस रीति से विद्रोह मच जाने के लक्षण दिखाई दिये, यह सब औरङ्गजेब ने शीघ्र सुन लिया । एक सभा की गयी—और राय ली गयी कि पहले सोचे हुए उपाय के अनुसार, क़ैदी को ग्वालियर भेज देना चाहिये या वध कर डालना चाहिये । इस पर किसी-किसी की तो यह सम्मति हुई कि वध कर डालने की इस समय कुछ विशेष आवश्यकता नहीं है । यदि पहरे और रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध हो सके तो उसे ग्वालियर भेज दिया जाय । दानिशमन्दखाँ ने भी यही सलाह दी कि वह ग्वालियर भेजा जाय । परन्तु अन्त में अधिक लोगों की राय से यही निश्चित हुआ कि उसका वध किया जाय और उसके पुत्र सिफर शिकोह को ग्वालियर भेज दिया जाय । इस अवसर पर रोशनआरा बेगम ने भी अपना हार्दिक वैर अच्छी तरह प्रकट किया । वह बराबर दानिशमन्दखाँ की राय को रोकती, और औरङ्गजेब को यह अमानुषिक कार्य करने के लिये

उभारती रही। खलीलुल्लाखाँ और शाइस्ताखाँ भी, जो दारा के पुराने शत्रु थे, इसी बात पर विशेष ज़ोर देते थे और तकर्रुबखाँ नामक ईरानी ने भी, जिसका नाम पहले हकीम दाऊद था, जो किसी कारण विशेष से भारतवर्ष में भागकर चला आया था, जो बड़ा खुशामदी था, और अभी थोड़े दिनों में साधारण अवस्था से उच्च अवस्था को प्राप्त हुआ था, इन दोनों का विकट पक्षपात किया। उसने इन सब से बढ़कर कड़ी बातें कहीं और कठोर शब्दों में कड़ककर कहा कि—'दारा शिकोह को ज़िन्दा छोड़ना हरगिज़ मुनासिब नहीं है। सल्तनत की सलामती और हिफ़ाज़त इसी में है कि फौरन उसकी गर्दन मारी जाये। मुझे तो उसके क़त्ल की सलाह देने में ज़रा भी ताम्मुल नहीं होता, क्योंकि वह बेदीन और काफ़िर है। और अगर ऐसे शख़्श के क़त्ल से कुछ गुनाह आयद होता हो तो वह मेरी गर्दन पर हो।' ईश्वरेच्छा देखिये कि जैसा उसके मुँह से निकाला था, हुआ भी वैसा ही, अर्थात् इस अविचार के रक्तपात का फल उसी को मिला; बहुत शीघ्र बहुत दुर्दशा के साथ मारा गया।

"निदान, इस अन्याय और निर्दयतापूर्ण रक्तपात के लिये नज़ीर नामक एक ग़ुलाम, जो शाहजहाँ के यहाँ पला था और किसी कारण से दारा से असन्तुष्ट था, चुना गया। एक दिन विष खिलाये जाने के भय से दारा और सिफ़र शिकोह बैठे अपने हाथ से दाल बना रहे थे, कि सहसा नज़ीरखाँ चार दूसरे दुष्टों को लिये हुए उन दोनों के निकट जा पहुँचा। उसे देखते ही दारा ने सिफ़र शिकोह से कहा कि 'लो बेटा, हमारे क़ातिल आ गये।' यह कहकर उसने रसोई घर की एक छोटी छुरी उठा ली, क्योंकि वहाँ और कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं था; परन्तु उन बधिकों में से एक ने तो सिफ़र शिकोह को पकड़ लिया और शेष सब उस पर टूट पड़े। उन्होंने उसको भूमि पर पटक दिया और नज़ीर उसका सिर काटकर तुरन्त औरङ्ग-जेब के पास ले गया।

"औरङ्गजेब ने वह कटा हुआ सिर एक बर्तन में रखकर उसके मुख पर का रक्त धुलवाया। जब उसे निश्चय हो गया कि यह दारा ही का सिर है, तब उसके आँसू निकल पड़े और एक बार "ऐ बदबख्त!" कहकर वह बोला—'अच्छा, इस दर्दङ्गेज सूरत को मेरे सामने से ले जाकर हुमायूँ के

मक़बरे में दफन कर दो।' अब दारा के कुटुम्ब का हाल सुनिये। उसकी पुत्री तो उसी रात महल में भेज दी गयी, जो कुछ दिन बाद शाहजहाँ और बेगम साहब (जहाँनारा बेगम) की प्रार्थना से उनके सुपुर्द की गई और उसकी बेगम ने पहले ही यह सोचकर कि हमको दुःखों का पहाड़ उठाना पड़ेगा, मार्ग ही में लाहौर में विष खाकर अपने प्राणों का अन्त कर दिया। रहा सिफ़र शिकोह—वह ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया, जहाँ क़ैद किया गया। (दारा शिकोह का सिर २२ वीं अक्तूबर १६५६ को काटा गया था।)

"इस लोमहर्षक घटना के बाद जीवनखाँ तुरन्त दरबार में बुलाया गया और कुछ इनाम आदि देकर विदा कर दिया गया। परन्तु यह दुष्ट भी अपनी क्रूरता का फल पाये बिना न रहा। अर्थात् जिस समय यह देहली से लौटकर ऐसे स्थान में पहुँच गया था—जहाँ से उसका देश उससे दस-बारह कोस ही रह गया था, कि कुछ मनुष्यों ने जो पहले से घात लगाये जंगल में बैठे थे—उसे घेर कर मार डाला।

"दारा का पुत्र सुलेमान शिकोह श्रीनगर के राजा के यहाँ छिप गया। था। परन्तु राजा को जब बहुत धमकाया गया, तो वह भयभीत हो गया। वह बलपूर्वक पकड़कर दिल्ली लाया गया। जब बादशाह के सामने सुनहरी हथकड़ी पहनाकर लाया गया तो उसके सुन्दर शरीर को घायल और बेबस देखकर दरबारी रोने लगे। औरङ्गजेब ने दुःख और सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—

'खुदा पर नजर और इत्मीनान रखो कि तुम्हें कुछ ज़रर न पहुँचाया जायगा। बल्कि तुम्हारे साथ मेहरबानी की जायगी। तुम्हारा बाप तो सिर्फ़ इसलिये क़त्ल किया गया था कि वह काफिर था।' इस पर सुलेमान ने हाथ ऊँचाकर और झुककर बादशाह को सलाम किया और कहा—'अगर हुजूर की मन्शा है कि मुझे पोस्त पिलाया जाया करे, बहतर है कि मैं अभी क़त्ल कर दिया जाऊँ।' इस पर बादशाह ने पोस्त न पिलाने की प्रतिज्ञा की और फिर उसे ग्वालियर के क़िले में क़ैद कर दिया गया।"

मुराद अभी क़ैद में था, पर उसके प्रशंसक अभी बहुत थे। बादशाह उस काँटे को भी एक-दम काट डालना चाहता था। एक दिन एक सैयद

के पुत्रों ने आकर नालिश की कि मुराद ने उनके पिता को क़त्ल करा डाला है, सो उसका सिर मिलना चाहिए। इसका किसी ने विरोध न किया, और मुराद के सिर काट लेने की आज्ञा दे दी गई।

अब शुजा रह गया। उसे मीर जुमला ने किसी योग्य न छोड़ा था। औरङ्गजेब बराबर उसकी मदद में सेना भेज रहा था। अन्त में वह ढाके की ओर भाग गया, जो समुद्र के किनारे बंगाल का अन्तिम नगर है। अब कहाँ जाय? सो उसने अराकान के राजा की शरण ली। राजा ने उसे आश्रय दिया, पर जहाज़ न दिया। अब भी उसके पास बहुत धन था। शुजा को भय हुआ कि कहीं मैं लूटा न जाऊँ। राजा ने उससे प्रस्ताव भी किया कि वह अपनी लड़की उसे ब्याह दे, पर शुजा ने न स्वीकार किया। उल्टे उसने एक षड्यन्त्र रचा, जिसमें बहुत-से पुर्तगीज़ लुटेरे और राजा के रिश्तेदार भी सम्मिलित थे। इसका अभिप्राय यह था कि महल पर आक्रमण करके राजा और उसके परिवार को क़त्ल कर दिया जाय। पर भेद खुल गया और उसने पेगू को भाग जाना चाहा, पर रास्ता ऐसा विकट था कि यह सम्भव न हो सका। अतः वह परिवार सहित पकड़ा गया और मार डाला गया। उसकी लड़की से राजा ने विवाह कर लिया। शेष परिवार के लोग क़ैद कर दिये गये। पर उसके पुत्र सुलतान बाक़ी ने फिर षड्यन्त्र रचा और फिर भण्डा-फोड़ हुआ। इस बार शुजा का परिवार-भर क़त्ल कर दिया गया, जिसमें वह लड़की भी थी, जिसे राजा ने विवाहा था, तथा जो गर्भवती थी। सब के सिर कुल्हाड़े से काटे गये।

इस प्रकार छः वर्ष के अन्दर यह मुग़ल-परिवार की आग बुझी और अब अकेला औरङ्गजेब बिना प्रतिद्वन्दी के महान् साम्राज्य और सत्ता का स्वामी था!

बादशाह की तख्तनशीनी का वर्णन बर्नियर इस भाँति करता है—

"उस दिन बादशाह दीवान-ए-ख़ास में तख़्त-ताऊस पर बैठा था। उसके कपड़े बहुत ही सुन्दर और फूलदार रेशम के बने हुए थे और उन पर बहुत अच्छा ज़री का काम किया हुआ था। सिर पर ज़री का एक मन्दोल था, जिस पर बड़े-बड़े बहुमूल्य हीरों का तुर्रा लगा हुआ था। उसमें एक पुखराज ऐसा था, जो बेजोड़ कहा जा सकता है। वह सूर्य के समान चमकता

था। उसके गले में बड़े-बड़े मोतियों का एक कण्ठा था, जो हिन्दुओं की माला की तरह पेट पर लटकता था। छः सोने के पायों पर यह तख्त बना है। कहते हैं कि यह बिल्कुल ठोस है और इसमें याक़ूत और कई प्रकार के हीरे जड़े हुए हैं। मैं उनकी गिनती और मूल्य निश्चित नहीं कर सकता, क्योंकि इसके निकट जाने की किसी को आज्ञा नहीं है। इससे कोई क़ीमत आदि का पता नहीं लगा सकता, पर विश्वास किया जाय कि इसमें हीरे और जवाहरात बहुत हैं।

"मुझे याद है कि इसका मूल्य चार करोड़ रुपया आँका गया था! यह तख्त शाहजहाँ ने इसलिये बनाया था कि ख़जाने में पुराने राजाओं और पठानों से लूटे हुए और अमीर-उमरा से नजर में आये हुये जो जवाहरात इकट्ठे हो गये थे, उन्हें लगा देखे। उसकी बनावट और कारीगरी भी उसके जवाहरातों के समान ही है। दो मोर तो मोतियों और जवाहरात से बिल्कुल जड़े हुए हैं। इसको एक फ्रांसीसी कारीगर ने आश्चर्यजनक रीति से बनाया था।

"तख्त के नीचे की चौकी पर चाँदी का कटहरा लगा था। ऊपर जरी की झालर का एक बड़ा चँदुआ टँगा था। उमरा बहुमूल्य वस्त्र पहने खड़े थे, और रेशमी चँदुए, जिनमें रेशम और ज़री के फुँदने लगे हुये थे, इतने थे कि गिनती नहीं। बहुत बढ़िया रेशमी क़ालीन बिछे हुये थे। बाहर एक बड़ा भारी खम्भा था, जो सहन में आधी दूर तक फैला था और चाँदी की पत्तियों में मँढ़े हुए कटहरों से घिरा था।

"इस खेमे के बाहर की ओर लाल रंग का कपड़ा लगा था और भीतर मछलीपट्टम की सुन्दर छींट थी, जो अति उत्तम तथा प्राकृतिक मालूम देती थी। अमीरों को आज्ञा थी कि वे आमखास के चारों ओर की महराबें अपने-अपने ख़र्च से सजावें। इसके फलस्वरूप सादी दीवारें कमख़ाब और ज़री से ढक गई थीं और जमीन बहुमूल्य कालीनों से भर गई थी।"

---

## : १४ :

# औरङ्गजेब

सब तरफ़ से निष्कंटक होकर यह व्यक्ति सन् १६६५ में गद्दी पर बैठा। इस समय आठ दिन तक प्रत्येक प्रसिद्ध नागरिक और सब अमीर-उमराओं ने नज़र गुज़ारी। वह यह जानता था कि उसके पारिवारिक अत्याचार के कारण सब लोग उससे बदजन हैं, इसलिए उसने अमन-अमान क़ायम करने की चेष्टा की। जिन्होंने उसकी मदद की थी, उन्हें भारी इनाम दिये गये। राजा जयसिंह को साँभर का इलाक़ा दिया गया। अन्य उमराओं को भी इलाके दिये गये। ख़ास-ख़ास व्यक्तियों की तनख्वाहें बढ़ाई गईं। अमीरों को जवाहरात की जड़ी तलवारें, एक-एक हाथी और एक-एक घोड़ा दिया गया। इससे बहुत लोग उसकी वाह-वाही करने लगे।

जश्न के अन्त में उसने पाँच सौ क़ैदियों का, जो जेल में थे, सिर कटवा लिया, जिससे सब डरें। यह रस्म क़दम-रसूल नामक मस्जिद के सामने अदा की गई, जो लाहौरी दरवाजे से कोई डेढ़ मील दूर दक्षिण-पश्चिम में थी।

चिराग़देहली में इसका दरबार था। उसने पुराने हाकिमों को बदल कर नये ओहदेदार बनाये। बहुत-से हुक्म मतलब के भी दिये गये। इस प्रकार आस-पास उसने सब प्रबन्ध ठीक कर लिया।

तख्त पर बैठते ही इसने शराब के विरुद्ध खूब आन्दोलन किया। वह जानता था कि देश में शराब की खूब बिक्री थी—जहाँगीर के जमाने से ही इसका प्रचार बढ़ गया था। शाहजहाँ के जमाने में भी दारा की देखा-देखी लोग उसे खूब पीने लगे थे। शाहजहाँ ने प्रजा के आनन्द में विशेष दखल

नहीं दिया। इसने एक बार जोश में आकर कहा—"तमाम हिंदुस्तान में सिर्फ़ दो व्यक्ति हैं, जो शराब नहीं पीते—एक मैं, दूसरे क़ाजी अब्दुल-वहाब," परन्तु सच कहा जाय, तो दोनों ही चुपचाप शराब पीते थे। इसने हुक्म दिया कि तमाम ईसाई डॉक्टर शहर को छोड़कर तोपखाने के वान के पास चले जायें, जो शहर से एक फ़र्लांग के फ़ासले पर था। वहाँ उन्हें शराब खींचने और पीने की आज्ञा थी, परन्तु अन्यों को बेचने की मनाही थी। फिर इसने कोतवाल को हुक्म दिया कि शराब बेचने वालों का एक-एक हाथ और एक-एक कान काट लिया जाय। कोतवाल यद्यपि पूरा शराबी था, पर वह मुस्तैदी से इस हुक्म की तामील में लग गया।

थोड़े ही दिन में शराब-फरोशी बन्द हो गई। परन्तु धीरे-धीरे वह फिर जारी होने लगी, और अमीर लोग चुपचाप शराब खींचने लगे।

इसी तरह उसने भंग और अफ़ीम के विरुद्ध भी खूब सख्ती की। इसके लिये खास अफ़सर नियुक्त किया। उसे हुक्म था कि वह इन सब नशों का रिवाज उठा दे। पर यह सख्ती भी धीरे-धीरे कम हो गई।

इसके बाद उसने हुक्म दिया कि कोई मुसलमान चार अँगुल से ज्यादा दाढ़ी न रक्खे। इसके लिए एक अफ़सर नियुक्त किया, जो अपने सिपाहियों के साथ लोगों की दाढ़ी नापे, और जिसकी दाढ़ी बड़ी देखे, उसे काट दे, तथा मूँछों को काटकर साफ़ कर दे। यह अफ़सर भी बड़ी मुस्तैदी से कैंची-पैमाना लिये फिरा करता था। इस अफ़सर को देखते ही मजा यह होता था कि बहुत-से लोग अपने-अपने मुँह ढाँप लेते थे कि वह उनकी दाढ़ी न काटले।

उसने गाने-बजाने के विरुद्ध भी हुक्म दिया कि जहाँ गाने-बजाने की आवाज़ आवे, घुसकर बाजों को तोड़ डालो। इस पर कुछ गवैयों ने मिलकर एक तरकीब की। जब बादशाह जुमे की नमाज को जा रहा था, तब कोई पाँच हजार आदमी बीस-पच्चीस जनाजे बनाकर खूब रोते-पीटते-चिल्लाते उधर से निकले। बादशाह ने देखकर पूछा—"यह क्या है?" तब उन्होंने हाजिर होकर कहा—"हुज़ूर, मौसीकी मर गई है, उसी का यह जनाजा है।" बादशाह ने हुक्म दिया—"उसे इतना गहरा गाड़ो कि फिर न निकल सके।"

अब उसने रंडियों की शादी करने का हुक्म दिया। शाहजहाँ के ज़माने में, इनकी बड़ी वृद्धि होगई थी। जो रंडी शादी न करती थी, उसे देश-निकाले की सज़ा थी। इससे शीघ्र ही रंडियों के मुहल्ले उजाड़ होगये।

महावत लोग मुग़ल-दरबार के नियम के अनुसार हाथियों को दरबार में सलामी के लिये लाते थे। तब वे यह शरारत किया करते थे कि बाज़ार में उन्हें भड़का देते थे, जिससे वे दुकानों को तोड़ते-फोड़ते तथा आदमियों को कुचलते चलते थे; ख़ासकर उन लोगों से, जिनसे उन्हें द्वेष हो, वे खूब बदला लेते थे। बादशाह ने पूछा—"हाथी खुद दीवाना हो जाता है, या दीवाना कर दिया जाना भी मुमकिन है?"

महावतों ने उसका मतलब न समझा, और जवाब दिया—"जहाँप-नाह, हाथी को जब चाहें, कुछ दवाइयाँ खिलाकर मस्त बनाया जा सकता है।" इस पर बादशाह ने हुक्म दिया कि महावतों से लिखवा लिखा जाय कि यदि कोई हाथी किसी का नुक़सान करेगा, तो उसका हरजाना महावत से लिया जायगा।

हम पहले कह चुके हैं कि मुग़ल-सल्तनत में फ़कीरों की दुष्टता का बड़ा ज़ोर था। ये लोग दुष्ट, ज़िद्दी तथा गुस्ताख़ होते थे। सब लोग इनसे डरते थे। ये लोगों को अन्धविश्वासों में खूब फँसाते थे। जब लोग इनके पास जाते, कुछ-न-कुछ चढ़ावा साथ में ले जाते थे। गंडे-तावीज़ देते तथा औरतों को मौक़ा पाकर फुसलाते थे। इनके पास सैकड़ों दासियाँ और कुटनियाँ होती थीं; जो बड़े घर की स्त्रियों को फुसलाया करती थीं, और इधर-उधर की ख़बरें उन्हें देती थीं, जिन्हें बताकर ये पाखंडी औलिया बन जाते थे। इस बादशाह ने यद्यपि इनका कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया, पर उन बारह औलियाओं को सज़ा दी, जिन्होंने दारा के बादशाह होने की भविष्य-वाणी की थी। उन्हें बुलाकर उसने कहा—"कोई करामात दिखाओ। इसके लिए मैं तीन दिन की मुहलत देता हूँ।" यह सुनकर वे घबराये। वे जानते थे कि यह मखौल नहीं है, इनमें से दो ने तो फौरन कह दिया कि हम बलख के निवासी हैं, हम खुदा को छोड़कर और कुछ नहीं जानते। बाक़ी बेचारों ने बहुत से जिन्नात को जगाया, कुर्बानियाँ कीं; पर उन्हें बादशाह ने बुलवाया और कहा कि या तो कोई करामात दिखलाओ, वर्ना कोड़े लगवाये जायँगे,

तो वे चुप रहे। परिणाम यह हुआ कि कुछ को भिन्न-भिन्न क़िलों में क़ैद कर दिया गया, और कुछ को देश से निकाल दिया। इनमें से एक प्रसिद्ध औलिया की गर्दन भी काटी गई। इसका नाम शाह सैयद सरमद था। ये एक ईश्वरवादी साधु थे। एक जौहरी के पुत्रअमीचन्द से उन्हें प्रेम होगया था। उसी आवेश में ये उसे ख़ुदा कहा करते थे। ये बहुधा नंगे रहते थे। उस ज़माने में क़बी नाम का दिल्ली का क़ाज़ी था। उसने औरङ्गजेब से शिकायत की कि सरमद नाम का एक शख़्स शहर में नंगा फिरता है; वह कल्मा नहीं पढ़ता, और अमीचन्द को ख़ुदा कहता है। औरङ्गजेब ने तुरन्त सिपाहियों द्वारा उसे गिरफ्तार कराया और अपने दरबार में बुलाया। उनकी जो बातें हुईं, वह 'मुन्तखेबुल-नफ़ाइस' नामक फ़ारसी की किताब में इस तरह दर्ज हैं—

औरङ्गजेब—ख़ुदायत कीस्त ऐ सरमद दरीं दहर (तेरा ख़ुदा कौन है ऐ सरमद इस आलम में)?

सरमद—नमीं दानम अमीचन्दस्त या ग़ैर (मैं नहीं जानता कि अमीचन्द के सिवा कोई और है)।

औ०—सरमद! जामा चिरा नम पोशी (ऐ सरमद! कपड़े क्यों नहीं पहनता)?

सरमद—**आँकस कि तुरा मुल्को जहाँदानी दाद।**
**मारा हमाँ अस्बाबे परेशानी दाद॥**
**पोशां लिबास-हर किरा-ऐबे दीद।**
**बे एबाराँ लिबासे उरियानी दाद॥**

(जिस शख़्स ने तुझे मुल्क और बादशाहत दी और मुझको तमाम सामान परेशानी के दिये, उसी शख़्स ने उसको लिबास पहिनाया, जिसमें कि ऐब देखा और बेऐबों को नंगेपन का लिबास दिया)।

औ०—सरमद, कल्मा चिरंग न मे खांदी (सरमद, कल्मा क्यों नहीं पढ़ता)?

सरमद—चुगूनाँ ख़ुआनम के वर मन पवीस्त शैताँ (किस तरह पढ़ें, क्योंकि मेरा शैतान ज़बरदस्त है)।

बादशाह इस बातचीत से बहुत नाराज़ हुआ। उसने हुक्म दिया कि यदि वह अपने विचार न बदले तो इसकी गर्दन काट ली जाय। तमाम दरबारियों ने समझाया कि वह इन तीन बातों से तौबा करले। लेकिन सरमद ने साफ़ कह दिया कि मैं अपने में कोई ऐब या चोरी-कपट नहीं देखता कि तौबा करूँ। मेरा आत्मविश्वास मेरे साथ है, और वह पवित्र है, जो किसी के मार्ग में बाधा नहीं डालता। मैं तौबा नहीं करूँगा।

उसके बाद जल्लाद को बुलाया गया। उस ज़माने में जल्लाद सुर्ख़ पोशाक में आया करते थे। सरमद ने जल्लाद को सुर्ख़ कपड़ों में आते देखा तो बहुत हँसा और मौज में आकर उसने यह शेर पढ़ा—

**बहर रंगे के ख्वाही जामा मे पोश।**
**मन अज़ ज़ेबाए क़द्दत मे शनासम।**

(जिस रंग के तेरा जी चाहे कपड़े पहन ले, मैं तो तेरे क़द की ख़ूबसूरती से तुझे पहचानता हूँ।)

निदान, जल्लाद ने बढ़कर एक हाथ मारा और उसकी गर्दन से सिर अलग होगया। कहते हैं गर्दन बजाय ज़मीन पर गिरने के एक नेजा ऊँची हो गई और उस वक्त भी एक शेर उसके मुँह से निकला—

**सर जुदा कर्द अज़ तनम् शोखे कि बामा यार बूद।**
**क़िस्सा कोताह गश्त वरना दर्द-सर में बिसियार बूद।**

(सर मेरा उस माशूक़ ने जुदा किया, जो मेरा बहुत दोस्त था। चलो, क़िस्सा ख़तम हुआ, वरना बड़ी सिर-दर्दी थी।)

मुसलमानी किताबों में आलिमों ने इस काम को अच्छी नज़र से नहीं देखा। मुसलमान अब तक सैयद सरमद के औलिया होने के क़ायल हैं। उनका मजार दिल्ली में पूर्वी दरवाजे की तरफ़ जामा-मस्जिद के सामने हरे-भरे पीर के पास ही है, जहाँ आज तक हिन्दू-मुसलमान उनकी ज़ियारत करते हैं। किसी मुसलमान शायर ने यह शेर भी लिखा है—

**सर कटा है जब से सरमद का।**
**तख्त नाराज़ हो गया है हिन्दू का।**

अकबर ने एक नियम बनाया था, और अब तक जारी था—कि जब कोई आदमी शाही दण्ड से डरकर भाग आता था, और मुग़ल-राज्य में आश्रय ढूँढ़ता था, तो उस पर निगरानी की जाती थी। इसके लिये गुप्त-चर नियुक्त होते थे, जो भिन्न-भिन्न पेशे वाले होते थे। ये लोग भी बहुत-सी ख़बरें देते थे। इनकी बदौलत बादशाह सब बातों का पता लगाते थे। औरङ्गजेब ने इस विभाग को खूब उन्नत किया था।

औरङ्गजेब ने इस बात की चेष्टा की कि लोगों के दिल में शाहजहाँ की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाय, और इसकी इज्जत बढ़ जाय। वह बहुधा शाह-जहाँ के प्रयत्नों पर नुक़ता-चीनी किया करता था। इसमें कुछ बातें ख़ास थीं—जैसे मीनाबाजार खोलना, नौकर-चाकरों को बिगाड़ना, वजीरों को मुँह लगाना आदि।

जो हिन्दू राजा उसके दरबार में आते, उनके साथ बादशाह ऊपर से अच्छा सुलूक करता था, और उन्हें यथा-शक्ति कुछ देता था। पर जब जरा भी उसे शंका होती कि इनसे हानि होगी, वह चुपचाप उनका सिर कटवा लेता था।

बादशाह के गद्दी पर बैठते ही भिन्न-भिन्न देशों के बादशाहों ने उसके पास भेंटें और दूत भेजने शुरू कर दिये। सबसे प्रथम उजबक-जाति के तातारी बादशाह ने मुबारिकबादी देने को एलची भेजे। वे जब दरबार में आये, तब शाही दर्बारी रीति से तीन बार कोर्निश करके आदाब बजाया और ख़रीता पेश किया, जिसे बादशाह ने एक अमीर के द्वारा लिया। उसे पढ़कर उसने उन्हें खिलअत दी, और फिर नज़र पेश करने का हुक्म दिया। इनमें थे लाजवर्द के बने हुए कई उम्दा सन्दूक, लम्बे-लम्बे बालों वाले कई ऊँट, कुछ सुन्दर तुर्की घोड़े, कई ऊँट ताजे फलों—जैसे अंगूर, सेब, नाशपातियों से लदे हुए, कई ऊँट सूखे मेवों—जैसे आलूबुखारा, खुबानी, काले-सफेद अत्यन्त स्वादिष्ट अंगूर, किशमिश आदि से लदे हुए, आदि-आदि।

बादशाह इन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुआ, और तोहफ़े की बहुत-बहुत तारीफें कीं। ये एलची चार महीने दिल्ली में रहे। सबका खर्च बादशाह ने दिया। अन्त में सबको सिरोपाह आठ-आठ हजार रुपये नक़द,

और उनके मालिकों के लिये बहुमूल्य कारचोबी के थान, तनजेब और मलमल के इलाहचिये, क़ालीन, जड़ाऊ मूठ के खञ्जर आदि भेजे।

इसके बाद डचों ने भी अपना एलची भेजा। उसने प्रथम शाही ढंग पर आदाबगाह पर तसलीमात अर्ज़ की, और फिर नज़दीक आकर अपने देश के ढंग पर सलाम किया। बादशाह ने ख़रीता अमीर-द्वारा लेकर पढ़ा और नज़रों को देखा। उनमें कुछ तो लाल और हरे रङ्ग की बानात के बढ़िया थान थे, कुछ बड़े-बड़े आईने थे, कुछ चीन और जापान की बनी हुई चीजें थीं, जिनमें एक पालकीनुमा सिंहासन बहुत सुन्दर था। इसे कुछ दिन दरबार में रख, बहुत-कुछ इनाम-इकरार दे विदा किया गया।

इसके बाद एक ही साथ पाँच एलची आये। एक मक्के से आया था, जो कई अरबी घोड़े और एक झाड़ू लाया था, जो काबे में झाड़ने के काम आ चुकी थी। दूसरा यमन के बादशाह का था, तीसरा बसरे के हाकिम का। ये लोग भी भेंट में अरबी घोड़े लाये थे। दो एलची अन्य दो देशों के बादशाहों ने भेजे थे, इनके सामान बहुत सामान्य थे, और इनका सत्कार भी साधारण ही हुआ।

इसके बाद ईरान के बादशाह का एलची आया और इसका स्वागत बड़ी धूम-धाम से हुआ। तमाम बाज़ार सजाये गये, और तीस मील तक पंक्तिबद्ध सवार खड़े किये गये। उसको तोपख़ाने से सलामी उतारी गई। उसने ईरानी रीति पर बादशाह को सलाम किया, तथा बादशाह ने उसके हाथ से ख़रीता अमीर के द्वारा न लेकर अपने हाथों में आदर से लिया, और पढ़ा। फिर सिरोपाव दिये। भेंट की वस्तुओं में पच्चीस ऐसे सुन्दर घोड़े थे, जैसे हिन्दुस्तान में कभी न देखे गये थे। हाथी के बराबर बड़े-बड़े बीस ऊँट थे। गुलाब और वेदमुश्क के जल से भरे हुए बहुत-से सन्दूक, पाँच-छः बड़े-बड़े क़ालीन, कई बहुत ही बढ़िया कारचोबी के थान, जड़ाऊ मूठ के दमिश्क़ के बने चार खञ्जर, चार जड़ाऊ तलवारें, पाँच-छः घोड़ों के बहुत ही सुन्दर और बहुमूल्य साज़, जिन पर मोतियों और फ़ीरोजों का बहुत बढ़िया काम हो रहा था।

बादशाह इन भेंटों से बहुत प्रसन्न हुआ, और एलची को चार-पाँच महीने दरबार में रखा, उसे उमरा में स्थान दिया, और बहुत सम्मान से

विदा किया। इस बादशाह के पास अपना ख़ास एलची भेजकर भेंट भेजने का बादशाह ने मंसूबा ज़ाहिर किया।

यद्यपि उसने शाहजहाँ को बड़ी मुस्तैदी से क़ैद कर रखा था, और ज़रा भी इसकी तरफ़ से बेख़बर न था, पर ऊपर से उससे बहुत अदब और सम्मान का बर्ताव करता था। उसे उन शाही महलों में रहने की आज्ञा दे दी गई थी, जिनमें वह पहले रहा करता था। उसकी पुत्री जहाँ-आरा उसके पास रहती थी। महल की और औरतें भी, जैसे नाचने-गाने-वाली, खाना बनानेवाली भी उसके पास रहती थीं।

अब शाहजहाँ को ईश्वर-भक्ति की भी चाट लगी थी। कई मुल्ला भी उसके पास जाकर धर्म-पुस्तकें सुनाया करते थे। घोड़े, बाघ आदि कई प्रकार के शिकारी जानवरों के मँगाने और हिरनों तथा मेंढ़ों की लड़ाई की भी परवानगी मिल गई थी। इस प्रकार वह हर तरह से बूढ़े बादशाह की दिलजोई करता था। वह अधिकता से उसके पास भेंट की चीजें भेजता रहता था, और राजनीति के विषय में उसकी सलाह लेता रहता था। उसके पत्रों से जो वह समय-समय पर लिखता रहता था, श्रद्धा और आज्ञाकारिता टपकती थी। इन बातों से शाहजहाँ का क्रोध ठण्डा पड़ गया, और वह औरंगजेब से पत्र-व्यवहार करने लगा। दाराशिकोह की पुत्री को भी उसके पास भेज दिया गया था। शाहजहाँ ने उन रत्नों को भी स्वयं उसके पास पहुँचा दिया, जिनके विषय में पहले उसने कहा था कि यदि माँगोगे, तो इनको कूटकर चूर-चूर कर दूँगा। अन्त में उसने विद्रोही पुत्र को क्षमा कर दिया और उसके लिये ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

परन्तु वास्तव में औरङ्गजेब के मन में चोर तो बना ही था और वह भीतर से चाक-चौबन्द बना रहता था।

इसी बीच औरङ्गजेब बीमार पड़ा। उसे बार-बार ज्वर चढ़ता था, और वह बेहोश होजाता था। वैद्य-हकीम निराश हो गये, और दरबार में घबराहट फैल गई। यह अफ़वाह फैल गई कि बादशाह मर गया है। यह भी अफ़वाह ज़ोर कर गई कि महाराज जसवन्तसिंह और महावतख़ाँ शाहजहाँ को क़ैद से छुड़ाने की चिन्ता कर रहे हैं।

यह घटना घटते ही सुलतान मुअज्जम ने अमीरों को घूँस दे-देकर

अपने पक्ष में कर लिया। यहाँ तक कि एक दिन उसने रात को राजा जयसिंह के पास जाकर बहुत-कुछ ख़ुशामद-दरामद की। इधर रोशनआरा बेगम ने भी बहुत-से अमीरों को मिला लिया, जिनमें तोपख़ाने का प्रधान अधिकारी फ़िदाअली मीर आतिश भी था। उसकी चेष्टा अकबर को गद्दी पर बैठाने की थी, जिसकी अवस्था सात आठ वर्ष ही की थी।

पर सब लोग जानते थे कि शाहजहाँ को क़ैद से बाहर निकालना क्रुद्ध शेर को बाहर निकालना है। सब दरबारी उसके छूटने की चिन्ता से घबरा रहे थे। सबसे अधिक भय एतबारखाँ को था, जो अकारण क़ैदी बादशाह से निर्दयता का व्यवहार करता था।

औरङ्गजेब बीमारी की हालत में भी इधर से बेख़बर नहीं था। होश में आते ही वह शहज़ादा मुअज्जम को कहता कि यदि मैं मर जाऊँ तो बादशाह को क़ैद से छुड़ा लेना, पर एतबारखाँ को बार-बार लिखता था कि ख़बरदार, अपने काम में मुस्तैद रहना। बीमारी के पाँचवें दिन बादशाह ने साहस करके कहा—"हमको दर्बार ले चलो।" इसका अभिप्राय यह था कि उसके मरने की जो अफ़वाह फ़ैली हुई है, वह मिट जाय। इस प्रकार वह उसी दशा में, सातवें, नवें और दसवें दिन भी दरबार में गया, और कुछ बड़े-बड़े अमीरों को पास बुला भेजा। इसके बाद वह स्वस्थ होने लगा। स्वस्थ होने पर उसने दारा की पुत्री को शाहजहाँ के यहाँ से मँगाकर अपने बेटे अकबर से उसकी शादी करने की इच्छा प्रकट की, पर शाहजहाँ और शहजादी ने घृणापूर्वक इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

आरोग्य-लाभ होने पर हकीमों ने उसे जलवायु बदलने काश्मीर जाने की सलाह दी। पर वह डरता था कि कहीं बुड्ढा शाहजहाँ फिर गद्दी पर न बैठ जाय। उसने क़ैद की सख्तियाँ बढ़ा दीं। उसने वह खिड़की भी बन्द करवा दी, जो जमना की तरफ़ थी और जिसमें शाहजहाँ बाहर का नज़ारा देखता और हवा खाता था। उसने खिड़की के नीचे बन्दूकची नियत कर दिये थे कि यदि शाहजहाँ उधर को झुके तो गोली मार दें। यहाँ का सब सामान भी उठा लिया गया। पर शाहजहाँ चुपचाप सब सह गया। वह खूब नाच-रंग और गाने-बजाने में मस्त रहने का ढोंग करने लगा। औरङ्गजेब ने यह सुनकर उसे ज़हर देने का इरादा किया और मुकरमख़ाँ

को इस काम के लिये लिखा, जो शाहजहाँ का हकीम और भक्त था। उसे बादशाह ने लिख दिया कि जो चीज़ ख़्वाजासरा फ़हीम आपको देगा, वह शाहजहाँ को खिला दें, वरना ज़िन्दगी से हाथ धो लीजिये। उसने जवाब दिया—बादशाह ने जो हुक्म दिया है, मैं उससे ज्यादा अच्छा काम करूँगा। मेरे लिये यह उचित नहीं कि जिसने विश्वास करके अपना शरीर मुझे सुपुर्द किया है, उसीसे दग़ा करूँ। यह सोच, उसने स्वयं जहर खा लिया ; और मर गया। औरङ्गजेब ने यह सुना तो लज्जित हुआ, और बादशाह को मारने के दूसरे उपाय सोचने लगा। पर गर्मी निकट आगई थी, और उसे काश्मीर जाना जरूरी था।

अन्त में बादशाह ने काश्मीर की यात्रा की। इस यात्रा में दो लाख आदमी उसके साथ थे। पाठक इस यात्रा के व्यय का अनुमान कर सकते हैं। दो वर्ष में बादशाह इस यात्रा से लौटा। परन्तु एक दिन के लिये भी बादशाह के नित्य-नियमित दरबार आदि में अन्तर नहीं आया।

आठ वर्ष क़ैद में रहकर शाहजहाँ की मृत्यु हुई। पिता के मरने का ढोंगी औरंगजेब ने बड़ा शोक किया। वह तुरन्त आगरे आया। वहाँ पहुँचने पर उसकी बहन जहाँआरा ने उसका बड़ी धूम-धाम से स्वागत किया। कमख्वाब के थान लटकाकर बादशाही मस्जिद सजाई गई—और इसी प्रकार वह मकान भी, जहाँ औरङ्गजेब का इरादा ठहरने का था। औरङ्गजेब महल में पहुँचा तो शाहजादी ने एक बड़ा-सा सोने का थाल जवाहरात से भर कर बादशाह की नजर किया। उसका यह सत्कार देखकर औरङ्गजेब का मन भी पसीज गया और उसने बहन की सब पुरानी बातें भुलादीं, और कृपा तथा उदारता का व्यवहार उसके साथ किया।

शाहजहाँ के मरते ही उसने जेहाद की तलवार उठाई। सर्वप्रथम उसने सब हिन्दू अफ़सरों को पदच्युत कर दिया, जिससे प्रबन्ध में एक अन्धेरगर्दी मच गई। इसके बाद उसने काशी पहुँचकर पण्डितों को हुक्म दिया कि वे सब प्रकार का पठन-पाठन बन्द करदें। इसके बाद उसने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मन्दिरों को ढहा कर उनके स्थानों पर मस्जिदें बनादीं। मथुरा में जाकर उसने सब बड़े-बड़े मन्दिर ढहा दिये, हजारों मनुष्य क़त्ल करा दिये। उसने फिर सभी प्रान्तों के हाकिमों को फ़र्मान भेज दिये कि सब

मन्दिर ढहा दिये जायँ, मूर्तियाँ तोड़ दी जायँ, और सब प्रकार के हिन्दुओं की पाठशाला बन्द कर दी जायँ ।

फिर वह कुरुक्षेत्र के मेले में पहुँचा, और लाखों मनुष्यों को अकारण क़त्ल करा डाला। इन सब बातों से राज्य भर में अशान्ति और विद्रोह फैल गया। प्रबन्ध तो प्रथम ही गड़बड़ हो गया था। नारनौल में सत्यनामी साधुओं ने विद्रोह खड़ा कर दिया, जो एक वर्ष में दबाया जा सका, और उसमें बहुत सी मुग़ल-सेना नष्ट हुई।

इन सब बातों से चिढ़कर और राज्य कोष के खाली हो जाने के कारण उसने प्रजा पर 'जजिया' का टैक्स लगा दिया, और देशी राज्यों के राजाओं को भी वह टैक्स वसूल करने की आज्ञाएँ भेजीं।

जब-जब बादशाह जुम्मे की नमाज़ पढ़ने आता, प्रजा बार-बार एकत्र होकर उससे कुछ अर्ज करने के लिये उपस्थित हुई। सामने आने पर औरङ्गजेब ने उसे हाथियों से कुचलवा देने का हुक्म दे दिया, जिससे भीतर ही भीतर प्रजा दहकने लगी।

जहाँ औरङ्गजेब ने इतने प्रबल शत्रु चारों तरफ़ पैदा कर लिये थे, वहाँ वह अपने मित्रों और सहायकों को भी सन्देह और भय की दृष्टि से देखता रहा। उसने जिस प्रकार अपने वंश का मूलोच्छेद किया, यह पाठक देख चुके हैं। फिर उसने अपने ख़ास वीर पुत्र को आजन्म ग्वालियर के दुर्ग में क़ैद कर दिया, यह भी पाठक देख चुके हैं। अपने वीर और प्रबल सामन्त जयसिंह और जसवन्तसिंह को भी उसने ज़हर खिलाया।

उसे मीरजुमला का भय सदा बना रहता था। वह बंगाल में निष्कंटक राज्य कर रहा था। पर उसने उसे खाली न बैठने दिया और आसाम पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। उसका मतलब यही था कि वह दूरस्थ और अपरिचित देश में जाकर मरे। उसके बाल-बच्चे उसने अब तक भी अपने क़ाबू में रख छोड़े थे। इस मुहिम से वह बहुत-सी जान-माल की हानि कराकर लौटा और उसका स्वास्थ्य इतना गिर गया कि वह बंगाल लौटने के कुछ दिन बाद ही मर गया। उसके मरने की सूचना पाकर उसने मीरजुमला के पुत्र से कहा—"तुम अपने स्नेही पिता के लिये शोक करते हो, और मैं अपने शक्तिशाली और अति भयानक मित्र के लिये दुःखित हूँ।"

राणा से सन्धि होने के बाद बादशाह ने अपनी समस्त शक्ति दक्षिण-विजय पर लगादी। वह अन्त में स्वयं भारी सेना लेकर दक्षिण पर चढ़ चला, और चौबीस वर्ष तक मरहठों से टक्कर लेता रहा। उसे फिर दिल्ली देखनी नसीब न हुई। मरहठों ने समस्त दक्षिण पर अधिकार कर लिया। साथ ही मुग़लों के भी बहुत से प्रान्त जीत लिये। इससे इसका दिल डूब गया, और वह वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ।

शाइस्ताखाँ ने इस समय बादशाह को बहुत सहायता दी थी। उसी की बदौलत वह उच्च-पद पर पहुँचा था। उसे खगुआ के युद्ध से प्रथम आगरे का सूबेदार नियत किया गया। फिर वह दक्षिण का सूबेदार बनाया गया। फिर मीरजुमला की मृत्यु के बाद उसे बंगाल का हाकिम बना दिया गया। अमीर-उमरा की पदवी उसे प्रदान की गई और अराकान के भयानक डाकू राजा से निरन्तर लड़ने और उद्दण्ड पुर्तगीज लुटेरों से टक्कर लेने को छोड़ दिया गया। शाइस्ताखाँ ने बड़ी हिम्मत, मुस्तैदी और वीरता से इन डाकुओं को वश में किया, और बंगाल के निचले प्रदेशों को निष्कंटक कर दिया।

बादशाह ने अपने बड़े पुत्र को तो ग्वालियर के क़िले में घुल-घुलकर मरने को डाल दिया था। एक बार छोटे बेटे मुअज्ज़क को भी शिकार के बहाने ऐसे ख़तरे में भेज दिया, जहाँ से वह बड़ी ही बहादुरी से जान बचाकर आया। इस पर औरङ्गजेब ने उसे दक्षिण का सूबेदार बनाकर वहाँ भेज दिया।

महावतखाँ, जो प्राचीन योद्धा था और जिसने शाहजहाँ पर बड़े-बड़े एहसान किये थे, क़ाबुल से बुला लिया गया। उसने बहुत-सी क़ीमती भेंट शाहजादी रोशनआरा को तथा सोलह हज़ार अशर्फ़ियाँ और बहुत-से ईरानी ऊँट तथा घोड़े बादशाह को भेंट किये। इस पर बादशाह कुछ सन्तुष्ट हुआ, और उसे दक्षिण भेज दिया। इसके सिवा अमीरखाँ को क़ाबुल, ख़लीलुल्लाह को लाहौर, मीरबाबा को इलाहाबाद, ज़ुल्फ़िक़ारखाँ को खगुआ भेज दिया। फ़ाजिलखाँ, जिसकी योग्य सलाहों से बादशाह को बहुत लाभ हुआ था, प्रधान ख़ानसामाँ बनाया गया। देहली की सूबेदारी दानिशमन्दखाँ को दी गयी। दयानतखाँ को काश्मीर की सूबेदारी दी गई।

इस प्रकार समस्त हिन्दू-सरदार बेदखल हो गये थे। इन सब कारणों से इस बादशाह के समय में हिन्दुस्तान में तीन प्रबल विजयिनी हिन्दू-शक्तियाँ उदय हो गईं। दक्षिण में मराठे, जिनका नायक शिवाजी था, पच्छिम में सिक्ख, जिसके नायक गुरु गोविंदसिंह थे, और राजपूताने में राजपूत, जिनके नायक मेवाड़ के अधिपति थे।

जिस समय औरङ्गजेब तख्त पर बैठा, उस समय मुग़ल-साम्राज्य का आदि-अन्त न था। यदि यह कहें कि उस समय संसार भर में ऐसा प्रबल साम्राज्य न था, तो अत्युक्ति नहीं। पर यह साम्राज्य औरङ्गजेब के पूर्वजों ने हिन्दू राजाओं के सहयोग से और हिन्दू प्रजा को प्रसन्न करके संगठित किया था। वे जानते थे कि कोई भी जाति बल या घृणा से कभी क़ब्जे में नहीं आ सकती। औरङ्गजेब के पूर्वजों ने पठानों की सैकड़ों वर्ष की विफल और अथक चेष्टा का परिणाम देख लिया था और वे समझ गये थे कि साम्राज्य की स्थापना में प्रजा का कितना हाथ रहना आवश्यक है। औरङ्ग-जेब एक तत्पर, तीव्र-बुद्धि, चौकन्ना और भयानक परिश्रमी बादशाह था। किसी खुशामदी का उसके सामने मुँह खोलने का साहस न होता था। उसने शुरू से ही इस्लाम की आड़ लेने की नीति पर काम किया था। यदि वह ऐसा न करता तो जो कुकर्म उसने राज्य-प्राप्ति के लिये किये उनमें वह सफल न होता। पर इस सफलता का कुछ भी महत्व न रहा, क्योंकि, उसके राज्य के स्तम्भ—वे राजपूत और हिन्दू शीघ्र ही उसके विरोधी हो गये, और उन्हीं ने स्वतन्त्र शक्ति का संगठन करना प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि भारतीय तेज मर गया था, वीरत्व सो गया था और समाज पराधीनता की कीचड़ में डूबा पड़ा था; पृथ्वीराज की-सी अजेय सत्ता नहीं रही थी, समरसिंह से जूझ मरने वाले मर चुके थे, प्रताप-जैसे नर-केशरी भी समाप्त हो चुके थे; परन्तु अवसर ने फिर वीरत्व को उदय किया।

शिवाजी दक्षिण में एक अवतार होकर जन्मे। वे एक वीर, साहसी, निष्ठावान और प्रकृत-योद्धा थे। सोलह वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने कुछ मित्रों को संग ले, घोड़े पर सवार हो, आस-पास के गाँवों को लूटना आरम्भ कर दिया। ये गाँव बीजापुर के शाह के थे। शाह ने अफ़जलखाँ को भेजा।

यह एक विकरालकाय योद्धा था और छल से शिवाजी को क़त्ल किया चाहता था, पर शिवाजी ने ही उसे मार डाला।

यह उस समय की घटना है, जब औरङ्गजेब दक्षिण का सूबेदार था। शिवाजी को उस समय औरङ्गजेब ने उत्तेजना दी, क्योंकि वह बीजापुर की हानि में प्रसन्न था। शिवाजी ने शीघ्र ही कोंकण प्रदेश जीत लिया।

जब औरङ्गजेब पिता के विरुद्ध आगरे पर चढ़ने लगा तो उसने शिवाजी से भी सहायता चाही। पर शिवाजी ने उसके इस नीच काम का खूब तिरस्कार किया, और उसके पुत्र को कुत्ते की पूँछ से बँधवा दिया। बस, वहीं से औरङ्गजेब के हृदय में बैर का बीज बैठ गया। उधर औरङ्गजेब गद्दी पर बैठा और इधर चतुर शिवाजी ने बीजापुर वालों से सन्धि कर ली।

अब उसने मुग़ल प्रान्तों पर आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये। उन दिनों दक्षिण में मुग़ल सूबेदार नवाब शाइस्तखाँ था। औरङ्गजेब ने उसे शिवाजी का दमन करने का हुक्म भेज दिया।

शाइस्ताखाँ एक बड़ी सेना लेकर शिवाजी पर टूट पड़ा। उसने कोंकण-प्रदेश के सभी किले कब्जे में कर लिये। फिर उसने पूना पहुँचकर उस भवन को भी अधिकार में ले लिया, जिसमें शिवाजी का जन्म हुआ था। शिवाजी चुपचाप तमाशा देखते और अवसर ताकते रहे। एक दिन अकस्मात् शिवाजी रात को शाइस्ताखाँ के घर में जा धमके। जब वे जनानख़ाने में पहुँचकर तलवार चलाने लगे, तब स्त्रियों ने नवाब को जगाया। वह हक्का-बक्का हो गया, और खिड़की से कूदकर भागा। फिर भी उसकी उँगलियाँ कट गईं, और पुत्र मारा गया। सेवक भी काट डाले गये। इस घटना से शाइस्ताखाँ ऐसा भयभीत हुआ कि सीधा दिल्ली चला आया। इसके बाद शिवाजी ने सूरत नगर को लूट लिया, जो दक्षिण में मुग़लों का समृद्धिशाली बन्दरगाह था। यहाँ शिवाजी को अटूट सम्पदा मिली, जिससे कोंकण की सारी कसर निकल गई।

इसके बाद रायगढ़ लौटकर उन्होंने राजा की उपाधि ग्रहण की। इस उत्सव में शिवाजो ने लगभग पाँच करोड़ रुपया व्यय किया। अब उनके नाम का सिक्का चलने लगा।

इस प्रकार मुग़लों के प्रबल प्रताप के बीच यह छत्रपति उभरने लगा।

इन समाचारों को पाकर औरङ्गजेब ने महाराज जयसिंह और सेनापति दिलेरखाँ को एक बड़ी सेना लेकर भेजा। जयसिंह ने बहुत समझा-बुझाकर शिवाजी को सन्धि पर राजी कर लिया। सन्धि की शर्तें दिल्ली भेजी गईं। बादशाह ने भी उन्हें स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने बादशाह की तरफ़ से बीजापुर से युद्ध किया, और बादशाह का निमन्त्रण पाकर अपने पुत्र शम्भाजी, पाँच सौ सवार और एक हज़ार मालवी सैन्य के साथ दिल्ली को प्रस्थान किया।

परन्तु औरङ्गजेब ने इस प्रतापी पुरुष का दरबार में सम्मानन हीं किया, इससे रुष्ट होकर वे वहाँ से लौट आये। इस पर बादशाह ने इन्हें क़ैद कर लिया। पर शिवाजी वहाँ से कौशल से निकल भागे। औरङ्गजेब ने उनकी राजा की उपाधि स्वीकार कर ली, और जागीर भी दे दी। अब उन्होंने दक्षिण लौटकर बीजापुर और गोलकुण्डा के नवाबों से युद्ध करके विजय प्राप्त की, और कर ग्रहण किया। उन्होंने दक्षिण में खूब राज्य-विस्तार किया। विवश बादशाह ने महावतखाँ को चालीस हज़ार सैन्य लेकर दक्षिण को भेजा। पर इस सैन्य ने पूरी हार खाई। इसमें बाईस सेनापति मारे गये, शेष क़ैद कर लिये गये। यह शिवाजी का प्रथम सम्मुख-युद्ध था।

इसके बाद शिवाजी ने विजयोत्सव किया, और राज्य-विधान में संशोधन किये। उपाधियाँ फ़ारसी-संस्कृत में नियत कीं, सिक्कों में सुधार किया। नर्वदा से कृष्णा नदी पर्यन्त का सारा दक्षिण-भारत उन्हीं के आधीन था। यह महावीर सैंतालीस वर्ष की अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ। उस की मृत्यु की खबर सुनकर बादशाह ने कहा—"वह एक महान् सेनापति था। जिस समय मैंने प्राचीन राज्यों को नष्ट करने की चेष्टा की, उस समय सिर्फ़ इसी व्यक्ति ने एक नया राज्य स्थापन कर लिया। मेरी सेना ने उन्नीस वर्ष युद्ध किया, तो भी उसके राज्य की कोई हानि नहीं हुई।"

अब राजपूतों का भी विवरण सुनिये। जहाँगीर और उदयपुर के राणा के बीच यह सन्धि हुई थी कि वह स्वयं तथा उसके उत्तराधिकारी राणा होने पर शाही दरबार में उपस्थित न होंगे। प्रत्येक राजा सिंहासना-

रूढ़ होने पर शाही फ़र्मान राजधानी से बाहर जाकर स्वीकार करेगा। तब से मुग़ल दरबार में मेवाड़ के युवराज हाजिर होते रहे थे।

अमरसिंह की मृत्यु पर राणा कर्ण गद्दी पर बैठे। उन्होंने सन्धि की शान्ति से लाभ उठाकर देश को हरा-भरा कर दिया। कर्ण के छोटे भाई का मुग़ल-दरबार में इतना पद बढ़ा कि वे मुग़ल-सेना के प्रधान सेनापति बनाये गये और सुल्तान खुर्रम के मन्त्री बनाये गये। उन्हें राजा का पद दिया गया था।

आठ वर्ष राज्य करके राणा कर्ण स्वर्गवासी हुए। उस समय खुर्रम मेवाड़ में शरणागत थे। राणा ने उन्हें सम्राट् स्वीकार किया और शाहजहाँ की पदवी दी। इस अवसर पर जगतसिंह से शाहजहाँ ने पगड़ी बदलकर भाईचारा स्वीकार किया था। उस मैत्री को शाहजहाँ ने जन्म-भर निबाहा। जगतसिंह ने छब्बीस वर्ष मेवाड़ पर राज्य किया और मुग़ल आक्रमणों के सब चिन्हों को मिटा देने की चेष्टा की। वह बहुत उदार, मिलनसार और सभ्य व्यक्ति थे। इन्होंने मेवाड़ को खूब सुन्दर-समृद्ध बना दिया।

इनकी मृत्यु पर राजसिंह गद्दी पर बैठे। ये सिंह के समान पराक्रमी योद्धा थे। औरङ्गजेब के पिता-विद्रोह के युद्ध में इन्होंने बादशाह का पक्ष लिया था। परन्तु भाग्यवश औरङ्गजेब ही बादशाह हुआ।

हम कह चुके हैं कि अकबर से लेकर शाहजहाँ तक मुग़ल-बादशाहों ने इन हिन्दू राजाओं से उदार नीति बरती थी। पर औरङ्गजेब ने वह नीति त्याग दी। अकबर ने राजपूतों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करके प्रेम और विश्वास एवं ऐक्य की जड़ें जमालीं थी, तथा राजपूतों को मित्र एवं सम्बन्धी बना लिया था, और उन्होंने पीढ़ियों तक मुग़ल-साम्राज्य के विस्तार करने में अपने जीवन व्यतीत किये। पर औरङ्गजेब ने उस मुग़ल-साम्राज्य की जड़ें हिलादीं—स्तम्भों को उखाड़-उखाड़कर फेंकना शुरू कर दिया।

जिस समय औरङ्गजेब गद्दी पर बैठा, राजपूताने में एक-से-एक बढ़-कर शक्तिशाली पुरुष उत्पन्न हो गये। अम्बराधिपति जयसिंह, मारवाड़ाधीश्वर जसवन्तसिंह, बूँदी और कोटा के हाड़ा सरदार, बीकानेर के राठौर, ओरछा और दतिया के बुन्देले, एक-से-एक बढ़कर शूर थे—जो सभी औरङ्गजेब से अप्रसन्न हो गये।

औरंगजेब के पूर्वजों ने तीन पीढ़ी तक जिस भाँति प्रजा का शासन किया—तथा देश में कला-कौशल, साहित्य, विज्ञान और व्यापार की वृद्धि की, वह सब औरङ्गजेब के जेहाद के अत्याचार प्रारम्भ होते ही छिन्न-भिन्न होगई। फलतः राज्य-कोष खाली होने लगा, और तीन पीढ़ी का संचित ख़ज़ाना समाप्त होगया। तब बादशाह ने 'ज़जिया'-कर लगाया, जो नितान्त अन्यायमूलक एवं क्रूर था—इससे हिन्दुओं के कलेजे में आग धधक उठी।

जिस समय राजसिंह गद्दी पर बैठे, तो उन्होंने तिलकोत्सव किया। तब तक शाहजहाँ गद्दी पर था। इस अवसर पर यह रस्म होती थी कि शत्रु का कोई इलाक़ा छीन लिया जाय। राजसिंह ने अजमेर के सीमाप्रान्त का मालपुरा लूट लिया। जब बादशाह के पास शिकायत गई तो उसने कहा—"यह मेरे भतीजे की केवल मूर्खता है।"

पर औरङ्गजेब ने गद्दी पर बैठने पर रूपनगर की राजकुमारी का डोला जबरन मँगवाया। रूपकुमारी ने राजसिंह की शरण चाही। उन्हें यह सूचना जंगल में शिकार खेलते समय मिली, जबकि उनके साथ सिर्फ़ सौ राजपूत थे। अधिक समय नहीं था। वे उन्हीं सौ वीरों को लेकर चल दिये और रास्ते में पाँच हजार मुग़लों से बलपूर्वक कुमारी का डोला छीन लाये।

इससे राजसिंह के शौर्य का शोर मच गया, और औरङ्गजेब क्रोध से थरथर काँपने लगा। उधर राजसिंह भी भावी महायुद्ध की तैयारी करने लगे। पर औरङ्गजेब ने राजसिंह को तब तक छेड़ने का साहस न किया, जब तक जयसिंह और जसवन्तसिंह जीवित रहे। उधर वह शिवाजी द्वारा भी बहुत तंग किया जा रहा था। अन्त में उसने इन दोनों वीरों को विष देकर मरवा डाला। साथ ही 'ज़जिया'-कर लगा दिया। फिर जसवन्तसिंह की विधवा और पुत्र को क़ैद करना चाहा। बड़े पुत्र को भी विष देकर मरवा डाला। इस प्रकार तमाम राजपूताना क्षुब्ध होगया, और वीर राठौर दुर्गादास ने राजसिंह से मिलकर इस दुर्दान्त मुग़ल के नाश का उपाय ठीक किया।

राणा ने एक प्रभावशाली पत्र औरङ्गजेब की ज़जिया के सम्बन्ध में लिखा, जो इस प्रकार था—

"सर्व प्रकार की स्तुति, सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की उचित है, और आपकी महिमा भी स्तुति करने योग्य है। आपकी उदारता और समदृष्टि चन्द्र और सूर्य की भाँति चमकती है। यद्यपि मैंने आजकल अपने को आपके साथ से अलग कर लिया है, किन्तु आपकी जो सेवा हो सके, उसको मैं सदा चित्त से करने को उद्यत हूँ। मेरी सदा इच्छा रहती है कि हिन्दुस्तान के बादशाह, रईस, मिर्ज़ा-राजे और राय लोग, तथा ईरान, तूरान और शाम के सरदार लोग, और सातों बादशाहत के निवासी और वे सब यात्री, जो जल या थल के मार्ग से यात्रा करते हैं, मेरी अभेद बुद्धि-सेवा से उपकार लाभ करें।

"वह इच्छा मेरी ऐसी उत्तम है कि जिसमें आप कोई दोष नहीं देख सकते। मेरे पूर्वजों ने पूर्व काल में जो कुछ आपकी सेवा की है, उस पर ध्यान करके मुझको अति उचित जान पड़ना है कि मैं नीचे लिखी हुई बातों पर आपका ध्यान दिलाऊँ; जिसमें राजा और प्रजा की भलाई है। मुझको यह समाचार मिला है कि आपने मुझ शुभ-चिन्तक के विरुद्ध एक सेना नियत की है, और मैंने यह भी सुना है कि ऐसी सेनाओं के नियत होने से आपका ख़ज़ाना, जो ख़ाली हो गया है, उसको पूरा करने को नाना प्रकार के कर भी लगाये हैं।

"आपके परदादा मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर ने, जिनका सिंहासन अब स्वर्ग में है, इस बड़े राज्य को बावन वर्ष तक ऐसी सावधानी और उत्तमता से चलाया कि सब जाति के लोगों ने उससे सुख और आनन्द उठाया। क्या ईसाई, क्या मूसाई, क्या दाजही, क्या मुसलमान, क्या ब्राह्मण, क्या नास्तिक—सबने उनके राज्य में समान भाग से राज्य का न्याय और राज्य का सुख-भोग किया, और यही कारण है कि सब लोगों ने एक मुँह होकर उनको जगत्-गुरु की पदवी दी थी। शहन्शाह मुहम्मद नूरुद्दीन जहाँगीर ने, जो अब नन्दन-वन में विहार करते हैं—उसी प्रकार बाईस वर्ष राज्य किया, और अपनी रक्षा की छाया से सब प्रजा को शीतल रखा, तथा अपने आश्रित या सीमास्थित राजन्य-वर्ग को भी प्रसन्न रखा, अपने बाहु-बल से शत्रुओं का दमन किया। वैसे ही उनके शाहज़ादे और

आपके बड़े परम प्रतापी पिता शाहजहाँ ने बत्तीस वर्ष राज्य करके अपना शुभ नाम अपने शुद्ध गुणों से विख्यात किया।

"आपके पूर्वज पुरुषों की यह कीर्ति है। उनके विचार ऐसे उदार और महत् थे कि जहाँ उन्होंने चरण रखा, वहाँ विजय-लक्ष्मी को हाथ जोड़े सामने पाया और बहुत-से देश और द्रव्य को अपने अधिकार में किया। किन्तु आपके राज्य में वे देश अब अधिकार से बाहर होते जाते हैं, और जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं, उनसे निश्चय होता है कि दिन-दिन राज्य का क्षय ही होगा। आपकी प्रजा अत्याचार से अति दुखी है, और सब दुर्बल पड़ गये हैं, चारों ओर से बस्तियों के ऊजड़ पड़ जाने की और अनेक प्रकार की दुख की ही बातें सुनने में आती हैं। राजमहल में दरिद्रता छाई हुई है। जब बादशाह और शाहजादों के देश की यह दशा है, तब और रईसों की कौन कहे ? शूरता तो केवल जिह्वा में आ रही है। व्यापारी लोग चारों ओर रोते हैं, मुसलमान अव्यवस्थित हो रहे हैं, हिन्दू महादुखी हैं,—यहाँ तक कि प्रजा को सन्ध्या-काल के समय खाने को भी नहीं मिलता और दिन को सब दुख के मारे अपना सिर पीटा करते हैं।

"ऐसे बादशाह का राज्य कितने दिन स्थिर रह सकता है—जिसने भारी कर से अपनी प्रजा की ऐसी दुर्दशा कर डाली है ? पूर्व पश्चिम तक सब लोग यही कहते हैं कि हिन्दुस्तान का बादशाह हिन्दुओं का ऐसा द्वेषी है कि वह रंक ब्राह्मण से लेकर योगी, बैरागी और सन्यासी तक पर कर लगाता है, और अपने उत्तम तैमूरी वंश को, इन धनहीन और निरुपद्रवी, उदासीन लोगों को दुख देकर कलंकित करता है। अगर आपको उस किताब पर विश्वास है, जिसको आप ईश्वर का वाक्य कहते हैं, तो उसमें देखिये कि ईश्वर को मनुष्य-मात्र का स्वामी लिखा है, केवल मुसलमानों का नहीं। उसके सामने हिन्दू और मुसलमान दोनों समान हैं। मनुष्य-मात्र को उसी ने जीवन-दान दिया है। नाना रंग के मनुष्य अपनी इच्छा से पैदा किये हैं। आपकी मसजिदों में भी उसी का नाम लेकर चिल्लाते हैं, और हिन्दुओं के यहाँ देव-मन्दिरों में भी उसी के निमित्त घण्टा बजाते हैं। किन्तु सब उसी एक को स्मरण करते हैं। इससे किसी जाति को दुख देना परमेश्वर को अप्रसन्न करना है। हम लोग जब कोई चित्र देखते हैं, तो उसके चितेर को

स्मरण करते हैं। यदि हम उस चित्र को बिगाड़ें, तो चितेरे को अप्रसन्नता होगी, और कवि की उक्ति के अनुसार जब कोई फूल सूँघते हैं, तो उसके बनानेवाले को ध्यान करते हैं, उसको बिगाड़ना उचित नहीं समझते।

सारांश यह कि हिन्दुओं पर आपने जो कर लगाना चाहा है, वह न्याय के परम विरुद्ध है—राज्य के प्रबन्ध को नाश करने वाला है। ऐसा करना अच्छे राज्याधीश्वरों का लक्षण नहीं है, और बल को शिथिल करने वाला है, हिन्दुस्तान की नीति के अति विरुद्ध है। यदि आपको अपने मत का ऐसा आग्रह हो कि आप इस बात से बाज न आयेंगे, तो पहिले राजसिंह से, जो हिन्दुओं में मुख्य हैं, यह कर लीजिये और फिर इस शुभ-चिन्तक को बुलाइये। किन्तु यों प्रजा-पीड़न करना वीर-धर्म और उदार-चित्त के विरुद्ध है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आपके मंत्रियों ने आपको ऐसे हानिकारक विषय में कोई उत्तम मंत्र नहीं दिया।"

टॉड राजस्थान,
४४७-४४८, प्रथम खण्ड

पत्र पढ़कर बादशाह तिलमिला उठा। उसने राजपूत की इस दुर्घर्ष शक्ति को कुचलने की भारी तैयारी प्रारम्भ कर दी। बंगाल से अपने पुत्र अकबर को, काबुल से अजीम को, दक्षिण से दिलेरखाँ को बुलवाया और शाही सैन्य लेकर उसने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी।

यह सुन, राणा अपने समस्त योद्धाओं और नागरिकों को लेकर दुर्गम पर्वत-उपत्यकाओं में चले गये। देश-भर उजाड़ कर दिया गया। औरङ्गजेब चित्तौर, मंगलगढ़, मन्दसौर, जीरन और अन्य क़िलों को अनायास ही अधिकृत करता हुआ, बढ़ा चला गया।

राणा ने अपनी सेना को तीन भागों में बाँटा। एक भाग का अधिपति राणा का ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह अरावली की दूसरी चोटी पर स्थित किया गया, जिसमें वह दोनों ओर से आनेवाले शत्रुओं की खबर रखे। राजकुमार भीम पश्चिम की ओर नियुक्त किया, जिससे वह गुजरात से आनेवाले शत्रु को रोके। राणा स्वयं नाहन की घाटी पर जाकर बैठे, और इस ताक में लगे कि शत्रु पहाड़ी में घुसें तो उनके लौटने का मार्ग रोक दिया जाय।

औरङ्गजेब ने अपने पुत्र अकबर को पचास हजार सेना देकर आगे बढ़ने की आज्ञा दी। उसे मार्ग में एक भी मनुष्य न मिला। उसने बाग, महल, भवन, वाटिका, तालाब—सब देखे, पर मनुष्य का पता न था। अतः उसने वहाँ डेरे डाल दिये। सैनिक, शत्रु के इस प्रकार भयभीत होकर भाग जाने की खुशी में मस्त होकर जश्न मनाने लगे।

अकस्मात् राजसिंह उन पर आ पड़े। उस समय कोई खा रहा था, कोई नमाज पढ़ रहा था, कोई ताश-शतरंज में मस्त था। सब गाजर-मूली की तरह काट डाले गये। जो बचे, भाग निकले। उनका सब सामान लूट लिया गया और छावनी फूँक दी गई। उनके रथ, घोड़े, हथियार क़ब्जे में कर लिये गये।

अकबर ने लौटने पर देखा कि लौटने की राह बन्द है। अब बादशाह से जा मिलना सम्भव नहीं। बीच में राजसिंह के सिपाही नंगी तलवारें लिये जमा हैं।

अकबर ने गोलकुण्डा के रास्ते मारवाड़ के मैदानों की ओर लौटना चाहा। पर उधर भीलों ने वाणों से उसकी सेना को छेद डाला। इधर भी जान संकट में समझ, वह लौटकर दूसरी ओर को फिरा, तब कुमार जयसिंह ने ऐसा बन्द लगाया कि एक भी मुग़ल का वहाँ से बाहर आना असम्भव हो गया। निदान, अकबर ने जयसिंह से कहला भेजा, कि यदि हमें लौट जाने दिया जाय, तो हम युद्ध बन्द कर देंगे। इस पर विश्वास कर, जयसिंह ने उन्हें पथ-प्रदर्शक देकर चित्तौड़ की प्राचीर तक पहुँचा दिया।

अब दिलेरखाँ की दुर्गति का हाल सुनिये! वह अपनी सेना लेकर मारवाड़ की ओर देसोरी घाटी में होकर पर्वत-माला में घुसा। उसे भी किसी ने नहीं रोका, वह सेना घुसी ही चली गई। जब वे घूम-घुमौवल मार्ग में भटककर एक चौड़े मैदान में पहुँचे, तो विक्रम सोलङ्की और गोपीनाथ राठौर उन पर टूट पड़े, और सँभलने से पहले ही उन्हें काट डाला। यह सेना बिल्कुल नष्ट कर दी गई, और उसका सब असबाब लूट लिया गया।

औरङ्गजेब अपने पुत्र अजीम को साथ लिये, दीवारी में डेरे डाले पड़ा, इन युद्धों का परिणाम देख रहा था। राणा अकस्मात् ही उस पर

टूट पड़े। राठौरों पर इस बादशाह ने बहुत जुल्म किये थे। उनकी तलवारें खून की प्यासी हो रही थीं। दुर्गादास और राजसिंह ने आज बढ़-बढ़ कर बदले लिये। सम्राट् की भारी तोपें, जिनके गोलन्दाज़ सुयोग्य फ्रान्सीसी थे, धरी रह गयीं। राजपूतों ने मुग़लों को बर्छी पर धर लिया। अन्त में बादशाह हार कर भाग गया। उसका बहुत-सा सामान लूट लिया गया। उसका झण्डा, हाथी और बहुत सा सामान राजपूतों के हाथ लगे।

उधर भीम खाली नहीं बैठा था। उसने गुजरात को भेदकर ईडर पर अधिकार कर लिया, और मुग़ल क़िलेदारों को मार भगाया। फिर उसने पाटन, सिद्धपुर आदि नगरों को लूटा और सूरत की ओर बढ़ा। दूसरी ओर राणा के मन्त्री दयालशाह ने मालवे को लूट लिया।

सारंगपुर, देवास, सारौन, माँडू, उज्जैन और चन्देरी लूट लिये गये। तमाम क़िले कब्जे में कर लिये—फौज़ों को काट डाला, मालवा उजाड़ हो गया ! वहाँ की अटूट सम्पत्ति लूटकर राणा के चरणों में रख दी गई।

बादशाह अकबर और अजीम को बारह हजार सेना-सहित चित्तौड़ पर अधिकार करने को छोड़ गया था। उस पर जयसिंह और दयालशाह ने आक्रमण कर, उसे रणथम्भोर तक खदेड़ दिया। इस प्रकार प्रकाण्ड मुग़ल सेना सर्वथा मेवाड़ से निकाल बाहर कर दी गई।

अब राणा मारवाड़ की तरफ़ झुके। वहाँ जसवन्त की रानी बड़े हौसले से शाही सेना का मुकाबला कर रही थी, जो नगर पर दख़ल करने को आई थी। राणा ने गनौरा नामक स्थान पर मुग़लों से लोहा लिया। इस युद्ध में राजपूतों ने एक भयानक हास्य मुग़लों से किया—पाँच सौ ऊँट मुग़लों से छीन लिये। उन पर बहुत-से गड़े-गूदड़ लपेट, तेल से तर कर, उन पर मशालें जलाकर उन्हें मुग़ल छावनी में हाँक दिया। पीछे-पीछे राठौर चले। मुग़ल छावनी में उन जलते हुए ऊँटों ने यह आफ़त मचाई कि हाहाकार मच गया, और राजपूतों ने मुग़ल सेना को नष्ट कर दिया।

इसके बाद बीकानेर के राजा के उद्योग से राणा और राजसिंह में सन्धि चर्चा चली। पर, इसी बीच में राजसिंह की मृत्यु हो गई, और फिर बादशाह और जयसिंह के बीच, जो राणा हुए, सन्धि हुई। इस सन्धि के

बाद औरङ्गजेब को राजपूताने की ओर देखने का मृत्यु तक साहस नहीं हुआ।

तीसरी शक्ति, मुग़लों के विरुद्ध खड़ी हुई, सिक्खों की थी। यह प्रथम एक धार्मिक समुदाय था। इसका जन्म एक शक्तिशाली साधु पुरुष नानक ने किया। इस धर्म का मुख्य उद्देश्य भिन्न-भिन्न जाति और धर्म के लोगों को एक होकर रहने का था। उसने सब ढकोसलों और भेद-भावों की तीव्र निन्दा की। अद्वितीय ईश्वर की उपासना ही उसका मुख्य उद्देश्य था।

नानक के बाद कई गुरु गद्दी पर बैठे, और वे सब संयमित चित्त-योगी की भाँति रहते थे। धीरे-धीरे मुसलमान बादशाहों ने उन पर अत्याचार आरम्भ किये। वे वध स्थल में पशु की भाँति ले जाये जाते और उनका वध लोहे के पींजरे में बन्द कर, निर्दयता से किया जाता। अर्जुन गुरु को जहाँगीर ने क़ैद किया, और उन्हें आर्त-यातनाओं से कुल्हाड़े से मारा गया। इस घटना के बाद सिक्ख उत्तेजित हो गये, और उनके पुत्र हरगोविन्द गद्दी पर बैठते ही मुसलमानों के विरोधी हो गये। उन्होंने सिक्खों को हथियार धारण की शिक्षा दी। वह स्वयं दो तलवारें बाँधते थे। जब कोई उनसे इसका कारण पूछता तो वह उत्तेजित स्वर में कहते—'एक पिता के बदले के लिये और दूसरी मुग़ल साम्राज्य का ध्वंस करने के लिये।' इनकी मृत्यु के पीछे उनके पोते हरराम गुरु हुए। फिर हरकिशन गुरु हुए। उसके बाद गुरु तेग़बहादुर हुए। यही वह समय था, जब औरङ्गजेब के अत्याचारों से भारत कम्पायमान हो रहा था। उनके पास काश्मीर के कुछ पीड़ित ब्राह्मण भागकर आये और दुहाई दी। तेग़बहादुर ने गम्भीर विचार कर, एक भयानक संकल्प किया, और उन्हें यही पढ़ाकर दिल्ली भेजा। उन्होंने दिल्ली आकर कहा—'यदि आप तेग़बहादुर को मुसलमान बनालें, तो हम खुशी से मुसलमान हो जायेंगे।' तेग़बहादुर के प्रतिद्वन्दी रामराय ने भी बादशाह को इसके लिये उत्तेजित किया। तब बादशाह ने तेग़बहादुर पर सेना भेजी, और वे बन्दी करके दिल्ली ले आये गये। यहाँ भरे दरबार में बादशाह ने कहा—"कुछ करामात दिखाओ!" गुरु ने कहा—"हमारा धर्म सर्व-शक्तिमान ईश्वर की उपासना करना है। परन्तु तुम्हें हम करामात

दिखाने ही आये हैं ।" इतना कह, उन्होंने कुछ शब्द काग़ज पर लिखकर गले में तावीज की भाँति बाँध लिये, और कहा—कि, अब मेरी गरदन तलवार से नहीं काटी जा सकती ।

बादशाह ने डरते-डरते जल्लाद को वार करने का संकेत किया ! तलवार पड़ते ही उनका सिर कटकर धरती पर लुढ़क गया । यह देख, बादशाह विमूढ़ हो गया । काग़ज में लिखा था—"सिर दिया, सार नहीं ।"

यह निर्दय घटना तूफान की भाँति फैल गई । तेग़बहादुर चलती बार अपने पुत्र गोविन्दसिंह को गद्दी पर बैठा आये थे—जिसकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी । उन्होंने प्राण देने का निश्चय किया था । वे जानते थे कि इसी से देश में आग लग जायगी । इस तेजस्वी बालक ने नंगी तलवार लेकर हुङ्कार भरी और सिक्खों का संगठन शुरू किया । कई छोटे-छोटे युद्ध मुग़लों के साथ हुए, और सब में उनकी विजय हुई । अन्त में बादशाह ने प्रबल सेना भेजी, जिससे पराजित होकर गोविन्दसिंह हार गये । उनके दो पुत्र पकड़े गये और जीते ही दीवार में चुने गये । बादशाह ने गुरु को दिल्ली बुला भेजा । पर उन्होंने कहला भेजा—अभी ख़ालसा बादशाह से गुरु का बदला लेंगे । अन्त में वे बादशाह से मिलने को राजी भी होगये, पर इस मुलाक़ात से प्रथम ही बादशाह की मृत्यु हो गई । उनके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने गुरु की बहुत ख़ातिर की, पर उनकी अचानक एक पठान के आक्रमण से मृत्यु होगई । यह घटना नर्वदा-तीर के नादर नामक स्थान पर हुई । उस समय गुरु की आयु अड़तालीस वर्ष की थी ।

इनके बाद सिक्ख-समुदाय एक लौह-समुदाय बन गया । एक बार गोविन्दसिंह ने बादशाह को लिखा था—खबरदार रहो ! तुम हिन्दू को मुसलमान करते हो । तुम अपने को बेजरर समझते हो, पर मैं कबूतर से बाज का शिकार कराऊँ तो गुरु !

इस गुरु के बाद उनका धर्म-ग्रन्थ ही गुरु के स्थान पर पूज्य हुआ । सिक्खों ने रामनगर और चिलियाँवाला में ऐतिहासिक अमर कारनामे किये । बन्दा बैरागी ने बादशाही को हिला डाला, और अन्त में सिख महाराज रणजीतसिंह ने जन्म लेकर काबुल तक को थर्रा दिया ।

इस बात पर विचार करना उचित है कि इस भयानक व्यक्ति ने ऐसे

अत्याचार और प्रजा-पीड़न करने पर भी किस भाँति पचास वर्ष तक राज्य किया, और समस्त कठिनाइयों को कैसे पार किया ! यह व्यक्ति वास्तव में बुद्धिमान और तीखा, घमण्डी, धूर्त और मुस्तैद था। किसी को मुँह न लगाता था। एक बार का जिक्र है कि इसके किसी उमरा ने खुशामद से कहा—"हुजूर काम में इस क़दर मसरूफ़ हैं कि यह अन्देशा है कि इससे सेहते-जिसमानी बल्कि दिमागी कुव्वत में कुछ फ़र्क़ आ जाय, और ताक़त को कुछ नुक़सान पहुंचे।"

यह सुनकर बादशाह ने उस बुद्धिमान उपदेशक की ओर से मुँह फेर लिया—मानो उसकी बात सुनी ही नहीं। फिर कुछ ठहरकर एक और बहुत बड़े अमीर की ओर, जो बड़ा ही विद्वान् और बुद्धिमान था, देखकर कहा—"आप तमाम अहले-इल्म इस बात में मुत्तफ़िकुलराय हैं कि मुश्किल और ख़ौफ के जमाने में जान जोखों में पड़ जाना और जरूरत के वक्त रिआया की बेहतरी के लिये, जिसे खुदा ने उसे सुपुर्द किया है, तलवार पकड़ कर मैदाने-जंग में जान देना बादशाह का फ़र्ज है। मगर इसके बरअक्स यह नेक और बातमीज शख़्स [!] है ! यह चाहता है कि रिआया के आराम व आसाइश के लिये जरा भी तकलीफ़ न उठाई जाय। और उनकी [रिआया की] रिफ़ाह की तदबीरों के सोचने में एक रात या एक दिन भी बे-आराम रहे बग़ैर यह मुकद्दमा हासिल हो जाय। इसकी राय है कि मैं सिर्फ़ अपनी तन्दुरुस्ती को मुक़द्दम जानूँ, और ज्यादातर ऐशो-इशरत और आराम व आसाइश के उमूर में मसरूफ़ रहूँ; जिसका नतीजा यह हो सकता है कि मैं इस वसीह सल्तनत के कामों को किसी वजीर के भरोसे छोड़ बैठूँ। मगर मालूम होता है कि इसने इस अमर पर ग़ौर नहीं किया कि जिस हालत में मुझे खुदा ने बादशाही ख़ानदान में पैदा कर, तख़्त पर बिठाया है, तो दुनिया में अपने ज़ाती फ़ायदे के लिये नहीं भेजा, बल्कि औरों को आराम पहुँचाने और मिहनत करने के लिये। मेरा यह काम नहीं है कि अपनी ही आसाइश की फ़िक्र करूँ। अलबत्ता रिआया के फ़ायदे की ग़रज से जिस क़दर आराम लेना जरूरी है, उसका मुजायक़ा नहीं। बजुज़ इसके कि इन्साफ़ और अदालत से वैसा ही करना साबित हो—या सल्तनत के क़ायम रखने और मुल्क की हिफ़ाजत के लिये यह बात जरूरी हो। हर सूरत में रिआया की आसा-

इश और तरक्की ही एक ऐसी चीज है, जिसकी फ़िक्र मुझे होनी चाहिये। मगर यह शख्श इस बात की तह को नहीं पहुँचा कि उस आराम से, जो यह मेरे लिये तजबीज करता, क्या-क्या कहावतें पैदा होंगी, और यह भी इसे नहीं मालूम कि दूसरों के हाथ में हुकूमत देना कैसी बुरी बात है। शेख़ सादी ने जो यह कहा कि बादशाहों को चाहिये कि नवाब खुद कारोबार-सल्तनत का बोझ अपने ऊपर ले—नहीं तो बेहतर है कि बादशाह कहलाना छोड़ दे, तो क्या बुजुर्ग का यह क़ौल ग़लत है ? बस, आप अपने इस दोस्त से कह दीजिए कि अगर यह हमारी ख़ुशी और हमसे आफ़रीं हासिल करना चाहता है तो जो काम इसके सुपुर्द है, उसे ठीक तौर से करता रहे, और ख़बरदार यह सलाह जो बादशाहों के सुनने के लायक़ नहीं हैं, कभी न दे ! अफ़सोस, इन्सान आराम-तलब है, और ऐसे ख़यालात से बचना चाहता है, जो दूसरों की तरक्की की फ़िक्र में आदमी को घुला डालते हैं। मगर हमको ऐसे फ़िजूल सलाहकारों की हाजत नहीं है। ऐशो-आराम की सलाह तो हमारी बेगमें भी दे सकती हैं।"

एक बार औरङ्गजेब के गुरु मुल्ला सालह ने, जिसने बचपन में उसे शिक्षा दी थी—यह सोचा कि अब मेरा शागिर्द बादशाह हुआ है, कुछ-न-कुछ जागीर देगा, और वह अमीरों की श्रेणी में रख लिया जायगा। उसने बड़ी-बड़ी सिफ़ारिशें पहुँचाईं और सभी दरबारियों तथा अमीर-उमरावों को अपने पक्ष में कर लिया। यहाँ तक कि बेगम रोशनआरा तक को पक्षपाती बना लिया, और उसने कई बार बादशाह को याद दिलाया कि आपका माननीय विद्वान् उस्ताद प्रतिष्ठा किये जाने के योग्य है। पर बादशाह ने तीन महीने तक तो उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। अन्त में उसने एक दिन दरबारे-खास में हाज़िर होने का हुक्म दिया। वहाँ कुछ चुने हुए अमीर हाजिर थे। वहाँ बादशाह ने कहा—

"मुल्लाजी, बराए मेहरबानी यह तो फ़रमाइये कि आप हमारे से चाहते क्या हैं ? क्या आपका यह दावा है कि हम आपको दरबार के अव्वल दर्जे के उमरा में दाखिल करलें ? अगर आपकी यह ख़्वाहिश है, तो पहिले इस बात का हिसाब करना जरूरी है कि आप किसी निशाने-इज्जत के मुस्तहक़ अभी हैं या नहीं। हम इससे इन्कार नहीं करते कि अगर आप

हमारी तालीम व तरबियत ठीक तौर पर करते, तो जरूर ऐसी ही इज्जत के मुस्तहक़ होते। आप हमको किसी तरबियतयाफ्ता नौजवान शख्स का नाम बतलायें, कि उसकी तालीम व तरबियत की बाबत शुक्रगुजारी का ज्यादा मुस्तहक़ उसका उस्ताद है या उसका बाप? फ़रमाइये तो सही कि आपकी तालीम से कौन सी वाक़फियत मुझे हासिल हुई है। क्योंकि आपने तो मुझको यह बतलाया था कि तमाम फिरंगिस्तान (यूरोप) एक छोटे जज़ीरे से ज्यादा नहीं, जिसमें सबसे बड़ा बादशाह अव्वलन् शाह पुर्तगाल था, फिर बादशाह हॉलैंड हुआ, और इसके बाद बादशाह इंगलिस्तान। फिरंगिस्तान के और बादशाहों—मसलन्, फ्रान्स और इंगलैंड की बाबत यह बताया करते थे कि यह लोग हमारे यहाँ के छोटे-छोटे राजाओं के मुआफिक हैं, और यह कि हिन्दुस्तान के बादशाहों में सिर्फ हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ हुए हैं, जिनके आगे तमाम दुनिया के बादशाहों की शान व शौक़त मद्धिम है। और यह ईरान, उजबक, काशगर, तातार, श्याम, चीन और माचीन के बादशाह सलातीन हिन्द के नाम से काँपते हैं। सुबहान अल्लाह! आपकी इस जुग़राफ़ियादानी और कमाले-इल्म तवारीख़ का क्या कहना है! क्या मुझ-जैसे शख्स के उस्ताद को लाज़िम न था कि वह दुनिया की हर-एक क़ौम के हालात से मुझे मुत्तिला करता! मलसन् उनकी कुव्वत-जङ्गी से, उनके वसायल-आमदनी से, और तर्जे-जंग से, उनके रस्मो-रिवाज, मज़ाहिब और तर्जे-हुक्मरानी और उन ख़ास-खास उमूर व तफ़सीम से जुदा-जुदा मुझको आगाह करता, जिनको वे अपने हक़ में ज्यादा मुफ़ीद समझते हैं। मेरे जैसे शख्स के उस्ताद को लाज़िम था कि वह मुझको इल्म तारीख़ ऐसी सिलसिलेवार पढ़ाता कि मैं हर एक सल्तनत की जड़-बुनियाद, असबाबतरक्क़ी व तनज्जुली और उनके साथ उन वाक़यात और उन ग़लतियों से वाक़िफ़ हो जाता, जिनके बायस उनमें ऐसे इन्क़लाबात होते रहे हैं। बनिस्बत इसके कि आप मुझे तमाम दुनिया की कामिल तारीख़ से आगाह करते, आपने तो हमारे उन मशहूर व मारूफ बुजुर्गों के नाम भी अच्छी तरह नहीं बतलाये, जो हमारी सल्तनत के बानी थे। उनकी सवाने-उम्री, ख़ास-तौर की लियाक़त, जिनके बाइस वह बड़े-बड़े फ़तूहात करने के क़ाबिल हुए और उन फ़तूहात से पहले जो वाक़यात जहूर में आये, उनसे

भी मुझे आपने नावाक़िफ़ रखा। बावजूद कि बादशाह को अपनी हमसाया क़ौमों की ज़बानों से वाकिफ़ होना ज़रूरी है, आपने मुझको अरबी लिखना-पढ़ना सिखाया। इस ज़बान के सीखने में मेरी उम्र का एक बड़ा हिस्सा ज़ाया हुआ। मगर, आपने यह समझा कि एक ऐसी ज़बान सिखाकर जो दस बरस मिहनत किये बिना हासिल नहीं हो सकती, गोया मुझ पर बड़ा भारी अहसान किया! आपको यह सोचना था कि एक शाहज़ादे को ज्यादा-तर किन-किन इल्मों के पढ़ाने की ज़रूरत है। मगर आपने मुझे ऐसे फ़नों की तालीम दी, जो क़ाज़ियों के लिये मुफ़ीद हैं, और मेरी जवानी के दिन बेफ़ायदा बच्चों की-सी पढ़ाई में बर्बाद किये।

"क्या आपको मालूम न था कि छुटपन में, जब कि कूबत-हाफ़िज़ा मज़बूत होती है, हज़ारों माकूल बातें ज़हननशीन हो सकती हैं? और आसानी के साथ इन्सान ऐसी मुफ़ीद तालीम हासिल कर सकता है, जिससे दिल में निहायत आला ख़यालात पैदा होते हैं, और जिनसे मैं बड़े-बड़े नुमायां कामों के करने के क़ाबिल हो जाता? क्या नमाज़ सिर्फ़ अरबी ही के ज़रिये अदा हो सकती है? और बड़ी-बड़ी इल्मा-हुनर की बातों का जानना क्या अरबी ही के ज़रिये हो सकता है? आपने हमारे वालिद-मज़ीद को तो यह समझा दिया था कि हम इसे फ़िलॉसफ़ी पढ़ाते हैं, और मुझे ख़ूब याद है कि बरसों तक ऐसी बेहूदा बातों से आप मेरा दिमाग़ परेशान करते रहे, जो पहिले तो जल्दी समझ में नहीं आती थीं, और समझ में आ जाने पर जल्द भूल जाती थीं; और ऐसी थीं, जिनको दुनियावी मुआमलात में कुछ ज़रूरत नहीं। आपने उम्र के कई-कई साल ऐसी-ही तालीम में खराब कराये, जो आपको पसन्द थी। मगर जब मैं आपकी तालीम से अलहदा हुआ तो किसी बड़े इल्म के जानने का दावा नहीं कर सकता था। बजुज़ इसके कि चन्द अजीब व ग़रीब बातों का वाक़िफ़ था, जो एक अच्छी समझ के नौजवान शख़्स की हिम्मत को पस्त, दिमाग़ को ख़राब और तबियत को हैरान कर देती हैं। अगर आप मुझे वे बातें सिखाते, जिनसे ज़हन इस क़ाबिल हो जाता कि बग़ैर सही दलील के किसी बात को तसलीम नहीं करता, या आप मुझको वह सबक़ पढ़ाते, जिससे इन्सान की तबियत ऐसी हो जाती है कि दुनिया के इन्क़लाबात का उस पर कुछ भी असर नहीं होता,

और तरक्क़ी या तनज्जुली की हालत में वह एक-सा रहता है, या मुझे कुदरती बातों से आगाह करते—तो मैं उससे भी ज्यादा आपका एहसान मानता—जितना सिकन्दर ने अरस्तू का माना था और अरस्तू से भी ज्यादा इनाम आपकी नज़र करता। मुल्लाजी, नाशुक्रगुज़ारी का झूठा इल्जाम ख्वामख्वाह मुझ पर न लगाइये ! क्या आप यह नहीं जानने थे, कि शाहजादों को इतनी बात जरूर सिखानी चाहिये कि उनको रिआया के साथ और रिआया को उनके साथ किस तरह का बर्ताव करना चाहिये। और क्या आपको अव्वल ही यह ख्याल कर लेना मुनासिब नहीं था कि मैं किसी वक्त तख्तो-ताज की ख़ातिर व अपनी जान बचाने के लिये तलवार पकड़-कर अपने भाइयों से लड़ने पर मजबूर होऊँगा ; क्योंकि आप यह खूब जानते हैं कि सलातीन-हिन्द की औलाद को हमेशा ऐसे मुआमिलात पेश आते रहते हैं। पर, क्या आपने कभी लड़ाई का फ़न या किसी शहर का मुहासरा करना, या फ़ौज की सफ़ आराई का तरीक़ा मुझे सिखाया ? यह मेरी खुश-क़िस्मती थी, कि मैंने इन मुआमिलातों में ऐसे लोगों से कुछ सीख लिया, जो आपसे ज्यादा अक़लमन्द थे। बस, अपने गाँव को चले जाइये, और अब से कोई न जाने कि आप कौन हैं, और आपका क्या हाल है ?"

एक बार औरङ्गजेब ने वृद्ध बादशाह शाहजहाँ को क़ैद में एक पत्र लिखा था। वह पत्र भी पढ़ने योग्य है। उससे बादशाह की तत्परता, राज-नीतिज्ञता और दूरदर्शिता प्रकट होती है। वह पत्र इस प्रकार है—

"क्या हुजूर यह चाहते हैं कि मैं सख्ती के साथ पुरानी रस्मों का पाबन्द रहूँ, और जो कोई नौकर-चाकर मर जाय, उसकी जायदाद जब्त करलूँ ? शाहाने मुगलिया का यह दस्तूर रहा है कि अपने किसी अमीर या दौलतमन्द महाजन के मरने के बाद, बल्कि बाज-औक़ात तो दम निकल जाने से पहले, उसके सब माल-असबाब का पता लगाते थे, और जब तक उसके नौकर-चाकर कुल माल व दौलत, बल्कि अदना-अदना जेवर भी, न बतलायें, तब तक उन पर मार-पीट होती और वे क़ैद किये जाते थे, गोकि यह दस्तूर बेशक फ़ायदेमन्द है, मगर जो नाइन्साफ़ी और बेरहमी इसमें है उससे कौन इन्कार कर सकता है ? अगर हर-एक अमीर नेकनामखाँ जैसा मामला करे, या कोई औरत उस महाजन की तरह अपने मालिक की दौलत

पोशीदा करले, तो उसका हक़-ब-जानिब है या नहीं ? हुजूर के खौफ़ से मैं बहुत डरता हूँ, यह नहीं चाहता कि हुजूर मेरे तौरो तरीके की निस्बत ग़लत-फ़हमी फ़रमावें। हुजूर फ़रमाते हैं कि तख्तनशीनी ने मुझे खुदराय और मग़रूर बना दिया, लेकिन यह ख्याल ग़लत है। चालीस बरस के तजरबे से आप ख़ुद ही ख्याल फ़रमा सकते हैं कि ताजशाही किस क़दर गिराँदार चीज़ है, और बादशाह जब दरबार से उठता है, तब किस क़दर फ़िक्रें उसके दिल को ग़मग़ीन और दर्दमन्द बनाये रहती हैं। हमारे जद्दे-अमजद जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर ने इस ग़रज़ से, कि उनकी औलाद दानाई, नर्मी और तमीज के साथ सल्तनत करे, अपने अहले-सल्तनत की तारीख़ में अमीर तैमूर का जिक्र बतौर नमूना लिखकर अपनी औलाद को उसकी तरफ़ तवज्जह दिलवाई थी। वह तजकिरा यों है—जब तुर्की सुलतान वैजेद गिरफ्तार होकर अमीर तैमूर के हुजूर में लाया गया, और अमीर बहुत ग़ौर के साथ उस मग़रूर क़ैदी की तरफ़ देखकर हँस दिया, तब वैजेद ने इस हरकत से नाराज होकर अमीर से कहा—'तुमको अपनी फ़तहमन्दी पर इतना इतराना न चाहिये। दौलत और इज्जत बख़्शना या लेना ख़ुदा के हाथ में है। मुमकिन है कि जिस क़दर तुम आज बातें करते हो, कल मेरी तरह पकड़े जाओ।' अमीर ने जवाब दिया—'दुनिया और उसके जरो-दौलत की बेएतबारी से मैं खूब वाक़िफ हूँ। और ख़ुदा न करे कि मैं किसी मग़लूम दुश्मन की हँसी उड़ाऊँ। मेरी हँसी का सबक यह न था कि तुम्हारा दिल दुखाऊँ, बल्कि, मुझ तुम्हें देखकर अपनी और तुम्हारी बदसूरती के ख़याल ने बेअख़्तियार हँसा दिया। क्योंकि, तुम तो काने हो, और मैं लँगड़ा। मेरे दिल में यह गुजरी कि ताज और तख़्त आख़िर ऐसी क्या चीज है, जिसको पाकर बादशाह अपनी हस्ती को भूल जाते हैं। हालाँकि खुदाए-ताला उसको अपने ऐसे बन्दों को अता करता है, जो काने और लँगड़े होते हैं।'

"मालूम होता है कि हुजूर यह ख्याल भरमाते हैं कि मेरी मसरूफ़ियत बनिस्बत उन उमूर के, जिनको मैं मुल्कदारी और सल्तनत के अन्दरूनी इन्तजाम के लिये निहायत जरूरी मानता हूँ, नई फ़तूहात और मुल्कगीरी की जानिब निहायत होनी चाहिये। इस अमर से मैं हरगिज इन्कार नहीं कर सकता कि एक बड़े शाहन्शाह का ओहदा, दौलत और नई-नई फ़तूहात

की वजह से मुमताज़ होता है, मगर यह बात करीन-इन्साफ़ नहीं कि मुझे क़ाहिल और ख़ामोश बैठे रहने का इल्जाम दिया जावे। क्योंकि बंगाल और दक्खिन में मेरी फ़ौजों की मसरूफ़ियत को तो हुजूर ख़्याल में ला ही नहीं सकते। और मैं हुजूर को यह भी याद दिलाता हूँ कि बड़े-से-बड़ा मुल्कगीर भी हमेशा सब से बड़ा बादशाह नहीं हुआ। देखा जाता है कि कभी-कभी दुनिया के बादशाह अक्सर बिलकुल वहशी और नातरबियत-याफ्त होने पर भी बड़े आदिल हैं। थोड़े-से अर्से में वे बिलकुल टुकड़े-टुकड़े होगये हैं। बस, हक़ीक़त में सब से बड़ा बादशाह वही है, जो रिआया की मुहब्बत और अदल व इन्साफ़ को ही अहना हासिल अमर जाने।"

इस ज़माने में मुग़लों के महलों की क्या दशा थी, और बादशाह किस भाँति अपने व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करते थे—उनका ऐश्वर्य कितना महान था—उसका वर्णन बर्नीयर के निम्नलिखित उद्धरण से आपको मिलेगा—

"बहुधा राजमहलों में भिन्न-भिन्न नस्लों और जातियों की दो हज़ार स्त्रियाँ रहती हैं—जिनमें से प्रत्येक के कर्तव्य पृथक्-पृथक् होते हैं। किसी का काम तो बादशाह की सेवा होता है, और किसी का उसकी बेगमों, बेटियों और आशनाओं की सेवा। उस श्रेणी में व्यवस्था-प्रबन्ध स्थिर रखने के लिये उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग कमरे मिले होते हैं, जिनकी ज़नाने पहरेदार निगरानी करते हैं। उसके सिवा उनमें से प्रत्येक को दस या बारह बाँदियाँ मिली होती हैं, जो उपरोक्त स्त्रियों में से दे दी जाती हैं। ज़नाने पहरेदारों को अपने दर्जे के अनुसार तीन-चार या पाँच सौ रुपये तक माहवारी वेतन मिलता है, और इनकी आधीन दासियों को पचास रूपये से दो सौ रुपये तक। ज़नाने पहरे वालों के सिवा गानेवालियों को भी वेतन तो उसी प्रकार मिलता है, पर शाहज़ादे और शाहज़ादियों से, जिनके नाम पाठकों के मनोरंजन के लिये मैं आगे चलकर लिखूँगा—बहुमूल्य तोहफे भी मिलते रहते हैं। इनमें से कई तो शाहज़ादियों को लिखना-पढ़ना सिखाती हैं, परन्तु बहुधा इन्हें आशिकाना ग़ज़लें सिखाती रहती हैं। इसके सिवा महल की ख़ातून गुलिस्ताँ और बोस्ताँ नामक पुस्तकें, जो एक प्रसिद्ध लेखक शेख़सादी द्वारा रचित हैं, और अन्य प्रेम-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ती रहती हैं,

जो बहुत करके उपन्यास और किस्सों के ढंग की हैं, और अत्यन्त अश्लील हैं।

"यह नौकर-औरतें बादशाह की सेवा किस तरह करती हैं, यह भी उल्लेखनीय बात है। क्योंकि जिस तरह बाहर मर्दों में अमीर और मन-सबदार हैं, उसी तरह महलों में स्त्रियों में भी हैं। बल्कि बहुतेरों के तो वही ओहदे भी होते हैं, जो बाहर मर्दों के। जब बादशाह-सलामत बाहर तश-रीफ़ न लाना चाहें, तो इन्हीं ओहदेदारों के द्वारा बाहर के अफसरों को आज्ञा प्रदान की जाती हैं। इन ओहदों पर जो स्त्रियाँ नियुक्त की जाती हैं, उनके चुनाव में ख़ास सावधानी की जाती है—जो बुद्धिमान् हों, और राज्य में जो-कुछ हो रहा हो, उससे परिचित रहें ; क्योंकि जिन बातों की बादशाह को सूचना आवश्यक हो, उनकी पूरी रिपोर्ट बाहर से अफ़सर लिख भेजते हैं, और जिस तरह बादशाह आज्ञा दें, जनाने अफ़सर उन पर रिपोर्ट लिखती और जवाब देती हैं, और बाकायदा मुहर करके मर्दाने अफ़सरों के सुपुर्द कर देती हैं, और इधर-से-उधर और उधर-से-इधर जवाब लाती और ले जाती रहती हैं। मुगलों का यह भी एक नियम है कि जो-कुछ राज्य में हो रहा है, सप्ताह में एक बार उसकी रिपोर्ट 'ख़ुफ़िया-नवीस' में अवश्य दर्ज करानी होती है, जो एक प्रकार का गज़ट या अख़-बार है। इन ख़बरों को लगभग सन्ध्या के नौ बजे महल में जनाने अफ़सर बादशाह को सुनाती हैं, और इस तरह महल में भी राज्य-भर की घटनाओं की सूचना मिलती रहती है। इसके सिवाय जासूस हैं, जिनका कर्त्तव्य है कि सप्ताह में कम-से-कम एक बार दूसरे आवश्यक विषयों और खासकर शाहजादों के कामों के सम्बन्ध में, आवश्यक रिपोर्ट भेजें। वह रिपोर्ट लिखित होती है। बादशाह आधी रात तक बैठा इसी प्रकार काम करता रहता है। इसके बाद केवल तीन घण्टे तक सोता है, और उठते ही मामूली नमाज पढ़ता है, जिसमें उसे डेढ़ घण्टा लगता है। प्रति वर्ष वह एक जलसा करता है, जिससे ईश्वर उसे विजय और प्रताप दे। परन्तु आजकल चूँकि वह बूढ़ा हो गया है, और शत्रु इसे कुछ करने नहीं देते, इसलिये विवश उसे आराम करना पड़ता है। परन्तु वह आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में प्रति-दिन सोचने तथा उचित आज्ञा प्रदान करने में कमी नहीं करता। इस तरह

इसका यह नियम है कि चौबीस घण्टे में एक बार भोजन करता है, और केवल तीन घण्टा सोता है। सोने के समय बाँदियाँ उसकी रक्षा करती हैं, जो बड़ी वीर तथा तीर-कमान और हथियारों के प्रयोग में खूब प्रवीण होती हैं। प्रतिदिन शाही बावरची को खाने के ख़र्च के लिये एक हज़ार रुपया दिया जाता है। अफ़सरों को इस रकम में से आवश्यक सामान जुटाना पड़ता है। शाही दस्तरख़ान् पर एक नियत संख्या में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वादिष्ट मांस भिन्न-भिन्न प्रकार के चीनी के प्यालों में—सुनहरे बर्तनों में रखकर पेश किये जाते हैं, और जब बादशाह को किसी बेगम, शाहजादी या जनरल पर विशेष कृपा प्रकट करनी हो, तो इनमें से या और किसी चीज़ में से उसे भेज देता है। पर इस प्रतिष्ठा का मोल उन्हें बहुत देना पड़ता है। क्योंकि ख़्वाजासरा, जो यह खाना लेकर जाते हैं, उनसे भारी रक़म इनाम में प्राप्त करते हैं। जब बादशाह शत्रु के देश में हो, तो यथा सम्भव बावरची-खाने के खर्च का कुछ हिसाब नहीं लिखा जाता, परन्तु महल में बेगम और शहजादियाँ तथा अन्य स्त्रियों के लिये पृथक् वजीफ़े नियत होते हैं। किन्तु बादशाह के महल में कई हिन्दू राजाओं की लड़कियाँ भी हैं, जिन्हें हिन्दू नाम दिये गये हैं। इसी तरह, जैसी उसकी इच्छा हो, मुसलमानों को वह इस्लामी नाम देता है। बादशाहों और मुग़ल-शाहज़ादों में यह भी दस्तूर है कि वह बुड्ढी स्त्रियों से जासूसी का काम लेते हैं, और यह भी उसी ढंग के ख़्वाजासराओं को राज्य-भर की सुन्दरी स्त्रियों के पते देती रहती हैं, जिन्हें यह बुढ़ियाएँ धोखा; फ़रेब या लालच से, जैसे बन सके, महल में ले आती हैं। जहाँ बादशाह या शाहजादे की इच्छा हो, वहाँ उन्हें आशना लोगों की पंक्ति में रखा जाता है। जैसा कि मैं शाहजहाँ और दारा के वर्णनों में कह आया हूँ—जब ऐसा संयोग होता है कि वह इन्हें महल में रखना न चाहें, तो इन्हें कोई भारी नजराना देकर वापस भेज देते हैं। मैं इन घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूँ—क्योंकि मुझे इन गुप्त रहस्यों और अन्य कई बातों के सम्बन्ध में ख़ास ख़बर है, जिनका उल्लेख करना मैं उचित नहीं समझता।

"यद्यपि औरङ्गजेब ने प्रत्येक प्रकार के राग-रङ्ग को बन्द कर दिया

है, फिर भी बेगम और शाहज़ादियों के मनोरंजन के लिये कई-एक नाचने और गानेवालियाँ नौकर हैं।

"बहुधा ये गानेवाली उस्तादनियाँ जन्म से हिन्दू होती हैं, जिन्हें बचपन में घरों से भगा लिया जाता है। यद्यपि उनके नाम हिन्दुआना है, पर हैं सब मुसलमान। इनमें से प्रत्येक की आधीनता में लगभग १० शिष्यायें होती हैं, जिनके साथ वे भिन्न-भिन्न बेगमों, शाहज़ादियों और आशनाओं के महल से उपहार लेती रहती हैं, और प्रत्येक को अपनी स्थिति के अनुसार दर्जा मिला होता है।

"बेगम और अन्य महिलाएँ अपनी-अपनी गानेवालियों के साथ अपने-अपने महलों में समय काट लेती हैं। इन गानेवालियों को सिवाय अपनी मालिका के और किसी के यहाँ गाने की आज्ञा नहीं होती; सिवाय उस सूरत के जब कि कोई भारी त्यौहार हो। तब वे सब-की-सब एक ही होती हैं, और उस त्यौहार पर कुछ-न-कुछ गाने का हुक्म दिया जाता है। ये स्त्रियाँ सभी सुन्दरी, उत्तम वस्त्रा-भूषणों से सज्जिता होती हैं, मस्तानी चाल से चलती हैं, और बात-चीत में बड़ी गुस्ताख़, हाजिर-जवाब, और अत्यन्त वासनायुक्त होती हैं; क्योंकि गाने के सिवाय इनका काम सिवाय व्यभिचार के और कुछ होता ही नहीं।

"महल के दैनिक ख़र्च की तादाद कभी एक करोड़ रुपये से कम नहीं होती। यह रक़म प्रकट में यद्यपि बहुत बड़ी है, पर इतनी बड़ी नहीं रहती, जब यह समझ लिया जाय कि हिन्दुस्तान के सब लोग सुगन्ध और पुष्पों के बहुत शौक़ीन हैं, और भिन्न-भिन्न जाति के इत्रों, सुगन्धित तेलों की सुगन्धि और रूहों पर बहुत-सा रुपया ख़र्च करते हैं। इसके बाद पान का ख़र्च है, जो इनके मुँह में देखा जाता है। स्मरण रहे, कि यह रोज़ाना के ख़र्च हैं। इसमें वह रुपया भी सम्मिलित होना चाहिए, जो जवाहारात की ख़रीद में ख़र्च होता है, और यही कारण है कि सुनारों को जेबर तैयार करने से फुरसत नहीं मिलती। इन जवाहरातों में से अनेक अत्यन्त बहुमूल्य और दुष्प्राप्य हैं, जो बादशाह और बेगमों तथा शाहज़ादियों के निजू इस्तेमाल में आते हैं। ये बेगमें और शाहज़ादियाँ अपने-अपने जवाहिरातों को देख-देखकर प्रसन्न होतीं और दूसरों को दिखाने की

बड़ी अभिलाषिणी रहती हैं। इनके ऐसा करने का कारण भी है। मैंने स्वयं देखा है कि कई बार उन्होंने मुझे सम्मति लेने के बहाने अपने कमरों में बुलाया, और बात-चीत का सिलसिला प्रारम्भ करने के लिये अपने जवाहिरात और जेवर मँगाने शुरू किये, जो सोने की बड़ी किश्तियों में रखकर इनके सामने लाये जाते थे। वे मुझसे उनकी जाति या गुण और विशेषतायें पूछतीं, साथ ही इस प्रकार के अन्य प्रश्न करतीं। इसी बीच में मुझे इनकी सारी पहचान हो गई, और मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने लगभग प्रत्येक प्रकार के जवाहिरात देखे हैं—जिनमें बाज़ तो असाधारण हैं। मैंने एक बार रूप-रंग में एक-से मोतियों की माला देखी है, जिन्हें प्रथम बार देखकर तो मैंने भिन्न प्रकार के मेवेजात समझा था। मैंने मेवेजात कहा है, क्योंकि वह हीरों की माला थी, जो मोतियों की तरह बिंधी और पिरोई हुई थी। उनमें से प्रत्येक हीरा आकृति में नारियल के बराबर था। इनका लाल रंग, जिसमें मोतियों का सफ़ेद रंग अपनी आभा डालता था—इन्हें फल-फूलों का रँग देता था। क्योंकि बेगम जानती हैं कि इनके सिवाय कोई अन्य इनके जवाहिरात को नहीं पहन सकता, इन मालाओं को वे अपने कन्धों पर ओढ़नी की तरह पहनती हैं। इनके साथ दोनों तरफ़ मोतियों की मालाएँ होती हैं। बहुधा इनके गले में तीन से से लेकर पाँच तक मोतियों की मालाएँ होती हैं, जो कि पेट से नीचे के हिस्से तक पहुँचती हैं। सिर पर वे मोतियों का गुच्छा-सा पहनती हैं, जो माथे तक पहुँचता है, और जिसके साथ एक बहुमूल्य आभूषण जवाहिरात का बना हुआ सूरज, चाँद या किसी और तारे या कभी-कभी किसी फूल की आकृति का होता है। दाहिनी तरफ़ एक गोल छोटा-सा गहना होता है। जिसमें दो मोतियों के बीच जड़ा एक छोटा-सा लाल होता है। कानों में बहुमूल्य आभूषण पहनती हैं, और गर्दन के चारों तरफ़ बड़े-बड़े मोतियों तथा अन्य बहुमूल्य जवाहिरात के हार, जिनके बीच में एक बहुत बड़ा हीरा, लाल, याकूत या नीलम और इसके बाहर चारों तरफ़ बड़े-बड़े मोतियों के दाने। बाँहों पर कुहनी से ऊपर दो इंच चौड़े बहुमूल्य बाजूबन्द पहनती हैं, जिनके ऊपर विभिन्न जाति के मूल्यवान जवाहिरात जड़े होते हैं। चारों तरफ़ मोतियों के छोटे-छोटे गुच्छे लटकते हैं। कलाई पर बड़ी

क़ीमती पहुँचियाँ या मोतियों के गुच्छे १० या १२ पंक्तियों में होते हैं। इस तरह पर इनकी नब्ज़ की जगह इस तरह ढकी होती है कि मुझे बहुधा इस पर हाथ रखना बड़ा कठिन हो जाता था। उँगलियों में बहुमूल्य अँगूठियाँ पहनती हैं, और दाहिने हाथ के अँगूठे में एक आरसी होती है जिसमें जवाहिरात का एक छोटा-सा गोल आइना तथा इर्द-गिर्द मोती जड़े होते हैं। इस आइने में वे बार-बार मुँह देखती हैं, क्योंकि इस बात की वे शौक़ीन होती हैं, और हर-घड़ी इनकी दृष्टि इसी पर लगी रहती है। इनके कमरे के चारों ओर सोने का एक पटका दो अँगुल चौड़ा होता है, जो सारे-का-सारा जवाहिर से भरा हुआ होता है। इज़ारबन्द दोनों सिरों पर, जो इन के पाज़ामों को बाँधने का काम देता है—पाँच अँगुल लम्बे पन्द्रह लड़ के मोतियों के गुच्छे लटकते हैं, और टाँगों के नीचे के भाग में या तो सोने की पाजेब, या बड़े-बड़े मोतियों की लड़ियाँ। इन गहनों के सिवाय—जिनका मैं इस स्थान पर उल्लेख नहीं करता—और जो वे अपनी-अपनी इच्छानुसार पहनती हैं, इन शाहज़ादियों के पास उपरोक्त गहनों के छः से लेकर आठ तक जोड़े होते हैं। इनकी पोशाकें बहुमूल्य और इत्र-गुलाब में बसी हुई होती हैं। दिन-भर में कई-कई बार में वे वस्त्र बदलती हैं, क्योंकि पूर्वीय देशों में ऋतु में कई परिवर्तन होते रहते हैं। जब ये महिलायें अपने जवाहिरात को बेचना चाहें, तो इनके लिये ऐसा करना असम्भव हो जाता है; क्योंकि मुझे मालूम है कि शाहज़ादा अकबर जब शिवाजी के इलाके में था, तो रुपया समाप्त हो जाने के कारण उसने पाँच लाल गोआ में बेचने के लिये भेजे थे, जो इन्हीं जवाहिरातों के बराबर थे। पर इन्हें ख़रीदने पर कोई राजी न था। क्योंकि एक तो उनकी क़ीमत बहुत माँगी गई थी, दूसरे वह छिपे हुए न थे।

"हिन्दुस्तान में सभी स्त्रियाँ अपने हाथों और पैरों में एक प्रकार की मिट्टी लगाती हैं—जिसे मेंहदी कहते हैं। इससे उनके हाथ-पाँव लाल रँग के हो जाते है। मानो, इन्होंने दस्ताने पहन रखे हैं। इनके ऐसा करने का कारण यह है कि चूँकि यह देश बहुत गर्म है, इसलिये न तो यहाँ दस्ताने और न मोजे ही पहने जाते हैं। इसी कारण से इनको ऐसी बारीक पोशाक पहननी पड़ती है कि शरीर के अंग-प्रत्यंग भी दीख पड़ते हैं। इन

वस्त्रों को साड़ी और मलमल कहते हैं। यह एक या दो या तीन कपड़े पहनती हैं, जिनका वज़न अधिक से अधिक आधी छटाँक होता है। परन्तु मूल्य उनका ४०) से ५०) रुपया तक होता है। स्मरण रहे, इसमें उस सुनहरी किनारी का मूल्य शरीक नहीं है, जो वे उनमें लगाती हैं। ये स्त्रियाँ इन्हीं वस्त्रों में सोती और चौबीस घण्टे बाद इन्हें बदल डालती हैं, जिसके बाद फिर इन्हें नहीं पहनतीं, बल्कि अपनी बाँदियों को दे डालती हैं।

"इनके बाल सदा अच्छी तरह गुँथे रहते हैं और सुगन्धित तेलों से तर रहते हैं। सर पर वे भिन्न-भिन्न-प्रकार और रंगों के दुपट्टे पहनती हैं, जो जरबफ्त के होते हैं। सर्दी की ऋतु में भी, जब यहाँ गर्मी कम होती हैं—क्योंकि बर्फ़ जमना तो यहाँ होता ही नहीं—ये यही वस्त्र पहनती हैं, परन्तु ऊपरी वस्त्र के ऊपर काश्मीर की बनी हुई एक ओढ़नी, जो लम्बा-सा खुला चोग़ा होता है, पहन लेती हैं, और दूसरे वस्त्रों के ऊपर अत्यन्त सुन्दर शाल ओढ़ लेती हैं, जो इतना बारीक होता है कि छोटी अँगूठी से निकाला जा सकता है। रात के समय बहुधा इनका यह विनोद होता है कि बड़ी-बड़ी भारी मशालें जलवादें, जिन पर वे डेढ़ लाख से ज्यादा रुपया खर्च कर देती हैं। ये मशालें, तेल या मोम की होती हैं। इन शहज़ादियों में से कोई-कोई बादशाह की आज्ञा से सिर पर पगड़ी बाँधती हैं, जो कि मोतियों और बहुमूल्य जवाहरातों से जड़ी होती हैं, और इनके सौन्दर्य को चौगुना कर देती हैं। नाच रंग आदि में तवायफ़ों को भी यही हक़ प्राप्त होता है। इन बेगमों और शाहजादियों को अपने-अपने रुतबे या ख़ानदान के अनुसार वेतन मिलता है, जो 'याहान' कहाता है। इसके सिवा वे बहुधा बादशाह के पास से सुगन्ध, वस्त्र और जूते आदि ख़रीदने के बहाने से खास भेंट नक़द रुपये की सूरत में भी प्राप्त करती हैं। इस तरह पर वे बेगम अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं, और इनका काम सिवाय इसके और कुछ नहीं होता—कि अपना साज शृंगार करती रहें, और शान-शौक़त दिखावें, दुनिया में इनकी प्रसिद्धि हो, और वह बादशाह को प्रसन्न करने में सफल हों। यद्यपि इनमें परस्पर बहुत ही विद्वेष होता है, परन्तु ऊपर से वे इसे प्रकट नहीं होने देतीं। इतने निठल्लेपन, मस्ती और ठाठ- बाट में यह असम्भव है कि इनके मन में बुराइयाँ उत्पन्न न होती हों;

क्योंकि वे कभी मृत्यु का विचार भी नहीं करतीं। सारे महल में ऐसा शब्द कभी किसी के मुँह से नहीं सुना जाता, और न कोई ऐसी घटना ही होती है, जिससे मृत्यु का भय इनके सम्मुख आ सके। जब इनमें से कोई रोगिनी हो जाती है, तो उसे एक सुन्दर महल में ले जाते हैं, जिसको बीमारख़ाना कहते हैं। यहाँ पर अत्यन्त सावधानी से उनकी चिकित्सा और परीक्षा होती है, और वहाँ से वे आरोग्य-लाभ करके या मरकर ही बाहर आती हैं। यदि रोगी ऐसा हो, जिसके लिये बादशाह के हृदय में ख़ास इज्जत हो, तो रोग के प्रारम्भ में वह एक बार उसकी ख़बर लेने आते हैं। परन्तु अगर वह जल्द आरोग्य न हो, तो फिर उसके पास नहीं जाते, बल्कि समय पर किसी गुलाम को भेजकर उसके समाचार मँगा लेते हैं। यद्यपि महल की स्त्रियाँ, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, प्रत्येक प्रकार का ठाठ-बाट, दिखावा करती और बड़ी नज़ाकत से रहती हैं, पर औरङ्गजेब इसमें कोई दख़ल नहीं देता। क्योंकि सब लोग रूपवती स्त्रियों के बड़े शौक़ीन होते हैं, और जगत् में यही एक चीज है, जो प्रसन्नता प्रदान कर सकती है। मुग़ल-सम्राटों का तो यह एक नियम ही हो गया है। परन्तु वर्तमान बादशाह अपने पिता शाहजहाँ की तरह ठाठ-बाट से नहीं रहता। इसके कपड़े अत्यन्त सादे होते हैं पगड़ी में साफ़ तुर्रा और छाती पर एक हार के सिवाय यह कोई जेवर नहीं पहनता। यद्यपि उसकी सन्तान—बल्कि चौथी पीढ़ी तक सब-के-सब, मोतियों की मालाएँ पहनते हैं। परन्तु वह इस ओर से उदासीन है। इसके वस्त्र अत्यन्त मामूली क़ीमत के कपड़े के होते हैं। यहाँ तक कि इस पर १०) से ज्यादा लागत नहीं होती। जितने जवाहरात वह पहनता है, उनके नाम किसी-न-किसी नक्षत्र पर रखे हुए होते हैं। जैसे सूर्य्य, चन्द्र या कोई और नक्षत्र—जैसा हकीमों ने बतला दिया है। क्योंकि, वह जब कोई जवाहरात माँगना चाहे, तो वह यह नहीं चाहता कि असली नाम लेकर पत्थर माँगे, इसलिये यह कहता है—'महताब लाओ।' 'आफ़ताब लाओ।' इन जवाहरातों में से बादशाह को कई तो मुग़ल सम्राट् तैमूर आदि अपनी पूर्वजों से विरासत में मिले हैं। साथ ही कई-एक गोलकुण्डा या बीजापुर की रियासतों से प्राप्त हुए हैं। महल में छोटे-बड़े सब प्रकार के लालों की यद्यपि कमी नहीं—फिर भी जवाहरात की ख़रीद बराबर जारी रहती

है। जब महल में कोई शाहज़ादी पैदा हाती है तो स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्न होतीं, और मन का हर्ष प्रकट करने के तौर पर अंधाधुन्ध खर्च कर डालती हैं। पर जब शाहज़ादा पैदा होता है, तो दरबार भी उस प्रसन्नता में भाग लेता है। राग-रंग होते और बाजे बजते हैं, और जितने दिन तक बादशाह हुक्म दे, जश्नों की महफ़िलें गर्म रहती हैं। अमीर-उमरा रुपया, हाथी, घोड़े आदि तोहफ़े लेकर बधाइयाँ देने आते हैं। इसी दिन बादशाह शाहज़ादे का नाम रखता है, आर उसका 'याहान' नियत करता है, जो सदा राज्य के बड़े-से-बड़े जनरल की तनख्वाह से अधिक होता है। इसके सिवा शाहज़ादे के नाम पर ज़मीन के बड़े-बड़े टुकड़े नियत किये जाते हैं, और साल के बाद इस जमीन की पैदावार से जो-कुछ आमदनी हो, खज़ाने में इसके नाम पर अलग जमा की जाती है। और इसकी जब शादी हो जाती है और इसे रहने को अलग मकान दिया जाता है, तो वह रुपया इसे दे दिया जाता है। इन शाहज़ादों में किसी की तनख़ाह ५० हज़ार से ज्यादा नहीं होती, और यह रक़म भी बहुधा सब से बड़े पुत्र को जाती है। आज-कल शाह-आलम यही तनखाह ले रहा है। परन्तु इसकी अपनी आमदनी दो करोड़ रुपये से ज्यादा है। इसके महलों में १००० के क़रीब स्त्रियाँ हैं, और उसके दरबार की शान बिलकुल बादशाह के दरबार-जैसी है। जब ये शाहज़ादे एक बार शाही महल से बाहर आ जाते हैं, तो फिर गुप्त रीति से हिन्दू-राजाओं और मुसलमान-जनरलों को इनाम-इकराम और वेतन बढ़ाने के लालच आदि देकर उन्हें अपना मित्र बनाना शुरू कर देते हैं। वह भी इससे सहमत हो जाते हैं, और जब यह शाहज़ादा बादशाह हो जावे, तो वह यही समझता है कि यह अमीर इसके पक्ष में हैं। जब किसी शाहज़ादे के यहाँ लड़का पैदा हो, तो बादशाह उसका नाम रखता है, और वही उसका वेतन भी नियत करता है, जो दो-तीन सौ रुपये रोज़ाना तक पहुँचता है। बच्चे का बाप भी आमदनी के अनुसार उसका वेतन नियत कर देता है—जब तक कि वह विवाह योग्य अवस्था को न पहुँच जावे और जब कि उसे विशेषतः तड़क-भड़क करनी पड़ती है। बादशाहज़ादे और उनके पुत्र 'शाहज़ादे' कहाते हैं,और उन्हें सुलतान की पदवी दी जाती है। बादशाह को जो नज़रें भेंट की जाती है, वह उन्हें मालिक की हैसियत से स्वीकार करता है। अर्थात् वह

समझता है कि भेंट देने वाला अपनी आधीनता प्रकट करने के तौर पर यह भेंट दे रहा है और इसे लेना बादशाह का अधिकार है। बाहर की भेंट लेने पर भी यही ख़्याल किया जाता है। क्योंकि उन्हें वसूल करते समय बादशाह प्रकट करता है कि मानो उसे स्वीकार करके वह कोई ख़ास कृपा कर रहा हो; क्योंकि वह अपने-आपको दुनिया में सबसे बड़ा बादशाह समझता है। इसी प्रकार से जब वह किसी बादशाह को कुछ लिखे, तो उसे भी अमीर या रेजीडेण्ट कहकर सम्बोधन करता है। यदि कोई आदमी स्थान या नौकरी प्राप्त करने की इच्छा से कोई भेंट उपस्थित करे, और फिर उसे वह जगह न मिले, जैसा कि कभी-कभी होता है, तो उसकी भेंट व्यर्थ ही जाती है। मुझे खूब याद है कि एक फ्रान्सीसी सौदागर मोशिये-पेशियन के साथ यही घटना हुई थी, जिसने इस आशा पर कि बादशाह इसके तमाम जवाहिरात ख़रीद लेगा—एक हज़ार रुपये क़ीमत का एक जमर्रुद भेंट किया था। पर जब बादशाह ने इनमें से एक भी न ख़रीदा, तो वह बहुत पछताया, और मुलताफ़ख़ाँ से, जो इस समय शाही ख़िलवत-ख़ाने का अफ़सर था, जाकर अनुनय-विनय करने लगा कि उसका जमर्रुद वह उसे वापिस दिला दे। इसमें सन्देह नहीं कि मुलताफ़ख़ाँ की सिफ़ारिश से वह जमर्रुद उसे वापिस मिल गया, पर फिर भी उस पर उसका आधा मूल्य खर्च होगया; और यह भी बादशाह की उस पर विदेशी होने के कारण कृपा थी। भारतवर्ष में यह एक प्रथा-सी होगई है, कि वसीले और रुपया ख़र्च किये बिना कुछ नहीं मिल सकता। यहाँ तक कि जब शाहज़ादे भी कोई मतलब सिद्ध करना चाहें, तो बिना रुपया ख़र्च किये नहीं कर सकते। साल-गिरह या अन्य त्यौहार के अवसरों पर और ख़ासकर नौ-रोज के दिन—जब, जैसा कि मैं आगे मलकर बताऊँगा, बादशाह और शाहज़ादे अपने-आपको तौलते हैं, तमाम अमीरों की स्त्रियाँ बेगमों और शाहज़ादियों को मुबारिकबादी देने के लिये जाती हैं। यह भी, ख़ाली हाथ नहीं—सदैव बहुमूल्य भेंट लेकर आतीं और इस त्यौहार की समाप्ति तक, जो बहुधा छः से नौ दिन तक रहता है—दरबार ही में रहती हैं। नाचने और गानेवालियाँ बधाई गा चुकती हैं, तो बेगमात सोने-चाँदी की बनी हुई किश्तियाँ प्रदान करती हैं। तमाम ज़नाने पहरेदारों को सिर से पैर तक वस्त्र और जवाह-

रात दिये जाते है, तथा तनख़्वाहों में तरक्की की जाती है। अमीरों की स्त्रियाँ भी जब आती हैं, तो इन्हें बहुमूल्य वस्त्र और जवाहरात मिलते हैं, और जब वह बिदा होती हैं, तो उनके हाथ खिचड़ी से भरे होते हैं। खिचड़ी एक प्रकार का खाना है; जो भिन्न प्रकार की मेवा और फलों को मिलाकर तैयार किया जाता है। पर स्मरण रहे, इनकी खिचड़ी साधारण खिचड़ी नहीं होती, बल्कि सोने-चाँदी के सिक्कों और बहुमूल्य जवाहरात तथा छोटे-बड़े मोतियों की बनी हुई होती है। जिस दिन कोई शाहजादा या शाहजादी पैदा हो, तो बच्चे को एक पीले रेशम का तागा पहनाकर उसमें गाँठ दे दी जाती है, जो उस दिन का चिन्ह है, जब वह पृथ्वी पर जन्मा हो। अगले वर्ष उसी दिन एक और गाँठ दे दी जाती है। और इस वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में वैसे-ही और जल्से-जश्न और गाने-बजाने का बाजार गर्म रहता है। पैदा होने के थोड़ी देर बाद बच्चे का नार काटा जाता है, और १० धागे बाँधकर ४० दिन तक कुछ तावीजों के साथ उसके सिरहाने रख दिया जाता है। ४० दिन के बाद यह तार और तावीजों की थैली शाहजादे के गले में बाँध दी जाती है। मुग़ल-साम्राज्य में यह रस्म बिना पालन किये नहीं रह सकती।

"बहुधा औरङ्गजेब को 'पीर-दस्तगीर' कहकर पुकारते हैं। अर्थात् वह पूज्य पुरुष हाथ के हिलाने से दुःख और रंज दूर कर सकता है। जब यह छोटा शाहदादा, जिसका मैं जिक्र कर रहा हूँ, दो साल की आयु को प्राप्त होता है तो इसे पिता की भाषा या—तातारी, जो तुर्क की पुरानी भाषा है, सिखलाई जाती है। इसके बाद इसे विद्वानों और ख़्वाजासरों के हवाले कर दिया जाता है। वे इसे समस्त फ़ौजों और सांसारिक विद्यायें सिखा देते हैं। इस बात की विशेष चेष्टा की जाती है, कि वह बुरी आदत न सीखने पाये। विनोद के तौर पर कई नाटक आदि इसे दिखाये जाते हैं, या मुक़दमे पेश किये जाते हैं, जिनमें वह दोनों तरफ के बयान और जिरह आदि सुनकर फैसले करता है। इसी तरह इसको युद्ध में भी ले जाते हैं, जिससे यह अनुमान किया जाता है कि वह यदि कभी अधिकार प्राप्त करे, तो उसे संसार का कुछ-न-कुछ अनुभव हो, और वह प्रत्येक मामले पर ठण्डे दिल और दिमाग़ से ग़ौर कर सके।

"जब बादशाह शिकार खेलने को या मस्जिद में जाते हैं, तब इन छोटे शाहज़ादों को साथ ले जाते हैं। इस तरह ये महल के अन्दर सोलह साल की आयु तक रहते तथा शिक्षा पाते हैं। इसके बाद इनकी शादी की जाती है। ये आयु-भर महल ही में रहते हैं, और इन्हें खासी पेन्शन मिलती है। शादी के बाद शाहज़ादों को अलग महल प्रदान किया जाता है। इनके पास बहुत-सी आमदनी और दास-दासियों की एक बड़ी संख्या हो जाती है परन्तु अच्छे-अच्छे विद्वान् और जासूस सदा इनके साथ रहते हैं, जो बादशाह को सब बातों की सूचना देते रहते हैं। जब यह शाहजादे अपने-अपने महल में रहते हैं तो वे स्वयं उपरोक्त विधि से अपनी साल गिरह और त्यौहार मनाते हैं, और उनके अफ़सरों को उन्हें उसी प्रकार भेंट आदि देनी पड़ती है। सन् १६६६ ई० में, जब बादशाह आलमशाह औरङ्गाबाद में अपनी वर्ष-गाँठ की प्रसन्नता मना रहा था, तो उसकी माता ने कई बहुमूल्य भेंटें—जिनका मूल्य ५० हजार के लगभग था—उसे दीं, परन्तु इस पर भी उसने अप्रसन्न होकर शिकायत की, कि दूसरे वर्षों की अपेक्षा इस साल माता ने बहुत कंजूसी दिखाई है। इस तरह पर मल्का को विवश और भेंट देनी पड़ी। महल की आम शाहज़ादियों ने भी इसी तरह अपनी शक्ति के अनुसार भेंट दी। इन अवसरों पर इन बातों का यहाँ तक ख़्याल रखा जाता है, कि प्रत्येक आदमी, चाहे वह बड़ा आदमी हो, चाहे मामूली हैसियत का, अपनी सामर्थ्य के अनुसार अवश्य कुछ-न-कुछ ले जाता है। उन लोगों का वर्ष २२ मार्च को आरम्भ होता है, और उस दिन—जैसाकि कि मैं वर्णन् कर चुका हूँ, एक भारी महोत्सव मनाया जाता है। महल के इर्द-गिर्द और भीतर-बाहर बहुमूल्य पर्दे लटकाये जाते हैं, जो शाहजहाँ की आज्ञा से तख़्त ताऊस के साथ तैयार किये गये थे। यह तख़्त बहुत मूल्यवान् है, परन्तु बनाने वाले के भाग्य में इस पर बैठना नहीं लिखा था। औरङ्गजेब ने ही पहिले-पहल अपने राजतिलक के दिन इसका प्रयोग किया था। यह एक ऊँची छत के कमरे में रखा हुआ है, और उत्सव के दिन बादशाह इस पर विराजता है। उस दिन का यह दस्तूर है कि हिन्दुस्तान के इससे प्रथम के बादशाहों ने जो तख़्त काम में लिये थे, वे इस तख़्त के चारों तरफ—ज़रा नीचे, रखे जाते हैं।

"उस दिन पुरानी रीति के अनुसार शाही खानदान के तमाम व्यक्ति भिन्न-भिन्न रीति से तोले जाते हैं। प्रथम, हर प्रकार की धातुओं के साथ, जैसे सोना, चाँदी, ताँबा-आदि। फिर विविध प्रकार के वस्त्रों के साथ, जैसे ज़रबफ्त, कलाबत्तू, मख़मल-आदि। तत्पश्चात् भिन्न प्रकार के अन्नों के साथ जैसे गेहूँ, चावल, जौ-आदि। इससे अभिप्राय यह होता है, कि पिछले साल और इस साल के वज़न में अन्तर मालूम हो जाय। वे तमाम वस्तुएँ ग़रीबों में दान कर दी जाती हैं, और प्रत्येक का वज़न उस दिन की पुस्तक में दर्ज कर लिया जाता है। बादशाह को उस दिन खूब फायदा होता है। क्योंकि महल के प्रत्येक व्यक्ति और दरबार के अमीरों का कर्तव्य है कि उसे भेंट दें। उस दिन को नौरोज, यानी नयी साल कहते हैं। बादशाह भी इस दिन अनेक रीतियों से अपनी कृपायें प्रदान करता है। जैसे, उस दिन वह कई जगह नये हाकिम नियत करता है, कई जगह पुरानी बातों में परिवर्तन करता है, और बहुत-से लोगों को हाथी, घोड़े, जवाहरात, सरोपा-आदि देता है। जब वह सफ़र में हो, तो वैसी शान से उत्सव नहीं होता, न तख़्त लाये जाते हैं। क्योंकि वह दिल्ली के क़िले के बाहर नही लाये जाते।

"एक और त्यौहार भी है, जो बड़ी शान से मनाया जाता है। इसे ईद-कुरबानी, यानी कुर्बानियों का त्यौहार कहते हैं, जो इनके रोज़ों की समाप्ति पर होता है, और उस दिन बादशाह नौ बजे बड़े ठाठ-बाट के साथ महल के बाहर निकलकर मस्जिद में जाता है। वहाँ पर क़ाजी अज़म सात नम्बर के जीने के पास खड़ा हुआ, उसकी प्रतीक्षा कर रहा होता है। पहली रस्म हो चुकने के पीछे काजी बड़ी ऊँची आवाज से तैमूरलंग से आरम्भ करके तमाम मुग़ल-बादशाहों के नाम और उनकी प्रशंसा बड़ी सफाई के साथ और बढ़ा-चढ़ाकर सुनाता है। इसी तरह जब वर्तमान बादशाह का नाम आता है, तो वह उसकी प्रशंसा में बहुत-कुछ कहता है, जिसके साथ खुशामद की भारी मात्रा होती है। वह बादशाह को अनेक प्रकार के धार्मिक ख़िताब देता है, और अन्त में उसके गुणों की तारीफ़ के पुल बाँध देता है, तथा उसकी बहादुरी और न्याय की सराहना करता है। इस फतवे के पढ़ते समय यह अनिवार्य होता है, कि वह खूब सावधान रहे, और अपने हृदय की सभी बातों को बयान कर दे; क्योंकि जरा-सी भी

भूल या ग़लतबयानी करने पर सिर काटने के लिये जल्लाद उसके पीछे खड़ा रहता है। जब वह बात ख़त्म हो चुकती है, तो क़ाजी को ख़ुद बादशाह सिर से पैर तक के वस्त्र प्रदान करता है। मस्जिद से जिस समय चलते हैं, तो सीढ़ियों के नीचे कुरबानी के लिये एक ऊँट तैयार खड़ा रहता है। बादशाह अपनी सवारी पर सवार होकर उसकी गर्दन पर नेजे से वार करता है। यदि स्वयं ऐसा न करना चाहे, तो अपने पुत्रों में किसी को ऐसा करने की आज्ञा देता है। बहुधा जब शाहआलम दरबार में होता था, तो वह इस रस्म या कुरबानी को—जैसा कि यह लोग इसे कहते आये हैं—किया करता था। इसके बाद ग़ुलाम ऊँट को जमीन पर लिटाकर इसका गोश्त इस तरह बाँट देता है, मानों यह किसी महात्मा का प्रसाद है।

ख़्वाजासरों को—जिनका मैंने ऊपर नाम दिया है—नाजिर यानी सुपरिण्टेण्डेन्ट का ख़िताब मिला हुआ है। बादशाह, शाहज़ादे, शाहजादियाँ, बेगलात उन पर विश्वास करते हैं, और हर-एक बेगम, शहजादी या महल की अन्य स्त्री का एक-एक नाजिर होता है, जो इसकी जायदाद, जागीर और आमदनी का हिसाब-किताब रखता है, अथवा इनका प्रबन्ध करता है। तमाम अफ़सरों, नौकरों और ग़ुलामों को अपने तमाम कामों और तमाम कपड़े आदि का हिसाब इन ख़्वाजासराओं को देना होता है। बहुधा नाजिर की अधीनता में भी अन्य कई वृद्ध और जवान ख़्वाजासरा होते हैं, जिनका महल में आगमन लगा रहता है। इनमें से कोई चिट्ठी-पत्री आदि ले जाता है, और कइयों पर इधर-उधर के बहुत-से कामों की जिम्मेबारी होती है। कई-एक का फाटक पर यह काम होता है कि वह महल के अन्दर जाने वालों को देख लें, और इस बात की सावधानी रखें कि महल में शराब, भंग, अफीम या अन्य कोई नशे की चीज न जाने पाये, क्योंकि महल की तमाम स्त्रियाँ ऐसी-ऐसी नशीली चीजों को बहुत चाहती हैं। न महल के अन्दर गाजर, मूली, बैंगन और ऐसी सब्जी, जिनका नाम न लेना चाहिए, प्रवेश कहीं हो सकतीं। जब कोई स्त्री किसी को मिलने महल में आये—तो, यदि वह परिचित न हो, तो बिना इस बात का ख़्याल किये कि उसके पद की मर्यादा क्या है, उसकी तलाशी ली जाती है। इतनी कड़ाई का कारण यह है कि ख़्वाजासरों को इस बात का भय रहता है कि

कोई नवयुवक-मर्द ज़नानी पोशाक में महल के भीतर न चला जाय। जब राज-मिस्त्री या अन्य मजदूर वहाँ काम करते हों तो प्रत्येक दरवाजे से गुजरते हुए इनके नाम रजिस्टर में नोट किये जाते हैं। साथ-ही इनके चेहरों के निशान आदि, जिनसे इनकी पहचान हो सके, लिख लिये जाते हैं। एक क़ागज पर यह सब विवरण लिखकर ख़्वाजासराओं के सुपुर्द कर दिये जाते हैं,—इन्हें महल से इसी तरह बाहर ले जाते हैं, और वे इस बात की विशेष सावधानी रखते हैं कि वापस आने-वाला व्यक्ति वही और उसी हुलिये का है। इस तमाम सावधानी का कारण यह भय है, कि कहीं कोई आदमी भीतर रह जाय, या किसी को भीतर से बदलकर न भेज दिया जाय। दरवाज़ों पर स्त्रियाँ नियत होती हैं, जो बहुधा काश्मीर की होती हैं। उनका काम यह है कि जिस चीज की आवश्यकता हो, महल के भीतर ले आयें, और वहाँ से बाहर ले जायें। ये स्त्रियाँ किसी से पर्दा नहीं करतीं। महल के बड़े-बड़े दर्वाज़े सूर्यास्त होने पर बन्द कर दिये जाते हैं, और बड़े फाटक पर सिपाहियों का एक मजबूत दस्ता पहरे पर होता है। इसके सिवा उन पर मुहर भी लगा दी जाती है। सारी रात मशालें जलती रहती हैं। प्रत्येक के पास एक-एक घड़ियाल होता है, तथा एक स्त्री भी मौजूद रहती है, जिसे नाज़िर को प्रत्येक घटना और सब आने-जाने वालों के सम्बन्ध में रिपोर्ट देनी पड़ती है। जब किसी हकीम को महल के अन्दर ले जाने की आवश्यकता होती है, तो उसके सिर और शरीर को कमर-तक ढक दिया जाता है, और इस दशा में उसे ख़्वाजासरा अन्दर ले जाते हैं, तथा इसी प्रकार बाहर निकाल लाते हैं। अन्य अमीर भी अपनी स्त्रियों पर इसी प्रकार कड़ाई करते हैं, जैसा कि बादशाह। इसका कारण यह है कि, इस मामले में मुसलमान लोग बहुत अनुदार होते हैं, और उनका स्वभाव इतना शङ्काशील होता है, कि अपनी स्त्रियों को वे किसी के सामने जाने की आज्ञा नहीं देते। यही नहीं, हालत यहाँ तक पहुँची हुई है कि बहुत-सों को तो अपने भाइयों तक पर विश्वास नहीं। इस तरह स्त्रियाँ कड़ी निगरानी में बन्द रहती हैं, और कड़ी पाबन्दियों में दिन काटती हैं। न इन्हें स्वाधीनता है, न कोई काम। इसलिये तमाम दिन इन्हें शृंगार-पटाव के और कोई काम नहीं। इनके मन की भावनायें उत्तेजना से परिपूर्ण होती हैं।

इस बात का एक बार स्वयं इन स्त्रियों में से एक ने मेरे सामने इक़रार किया था। वह स्त्री आसफखाँ वज़ीर की पत्नी थी। इसका नाम नवल-बाई था। इसने मुझे बताया, कि 'मेरे ख्यालात सदा यह सोचने में लगे रहते हैं, कि कोई-न-कोई ऐसा ज़रिया हो, जिससे मैं अपने पति को प्रसन्न कर सकूँ, और वह दूसरी स्त्रियों के निकट न फटकें।' इससे यह नतीजा निकलता है, कि इन सबके विचारों की धारा केवल एक ही ओर है। उसके सिवाय कोई और विचार आता ही नहीं। अच्छे-अच्छे शोरबे-कबाब खाने और अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनने तथा जवाहरात और मोतियों से लदी रहने का उन्हें बड़ा चाव है। शरीर को सदा इत्र और सुगन्ध से तर रखने की उन्हें इच्छा होती है। हाँ, इस बात की इन्हें बेशक आज्ञा होती है कि स्वाँग-तमाशे और नाच देखें, इश्किया कहानियाँ और किस्से सुनें, फूलों की सेजों पर आराम करें, बागों में घूमें, बहते हुए पानी में किलोल करें, राग-रंग का आनन्द लें, आदि-आदि। कोई-कोई ऐसी हैं, जो केवल इसलिये समय-समय पर बीमारी का बहाना करती हैं, कि इस बहाने हकीम देखने आयेगा, तो बात-चीत करने और नब्ज़ छुआने का मौका हाथ आयेगा। हकीम आकर पर्दे में हाथ देखता है, तो वह उसे पकड़कर चूम लेती हैं, और धीरे-से दाँतों में दबा लेती हैं। बल्कि कई-एक तो उसे अपनी छाती पर रख लेती हैं। ऐसी घटनाएँ मेरे साथ कई बार हुई हैं। परन्तु मैंने ऐसा प्रकट किया, मानो कुछ हुआ ही नहीं। अन्यथा इर्द-गिर्द की स्त्रियाँ और ख्वाजासरा असल मामले को भाँपकर सन्देह में पड़ जाते। ये स्त्रियाँ हकीमों से बहुधा उत्तम व्यवहार करती हैं, और वह भी इनके साथ बात-चीत अथवा अन्य विषयों में बड़ी बुद्धिमानी से पेश आते हैं। कारण यह कि इनकी भाषा मँजी हुई और संयत होती है। ये दरबार के उमराओं को दवाइयाँ देने में बड़ी उदारता दिखाती हैं, और उनके लिये —जिनकी वे इज्जत करती हैं—तरक्की और ख़ास नौकरियाँ प्राप्त करने में बुद्धिमान होती हैं। इनके तोहफ़े बहुधा घोड़े, सरापा, तुर्रा तथा अन्य चीजें होती हैं।

"शायद ही इनकी कोई ऐसी सेवा की जाती होगी, या इनसे कोई अच्छा सलूक किया जाता होगा, जिसका वह एक या दूसरी तरह से बदला

न चुका देती हों। हाँ, इतना अन्तर अवश्य होता है, कि प्रत्येक आदमी को अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार ही सब मिलता है;—या, यह कि जितना वे इन महिलाओं के दिल पर अपना प्रभाव जमा सकें। मैंने देखा है, कि औरङ्गजेब की लड़ाई ने नवाब जुल्फ़िक़ारखाँ और उसके पिता के साथ भिन्न-भिन्न व्यवहार किये थे। इस नवाब को बादशाह ने कर्नाटक का हाकिम बनाकर भेजा था, और चलने से प्रथम वह इस शाहजादी से बिदा होने गया; क्योंकि इसका विवाह इसके किसी सम्बन्धी से ही हुआ था। शाहजादी ने चलते समय इसे एक पान की डिबिया और एक सोने का पीकदान प्रदान किया था, जो चारों तरफ कीमती जवाहरात से जड़ा था। इस घटना के एक साल बाद कुछ सरकारी कारणों से बादशाह ने अपने पुत्र कामबख़्श को वजीर आसफ़खाँ की आधीनता में उसी ओहदे पर नियुक्त करके भेजा, और जब वजीर इस शाहजादी से मिलने आया, तो उसने चलते वक्त एक पान की डिबिया प्रदान की—जो चाँदी की थी। इस पर आसफ़खाँ ने इतने कम मूल्य का तोहफा देखकर शिकायत करते हुए कहा—"कम-से-कम मुझे अपने प्यारे पुत्र से अधिक नहीं, तो उसके बराबर तो मिलना चाहिये; क्योंकि मैं उसका पिता हूँ, और उससे ऊँचा पद रखता हूँ, तथा साम्राज्य का प्रधान-मन्त्री हूँ।"

"शाहजादी—परन्तु उनमें और आप में एक अन्तर भी है। वह यह कि आपका पुत्र हमारा सम्बन्धी है, परन्तु आप केवल नौकर हैं।" यह सुनकर बेचारा बूढ़ा कुछ न बोल सका, और कोर्निश करके चलता बना।—क्योंकि सभी शाही व्यक्तियों को उसी तरह अभिवादन करना पड़ता है, चाहे उनका बादशाह से कैसा-ही निकट का रिश्ता क्यों न हो।

"इन स्त्रियों से विदा माँगने की विधि वह नहीं, जो आपमें से बहुतों का विचार होगया है; क्योंकि इन्हें कोई देख तो पाता नहीं, इसलिए मैं यहाँ उसका भी कुछ वर्णन किये देता हूँ। जब किसी आदमी को इनसे बिदा होना हो, तो वह पहले महल के दरवाजे पर जाकर ख़्वाजासराओं से कहता है कि मैं इस मतलब से आया हूँ, और अमुक व्यक्ति को मेरे आने की सूचना दे दो। ख़्वाजासरा यह सन्देशा भीतर ले जाकर उसका जवाब ले आते हैं। जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, इन स्त्रियों में से कोई बाहर नहीं निकलती;

सिवाय उस दशा के, जबकि कोई खास कारण हो। किन्तु उस समय भी वह पर्दे में ढकी हुई, पालकियों में सवार होती हैं, जिनमें छोटी-छोटी खिड़कियों में सोने की जालियाँ होती हैं, और जिनके भीतर से वे देख सकती हैं। अभिप्राय यह है कि कोई आदमी इन महिलाओं के निकट नहीं पहुँच सकता, सिवाय इनके पतियों के, या उन हक़ीमों के, जो इनकी नाड़ी देखते हैं। अमीर-उमरा घोड़े से उतरकर कोर्निश बजा लाते हैं। इनमें जिन व्यक्तियों से वे ज्यादा प्रीति करती हैं, उन्हें निकट आने की आज्ञा देती हैं, और अन्तिम सलाम के तौर पर अपनी सवारी से ही ख़्वाजासरा के हाथ पान भेज देती हैं, जिसे लेकर अमीर एक और कोर्निश बजाकर चल देते हैं। यह प्रतिष्ठा कई अवसरों पर मुझे भी प्राप्त हुई है। एक बार बादशाह-बेगम यानी शाह आलम की माता ने मुझे अपनी प्रसन्नता और शाहजादे के साथ रहने के कारण दरबार में जाने के समय मेरी सेवाओं के प्रति ऐसा ही किया था। वह बेगम मेरे साथ बहुत प्रेम करती थी; क्योंकि मैंने कई बार इनका इलाज किया था, और इनकी फ़स्द खोली थी। रोगी रहने के कारण बहुधा इन्हें मेरी सेवाओं की आवश्यकता रहती थी, और चूँकि मैं ही इसके लिये नुस्खा तजवीज़ किया करता था, इसलिये वह कोई-न-कोई उम्दा चीज बहुधा मुझे भेज दिया करती थी, जैसा कि ऐसी महिलाओं का, उन लोगों के साथ, जिनकी वे प्रतिष्ठा करती हों—करने का दस्तूर है। जब मुझे इनकी फ़स्द खोलनी पड़ती थी, तब वह अपने पैर को परदे से बाहर निकाल देती थीं, जो रंगों के निकट एक-दो अंगुल चौड़ी जगह के सिवाय सब-का-सब ढका होता था। उस इलाज़ के लिये मुझे ४००) और सरोपा मिलता था। बाक़ायदा साल में दो दफ़ा इनकी फ़स्द खोलनी पड़ती थी। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि प्रथम इसके कि कोई फिरंगी इन शाहजादों के यहाँ हकीम बन सके, उसे मुद्दत तक अपनी योग्यता-आदि का प्रमाण देना पड़ता था; क्योंकि ये लोग इन मामलों में शक्की और नाजुक-तबियत के होते हैं। हर महीने और शाहजादियाँ, इसी तरह से, जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूँ, फ़स्द खुलवाती हैं। यही विधि इस समय काम में लाई जाती है, जब उन्हें पाँव से खून निकलवाना हो—या, किसी ज़ख्म या फोड़े की मरहम-पट्टी आदि करानी हो। सिवाय

घायल स्थान या उस रग के, जिससे खून निकालना हो, बाकी शरीर का कोई भाग नंगा नहीं किया जाता। जब मैं शाहआलम की स्त्रियों और बेटियों की फ़स्द खोलने को जाया करता था, तो मुझे प्रति रोगी २००) और एक सरोपा मिलता था। परन्तु यदि स्वयं शाहज़ादे का, जो मेरा स्वामी था, खून निकालाना होता, तो बादशाह की आज्ञा के बिना ऐसा नहीं किया जा सकता, और तब मुझे ४००) रुपये, एक सरोपा और एक घोड़ा मिलता था। जब मैं चीर-फाड़ समाप्त कर चुकता, तो मुझे निकाले हुए रक्त की मात्रा और शाहज़ादे की इस समय की दशा की रिपोर्ट बादशाह को देनी होती थी, और उन सवालों का, जो वह पूछना चाहें—जवाब देना होता था। इसके बाद सरोपा प्रदान करके मुझे विदा कर दिया जाता था। शाहआलम के पुत्रों की फस्द खुलवाने के लिये मुझे २००) और एक घोड़ा, फी व्यक्ति प्रदान किया जाता था।"

बर्नियर ने औरङ्गजेब के दरबारियों और सरदारों-आदि का वर्णन इस भाँति किया है—

"बादशाह के दरबार में उपस्थित रहनेवाले अमीरों के अतिरिक्त प्रान्तीय तथा सैनिक अमीर भी होते हैं जो भिन्न-भिन्न स्थानों में रहते हैं। उनकी संख्या कितनी है; यह मैं ठीक नहीं कह सकता। बादशाह के दरबार में उपस्थित रहने वाले अमीरों की संख्या २५ से ३० तक है और जैसा कि पहले लिखा जा चुका है घोड़ों की संख्या के अनुसार उनका वेतन है जो एक हज़ार से बारह हज़ार रुपये तक होता है।

"ये अमीर राज्य के स्तम्भ हैं। इनको राजधानी अथवा दूसरे नगरों की सेना में बड़े-बड़े उच्च पद और अत्यन्त माननीय ख़िताब दिये जाते हैं। इनसे राज-दरबार की शान बनी रहती है। जो राजधानी में रहते हैं, वे बहुत उत्तम वस्त्र पहने बिना कभी घर से बाहर नहीं निकलते और कभी हाथी-घोड़े पर और कभी पालकी में सवार होते हैं। इनके साथ में सवारों के अतिरिक्त पैदल ख़िदमतगार व्यक्ति भी होते हैं जो सवारी के आगे-आगे दोनों तरफ पैदल चलते हैं और केवल रास्ते में से लोगों को हटाते और गर्द झाड़ते हैं। बल्कि कोई-कोई तो पीकदान, जल की सुराही, हुक्का

और कभी-कभी क़िस्से-कहानी की कोई पुस्तक अथवा कागज़ लेकर ही साथ-आथ रहते हैं।

"प्रत्येक अमीर के लिये यह आवश्यक है कि प्रति दिन प्रातःकाल ११ बजे, जब तक बादशाह दरबार में बैठता है और फिर संध्या के समय ६ बजे सलाम करने के लिये उपस्थित हो, और प्रत्येक को अपनी-अपनी बारी पर दुर्ग में उपस्थित होकर सप्ताह में एक दिर पहरा देना पड़ता है। उस समय ये लोग बिछाने के वस्त्र और क़ालीन अपने साथ ले जाते हैं परन्तु भोजन इन्हें शाही भोजनालय से ही मिलता है जिसको लेते समय एक विशेष प्रकार की प्रथा के अनुसार कार्य किया जाता है। अर्थात् खड़े होकर आर बादशाह के तथा बादशाह के महल की ओर मुँह करके अमीर तीन बार झुक कर सलाम करते हैं। फिर अपना हाथ प्रथम भूमि तक लेजाकर फिर मस्तक तक उठाते हैं।

"जब कभी बादशाह पालकी, हाथी या तख्त पर सवार होकर निकलता है तो बीमार या वृद्ध अथवा उन आदमियों को छोड़कर जो किसी विशेष कारण से मुक्त होते हैं सब अमीरों को उसके साथ अवश्य ही रहना पड़ता है। हाँ, जब वह नगर के निकट शिकार चेलने या बाग़ में या किसी मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिये जाता है तो केवल कभी-कभी वही अमीर उसके साथ जाते हैं जिनकी उस दिन चौकी होती है। नियम यह है कि बादशाह चाहे शिकार में हों चाहे सेना लेकर किसी लड़ाई में जायें अथवा एक नगर से दूसरे नगर को जाते हों छत्र-चँवर आदि उनके साथ रहते हैं और अमीरों को—चाहे कैसी ही कड़ी धूप पड़ती हो वर्षा हो या गर्मी के मारे दम घुटा जा रहा हो—घोड़ों पर चढ़कर बिना किसी प्रकार की छाया के साथ-साथ रहना होता है।

मनसबदार एक प्रकार के सवार हैं, जो मन्सब या वेतन पाते हैं। उनका वेतन माक़ूल और उनकी प्रतिष्ठा के योग्य होता है। यद्यपि वह अमीरों के वेतन के समान नहीं है—परन्तु साधारण सवारों से बहुत अधिक है। इसी कारण छोटी श्रेणी के अमीरों में इनकी गणना की जाती है। बादशाह के अतिरिक्त ये किसी के आधीन नहीं हैं, और जो काम अमीरों से लिया जाता है—वही इनसे भी लिया जाता है। यदि इनके पास भी कुछ

सवार हों, जैसा कि पहले नियत था, तो यह भी अमीरों के बराबर हो जायें। परन्तु आजकल इनके पास केवल दो-चार घोड़े रहते हैं, जिन पर बादशाही चिन्ह लगे रहते हैं। इनका वेतन कभी-कभी १५०) रु० मासिक तक होता है। परन्तु ७००) रु० मासिक से अधिक नहीं होता।

रोज़ीनेदार भी एक प्रकार के सवार ही हैं, जिनका वेतन प्रतिदिन मिल जाया करता है; जैसाकि स्वयं उनके नाम से प्रकट है। परन्तु इनकी आमदनी बहुत है। कभी-कभी तो ये लोग मनसबदारों से भी अधिक पा लेते हैं। तथापि विशेष प्रकार का वेतन होने के कारण अधिक वेतन से इनकी प्रतिष्ठा नहीं है, और मनसबदारों की भाँति ये लोग ऐसे क़ालीन और फर्श मोल लेने को विवश नहीं हैं, जो महलों में काम में आने के बाद मनसबदारों को लेने पड़ते हैं; तथा प्रायः जिनके लिये मनसबदारों को बहुत मूल्य देना पड़ना है। इन लोगों की संख्या बहुत अधिक है, और छोटे-छोटे कार्य इन लोगों के सुपुर्द हैं। इनमें बहुत-से मुत्मद्दी और नायब-मुत्सद्दी हैं, और बहुत-से इस काम पर नियुक्त हैं कि उन आज्ञा-पत्रों पर, जो रुपया देने के लिये लिखे जाते हैं—सरकारी मुहरें लगायें। उन्हींमें कुछ ऐसे हैं, जो इन आज्ञा-पत्रों का कार्य शीघ्र समाप्त कर देने के बदले घूस लिया करते हैं।

अब साधारण सवारों का वृत्तान्त सुनिये। ये उन अमीरों के आधीन होते हैं—जिनका हाल ऊपर लिखा जा चुका है। साधारण सवार दो प्रकार के होते हैं—एक तो दो घोड़ेवाले, जिनको बादशाही सेवा के लिये तैयार रखना अमीरों के लिये आवश्यक है, और जिनके घोड़ों की रानों पर उन अमीरों के चिह्न लगे रहते हैं। दूसरे एक घोड़ेवाले होते हैं, और दो घोड़ेवालों का वेतन और सम्मान एक घोड़ेवाले की अपेक्षा अधिक है। यद्यपि सरकार से एक घोड़ेवाले सवार के निमित्त २५) रु० मासिक के हिसाब से मिलता है; परन्तु सवारों को कम या अधिक देना बहुत-कुछ उनके सरदारों, अर्थात् अमीरों की उदारता पर निर्भर रहता है।

पैदल सिपाहियों का वेतन सब प्रकार के ऊपर लिखे कर्मचचारियों से कम है। इनकी श्रेणी के लोग बन्दूक़ची हैं। इन्हें आराम और शान्ति के समय भी बहुत-से बखेड़ों में रहना पड़ता है। अर्थात् बन्दूक चलाते समय

जब ये घुटने टेककर बैठते हैं, और अपनी बन्दूक को लकड़ी की तिपाइयों पर रखकर, जो बन्दूक के साथ लटकती है—चलाते हैं, तो उनकी यह बैठक देखने ही योग्य होती है, और इतनी सावधानी करने पर भी यह डर लगा रहता है, कि कहीं बन्दूक दाग़नेवाले की लम्बी दाढ़ी और आँखें न जल जाँय, अथवा किसी भूत-प्रेत के विघ्न से कहीं बन्दूक फट न जाय !

पैदल सैनिकों में किसी का वेतन २०) रु० मासिक है, किसी का १५) रु० और किसी का १०) रु०। परन्तु गोलन्दाज़ों का वेतन बहुत है,—विशेषकर विदेशी गोलन्दाज़ों का; अर्थात्—पुर्तगीजों, डचों, अँग्रेजों, जर्मनों और फ्रान्सीसियों का, जो गोआ और डचों तथा अँग्रेजों की कम्पनी के कार्यालयों से भाग आते हैं। प्रारम्भ में जब मुग़ल-लोग तोप चलाना अच्छी तरह नहीं जानते थे, इन विदेशी गोलन्दाज़ों को अधिक वेतन मिलता था, और उसमें से अब भी कुछ लोग हैं, जो २००) रु० मासिक तक पाते हैं। परन्तु अब बादशाह इन लोगों को बहुत कम नौकर रखता है, और २० रु० से अधिक वेतन नहीं देता।

तोपख़ाना दो प्रकार का है—एक भारी, दूसरा हल्का। भारी तोपखाने के विषय में मुझे स्मरण है कि जब बादशाह बीमारी के बाद सेना-सहित लाहौर के मार्ग से काश्मीर गया था—जिसको भारतवर्ष में द्वितीय स्वर्ग कहते हैं, तो उस यात्रा में जम्बूरकों अर्थात् ऊँटों पर एक प्रकार की बहुत छोटी-छोटी तोपें रखनेवालों के अतिरिक्त, जो दो-तीन सौ तेज ऊँटों पर थे, सत्तर भारी तोपें, जिनमें प्रायः विरजी तोपें थीं (ये छोटी तोपें दो-दो बन्दूकों के बराबर थीं) साथ थीं।

भारी तोपख़ाना बादशाह के साथ नहीं रहता था; क्योंकि आखेट करने या पानी के निकट रहने के अभिप्राय से बादशाह सीधे मार्ग से अलग होकर चलता था, और ये तोपें ऐसी भारी थीं कि दुर्गम मार्गों, नावों या पुलों पर से, जो शाही सेना के उतरने के लिने बनाये गये थे—जा नहीं सकती थी। परन्तु हल्का तोपख़ाना सदैव बादशाह के साथ रहता था। आखेट के स्थानों में, जो बादशाह के लिये ठीक किये हुए रहते हैं, और जानवरों को राकने के लिये, जिनकी नाके-बन्दी आखेट के समय की जाती है, जब बादशाह बन्दूक से अथवा और किसी प्रकार से आखेट करना चाहता

है, तो यह तोपखाना जितना शीघ्र सम्भव होता है, आगे के पड़ाव—जहाँ बादशाह और बड़े-बड़े अमीरों के खेमे पहले से लगे होते हैं—जा रहता है। बादशाही खेमों के सामने इन तोपों की लाइन लगा दी जाती है, और जब बादशाह पड़ाव में पहुँचता है, तो सबकी सूचना के लिये सलामी की जाती है।

"जो सेना प्रान्तों में नियत रहती है, उसकी, और बादशाह के साथ रहनेवाली सेना की अवस्था में इसके अतिरिक्त और कुछ अन्तर नहीं है। प्रान्तों में रहनेवाले सैनिकों की संख्या अधिक है। प्रत्येक प्रान्त में अमीर मन्सबदार, साधारण प्यादे और तोपखाने उपस्थित रहते हैं। एक दक्षिण प्रान्त में २५-३० सहस्र सवार रहते हैं, जो गोलकुण्डा के शक्ति-सम्पन्न बादशाह के धमकाने, और बादशाह-बीजापुर तथा उन राजाओं से लड़ने के लिये आवश्यक हैं, जो आपके बचाव के विचार से अपनी सेना लेकर बीजापुर के बादशाह से मिल जाते हैं। क़ाबुल-प्रान्त में जो सेना है, और जिसका ईरान, बिलोचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान तथा अन्यान्य पहाड़ी देशों के विरोध और उपद्रवों को रोक-थाम करने के लिये रहना प्रयोजनीय है, वह बारह अथवा पन्द्रह सहस्र से कम नहीं हो सकती। काश्मीर में चार सहस्र से अधिक सैनिक, और बङ्गाल में, जहाँ सदैव लड़ाई-भिड़ाई रहा ही करती है, बहुत अधिक सेना रहती है। कोई प्रान्त ऐसा नहीं है, जहाँ उसकी लम्बाई, चौड़ाई और अवस्था के विचार से कम या अधिक सेना रखना आवश्यक न हो। इसलिये समग्र सैन्य की संख्या इतनी अधिक है, जिस पर सहसा विश्वास नहीं हो सकता। पैदल सेना को, जिसकी संख्या कम है, अलग रखकर और घोड़ों की उस संख्या को, जो नाम-मात्र के लिये है, और जिसको सुनकर अनजान आदमी धोखा खा सकता है, छोड़कर, मैं तथा दूसरे जानकार लोग अनुमान करते हैं कि वे सवार, जो बादशाह के साथ रहते हैं, राजपूतों और पठानों-समेत पैंतीस या चालीस हजार होंगे, जो प्रान्तीय सैनिकों के साथ मिलकर दो लाख से अधिक हो जाते हैं।

"इस बात का वर्णन भी आवश्यक है कि अमीरों से लेकर सिपाहियों तक का वेतन हर दूसरे महीने बाँट दिया जाना प्रयोजनीय होता है; क्योंकि

वेतन के सिवा, जो कि बादशाही ख़जाने से मिलता है, कोई और द्वार उनके पेट पालने का नहीं है।

"आगरे और देहली के अस्तबलों में दो या तीन सहस्र तो केवल अच्छे घोड़े ही हैं, जो आवश्यकता के लिये सदा तैयार रहते हैं, और आठ या नौ-सौ हाथी तथा बहुत-से टट्टू और ख़च्चर और मजदूर भी होते हैं, जो उन असंख्य और बड़े लम्बे चौड़े ख़ेमों और उनके साथ छोटे ख़ेमों, तथा बेगमों और महल की अन्यान्य स्त्रियों, और सामान तथा बावर्चीख़ाने के असबाब और गंगा-जल आदि बहुत-सी वस्तुओं के उठाने के लिये होते हैं, जिनका यात्रा के समय बादशाह के साथ रहना आवश्यक रहता है।"

औरंगजेब के समय की दिल्ली, क़िला और तत्कालीन नागरिकता का वर्णन भी 'वर्नियर' इस भाँति करता है:—

"यह शहरपनाह नगर और क़िले, दोनों को घेरे हुए है, तथा उसकी लम्बाई इतनी अधिक नहीं है, जितनी लोग समझते हैं; क्योंकि तीन घण्टे में मैं उसके चारों ओर फिर आया हूँ। मेरे घोड़े की चाल एक फ्रान्सीसी 'लीग' या तीन मील प्रति घण्टे से अधिक न थी। मैं इसमें राजधानी के आस-पास की उन बस्तियों को नहीं मिलाता, जो बहुत दूर तक लाहौरी दरवाजे की ओर चली गई हैं, और पुरानी देहली के उस बचे हुए भाग को, और उन तीन-चार बस्तियों को भी नहीं मिलाता हूँ, जो राह के पास हैं; क्योंकि इन्हें भी उसी में मिलाने से शहर की लम्बाई इतनी बढ़ जाती है कि यदि शहर के बीचों-बीच एक सीधी रेखा खींची जाय, तो वह साढ़े-चार मील से अधिक होगी। यद्यपि बाग़ आदि के बीच में आजाने के कारण मैं नहीं कह सकता कि नगर का ठीक व्यास कितना है,—पर फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि वह कुछ छोटा-मोटा नहीं है।

"क़िला, जिसमें शाही महलसरा और मकान हैं, जिनका वर्णन मैं आगे चलकर करूँगा, अर्द्ध-गोलाकार सा है। इसके सामने जमना नदी बहती है। क़िले की दीवार और जमना नदी के बीच में एक बड़ा मैदान है, जिसमें हाथियों की लड़ाई दिखाई जाती है, अमीर सरदारों और हिन्दू-राजाओं की फौज बादशाह के देखने के लिये ख़ड़ी की जाती है, जिन्हें बादशाह महल के झरोखों से देखता है।

क़िले की दीवार अपने पुराने ढंग के गोल बुर्जों के कारण शहर-पनाह से मिलती-जुलती है। इसीलिये शहरपनाह की अपेक्षा यह अधिक सुन्दर है। साथ-ही यह शहरपनाह से ऊँची और सुदृढ़ भी है। इस पर छोटी तोपें चढ़ी हुई हैं, जिनका मुँह नगर की ओर है। नदी की ओर को छोड़कर क़िले की सब ओर गहरी और पक्की खाई बनी हुई है। इसके बाँध मजबूत पत्थर के बने हुए हैं। यह खाई हमेशा पानी से भरी रहती है, और इसमें मछलियाँ बहुत अधिकता से हैं। यद्यपि यह इमारत देखने में बड़ी मालूम होती है, पर वास्तव में यह दृढ़ नहीं है। मेरी समझ में एक साधारण तोपख़ाना इसे गिरा सकता है। इस खाई के निकट एक बहुत बड़ा बाग़ है, जिसमें बहुत सुन्दर और अच्छे फूल होते हैं। क़िले की लाल रंग की दीवार सामने होने के कारण यह बाग़ बहुत ही सुन्दर मालूम होता है। इसके सामने शाही चौक है, जिसके एक ओर क़िले का दरवाज़ा है, और दूसरी ओर शहर के दो बड़े बाज़ार आकर समाप्त होते हैं। जो नौकर प्रति सप्ताह यहाँ चौकी देने आते हैं, उनके खेमे इसी मैदान में लगाये जाते हैं, क्योंकि ये लोग, जो एक प्रकार के छोटे बादशाह होते हैं, क़िले में रहना स्वीकार नहीं करते, और इसीलिये क़िले में उमरा और मन्सबदारों का पहरा होता है। इस जगह सबेरे बादशाहों घोड़े फिराये जाते हैं; और वे उसके निकट ही एक बड़े अस्तबल में रहते हैं। इसी स्थान पर फ़ौज का मीरबख़्श नये सवारों के घोड़ों को देखता-भालता है, और तुर्की या और अच्छे मजबूत घोड़ों की रान पर बादशाही तथा उस अमीर का निशान लगवा देता है, जिसकी फौज में वे नौकर हों। इससे यह लाभ होता है, कि पेश करने के समय नये सवार इन्हीं घोड़ों को लेकर पेश नहीं कर सकते। इसी स्थान पर तरह-तरह की चीजों की बिक्री के लिये पेंठ लगती है। इसमें पेरिस के 'पॉण्ट नि-योफ़' की तरह भानमती का-सा खेल दिखानेवाले हिन्दू तथा मुसलमान नजूमी इकट्ठे होते हैं। ये झूँठे ज्योतिषी धूप में एक मैला क़ालीन का टुकड़ा बिछाये बैठे रहते हैं। उनके सामने एक बड़ी सी किताब खुली पड़ी रहती है, जिसमें ग्रहों के चित्र बने होते हैं, और सामने रमल फेंकने का पाँसा होता है। इसी प्रकार ये लोग राह-चलतों को धोखा देते और फुसलाते हैं। लोग उन्हें विद्वान् समझकर उनसे

प्रश्न करते हैं। एक पैसा लेकर ये लोग उस बेचारे को उसका भविष्य बतला देते हैं, और उनके हाथ और मुँह को अच्छी तरह देख-भालकर उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि वे वास्तव में कुछ हिसाब लगा रहे हैं। किसी काम के आरम्भ करने के लिये समय पूछने पर ये लोग मुहूर्त बतलाते हैं। नासमझ स्त्रियाँ सिर से पैर तक सफेद चादर ओढ़कर उनके निकट खड़ी रहती हैं। वे प्रायः अपनी सब बातों के सम्बन्ध में उनसे कुछ-न-कुछ पूछा करती हैं, और अपना सारा हाल उन्हें सुना देती हैं, ठीक वैसे ही—जैसे फ्रान्स में कोई स्त्री पादरी के सामने क्षमा किये जाने के लिये अपने सारे दोष कह-सुनाती हैं। इन मूर्खाओं को पूर्ण रूप से यह विश्वास होता है कि ग्रहों के फलों को बदल देना इन्हीं ज्योतिषियों के हाथ में है। इनमें सबसे विचित्र एक दोग़ला पुर्तगीज था—जो गोआ से भाग आया था। वह भी क़ालीन बिछाये हुए बड़े-ही शान्त भाव से बैठा रहता था। इसके पास बहुत-से लोग आया करते थे। यह व्यक्ति कुछ भी लिखा-पढ़ा नहीं था। इसके पास ज्योतिष के यंत्रों के स्थान में केवल एक पुराना जहाजी-दिग्दर्शक-यन्त्र या क़ुतुबनुमा था, और ज्योतिष की पुस्तकों के स्थान में रोमन कैथ-लिक ईसाईयों की नमाज की दो पुरानी सचित्र पुस्तकें थीं। वह कहा करता था—योरोप में ग्रहों के चित्र ऐसे ही होते हैं। एक दिन एक पादरी फ़ादर कुजी ने यह बात सुनकर उससे प्रश्न किया कि तू यह क्या कहता है। उसने निर्लज्जता से उत्तर दिया—'ऐसे मूर्खों का ज्योतिषी भी ऐसा ही होना चाहिये।'

यह हाल उन ग़रीब ज्योतिषियों का है, जो बाज़ारों में बैठे दिखाई देते हैं। पर जो ज्योतिषी अमीरों के पास जाते हैं, वे बहुत ही विद्वान् समझे जाते हैं। यों-ही ये लोग धनवान् बन जाते हैं। सारा एशिया इस व्यर्थ के वहम में फँसा हुआ है। स्वयं बादशाह तथा और बड़े-बड़े अमीर इन धोखेबाज भविष्य-वक्ताओं को लम्बे-चौड़े वेतन देते हैं, और बिना इनकी सलाह के साधारण काम भी आरम्भ नहीं करते। मानों यह न नजूमी भविष्य की सारी बातें जानते हैं। प्रत्येक काम के आरम्भ करने के लिये उत्तम समय नियत करते और क़ुरान के पन्ने उलट-पलटकर सब प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं। दिन के समय यही लोग सवारियों पर बैठकर व्यापार

और सराफ़े का अपना-अपना काम करते हैं, और ग्राहकों को माल दिखाते हैं। इन बराम्दों के पीछे असबाब-आदि रखने लिये कोठियाँ बनी हुई हैं, जिनमें रात के समय सारा असबाब रख दिया जाता है। इनके ऊपर व्यापारियों के रहने के लिये मकान बने हुए हैं, जो बाजार में देखने पर बहुत-ही सुन्दर मालूम होते हैं। ये मकान हवादार होते हैं, और इनमें गर्द या धूल बिलकुल नहीं जाती।

"यद्यपि शहर के भिन्न-भिन्न भागों में भी दुकानों के ऊपर इसी प्रकार के मकान होते हैं, पर वे इतने छोटे और नीचे होते हैं, कि बाजार से भली भाँति दिखाई नहीं देते। धनिक व्यापारी दूकानों पर नहीं सोते। वरन् रात को काम कर चुकने पर अपने अपने मकानों को, जो शहर में होते हैं—चले जाते हैं।

"इनके अतिरिक्त पाँच और बाजार हैं। यद्यपि उनकी बनावट आदि वैसी ही है, पर वे इतने लम्बे और सीधे नहीं हैं। और भी बहुत-से छोटे छोटे बाजार हैं, जो एक दूसरे को काटते हुए चले जाते हैं। यद्यपि उनके सामने की इमारतें महराब के ढंग की हैं, तथापि वे ऐसे लोगों के हाथ की बनी हुई होने के कारण, जिन्हें इमारत के सुडौल होने का कोई विचार नहीं था, इतनी सुन्दर, चौड़ी और सीधी नहीं हैं, जितने वे बाजार हैं, जिनका वर्णन मैंने अभी ऊपर किया है। शहर के गली-कूचों में मन्सबदारों, हाकिमों और धनी व्यापारियों के मकान हैं। उनमें भी बहुधा अच्छे और सुन्दर है।

"ईंट या पत्थर के बनेक मान बहुत ही कम हैं; कच्चे या घास-फूस के घर अधिक हैं। इतना होने पर भी वे सुन्दर और हवादार हैं। बहुत-से मकानों में चौक और बाग़ होते हैं। इनमें सब प्रकार की सुख-सामिग्री वर्तमान रहती है। जो मकान घास-फूस के बने होते हैं, वे अच्छी सफ़ेदी किये हुए होते हैं। इनमें साधारण नौकर, खिदमतग़ार और नानबाई आदि जो बादशाह के लश्कर के साथ जाया करते हैं—रहते हैं। इन्हीं के कारण नगर में प्रायः आग लगती है। गत वर्ष तीन बार ऐसी आग लगी कि तेज हवा के कारण, जो यहाँ गरमी के दिनों में चला करती है, कोई ६० हजार छप्पर जलकर ख़ाक हो गये, और कुछ ऊँट, घोड़े तथा परदेदार स्त्रियाँ भी इसमें जल-भुनकर राख हो गईं। ये स्त्रियाँ कुछ ऐसी लजीली होती हैं,

कि पुरुषों के सामने मुँह छिपाने के सिवा और कुछ इनसे होता ही नहीं। इसीलिये, जो स्त्रियाँ आग लगने के कारण जल मरीं, उनमें इतना साहस नहीं था, कि भागकर बच जायें। इन कच्चे और घास-फूस के मकानों के कारण ही मैं समझता हूँ, कि देहली कुछ देहातों का समूह या फ़ौज की छावनी है, पर भेद इतना है कि यहाँ कुछ थोड़ा-सा सामान आराम का भी है।

"अमीरों के मकान प्रायः नदी के किनारे और शहर के बाहर हैं। इस गरम देश में भी वही मकान अच्छा समझा जाता है, जिसमें सब प्रकार का आराम मिले, और चारों ओर से—विशेषतया उत्तर की दिशा से—खुली हवा आती हो। यहाँ वही मकान अच्छे कहे जाते हैं, जिनमें एक अच्छा बाग़, पेड़ और हौज हो, और दालान या दरवाज़े में छोटे-छोटे फ़ौव्वारे या तहखाने हों। इन तहखानों में बड़े-बड़े पंखे लगे होते हैं। और गर्मी के दिनों में सन्ध्या को (दोपहर से चार या पाँच बजे तक हवा ऐसी गर्म होती है, कि साँस नहीं लिया जाता) यहाँ बहुत आराम मिलता है, पर तहख़ानों की अपेक्षा लोग, खसख़ानों को अधिक पसन्द करते हैं। यह छोटे-छोटे ख़ास कमरे होते हैं, जो एक प्रकार की खुशबूदार घास की जड़ों से, बाग़ में हौज़ के निकट इस अभिप्राय से बनाये जाते हैं, कि नौकर चमड़े की डोलचियों में भर-भरकर अच्छी तरह उन पर पानी छिड़कें, और उन्हें तर कर सकें।

"जिस मकान के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे दालान हों, और वे किसी बाग़ के अन्दर बने हों—तो बहुत अधिक पसन्द किये जाते हैं। वास्तव में कोई बढ़िया मकान ऐसा नहीं है, जिसमें घरवालों के सोने के लिये आँगन न हो। वर्षा या आँधी के समय या सवेरे जब ठण्डी हवा चलती हो—ओस पड़ने लगती हो, तो पलँग को खसकाकर अन्दर कर लेते हैं। यह ओस यद्यपि अधिक नहीं होती, तो भी बदन में पैठ जाती है, तो कभी-कभी हाथ-पाँव ऐंठ जाते हैं।

"अच्छे घरों में बैठने के लिये फ़र्श के ऊपर रुई का एक भारी और चार अंगुल मोटा गद्दा बिछा रहता है, जिस पर गर्मी के दिनों में अच्छा कपड़ा (चाँदनी) और जाड़े के दिनों में रेशमी क़ालीन बिछाया जाता है।

इस दीवानख़ाने में अच्छे स्थान पर दो छोटे गद्दे पड़े रहते हैं, जिन पर रेशम की हल्के काम की सुज़नी—जिसमें सुनहरी और रुपहली ज़री की धारियाँ होती हैं, पड़ी रहती हैं। इस पर मालिक या और प्रतिष्ठित लोग, जो उनसे मिलने आते हैं, बैठते हैं। प्रत्येक गद्दे पर कमख़्वाब का एक तकिया पड़ा रहता है। इसके अतिरिक्त और लोगों के लिये दालान में इधर-उधर मख़मली और फूलदार रेशमी तकिये पड़े रहते हैं। ज़मीन से डेढ़ या दो गज की ऊँचाई पर भाँति-भाँति के सुन्दर ताक़ बने होते हैं, जिनमें चीनी के बर्तन और गुलदान रखे जाते हैं। दालान की छत पर बेल-बूटे बने होते हैं, और उन पर मुलम्मा किया हुआ होता है। पर मनुष्य या किसी और जीवित पदार्थ की तस्वीर उस पर नहीं होती; क्योंकि यह बात मुसलमानी धर्म में वर्जित है।

"भारतवर्ष के एक अच्छे मकान का यह पूरा वर्णन है। दिल्ली में ऐसे बहुत-से मकान हैं। मैं समझता हूँ कि भारतवर्ष की राजधानी के मकान, यद्यपि योरोप के मकानों से उनकी समानता नहीं हो सकती, सुन्दरता में किसी प्रकार कम नहीं हैं। वास्तव में योरोप के शहरों की सुन्दरता का कारण हैं वे बड़ी-बड़ी शानदार दुकानें, जिनका दिल्ली में अभाव है। यह शहर एक बड़े ज़बरदस्त बादशाह के दरबार का स्थान है, जहाँ पर बहुमूल्य चीज़ों की अच्छी दुकानों का होना एक आवश्यक बात है। पर फिर भी यहाँ कोई ऐसा बाजार नहीं है—जैसा हमारे यहाँ 'सेण्ट-डेनिस' है, और जिसकी समानता का बाजार कदाचित् एशिया-भर में न होगा।

"बहुमूल्य वस्तुएँ यहाँ प्रायः मालख़ानों में रखी रहती हैं, और इङ्गलैंड की तरह भड़कदार और बहुमूल्य असबाबों से दुकानें शायद ही कभी सजाई जाती हों। यदि किसी एक दूकान में पश्मीना, कमख्वाब, जरीदार कन्दीलें और रेशमी कपड़े आदि हैं, तो पास ही कोई पच्चीस दुकानों में चावल, दाल, घी, तेल और गेहूँ आदि अनेक प्रकार के अनाज—जो न केवल शाकाहारी हिन्दुओं के खाद्य-पदार्थ हैं, वरन् ग़रीब मुसलमानों और बहुत-से सिपाही भी यही खाते हैं—बोरियों में भरे हुए रखे रहते हैं। यहाँ, एक बाज़ार ऐसा है, जिसमें केवल मेवा बिकता है। गर्मी के दिनों में इन दुकानों में ईरान, बलख़, बुख़ारा और समरकन्द के मेवे बादाम, पिस्ता, किशमिश,

बेर, शफ़तालू और अनेक प्रकार के सूखे फल और जाड़े के दिनों में रुई की तह में लपेटे हुए बढ़िया ताजे अंगूर, जो विदेशों से आते हैं और नाशपाती तथा कई प्रकार के अच्छे सेव और सर्दे, जो जाड़ों-भर बिकते हैं, होते हैं। ये मेवे मँहगे मिलते हैं। इनके मँहगेपन का अन्दाजा आप इसी से लगा सकते हैं कि एक सर्दा पौने चार रुपये का मिलता है। इतना मँहगा होने पर भी यहाँ के लोग और मेवों की अपेक्षा इसे अधिक पसन्द करते हैं। अमीर लोग इसे बहुत अधिक ख़रीदते हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे आगा के यहाँ सबेरे भोजन के समय ५०) रु० के मेवे आते थे। गर्मी के दिनों में देसी खरबूजे बहुत संस्ते मिलते हैं। पर ये कुछ अधिक स्वादिष्ट नहीं होते। हाँ, वे ख़रबूजे, जिसका बीज ईरान से मँगवाया और यहाँ बोया जाता है, (प्राय: अमीर लोग ऐसा ही करते हैं) बहुत अच्छे होते हैं। इतना होने पर भी अच्छे और स्वादिष्ट ख़रबूजे यहाँ बहुत कम मिलते हैं; क्योंकि यहाँ की जमीन इनके अनुकूल नहीं है। गर्मी के दिनों में आम यहाँ बहुत सस्ते और अधिकता से मिलते हैं। पर देहली में जो आम पैदा होता है, वह न तो कुछ ऐसा अच्छा होता है और न बुरा। सबसे अच्छा आम बंगाल, गोलकुण्डा और गोंडा से आता है, जो वास्तव में बहुत अच्छा होता है, और जिसकी बराबरी कोई मिठाई भी नहीं कर सकती। तरबूज यहाँ बारहों मास रहता है। पर जो तरबूज देहली में पैदा होता है, वह नरम और फीका होता है। इसकी रंगत भी अच्छी नहीं होती। पर अमीरों के यहाँ कभी-कभी बहुत-ही स्वादिष्ट तरबूज देखने में आते हैं, जो इसके लिए बहुत धन व्यय करके बाहर से बीज मँगवाकर बड़ी सावधानी से पेड़ लगवाते हैं।

"शहर में हलवाइयों की दुकानें अधिकता से हैं। पर मिठाई इनमें अच्छी नहीं बनती। उन पर गर्द पड़ी होती है, और मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं। नानबाई भी बहुत हैं। पर यहाँ के तन्दूर हमारे यहाँ के तन्दूरों से बहुत ही भिन्न और बड़े होते हैं। इसी कारण रोटी न अच्छी होती है, और न भली-भाँति सिकी हुई। पर जो रोटी क़िले में बिकती है, वह कुछ अच्छी होती है। अमीर लोग तो अपने मकानों ही पर रोटियाँ बनवा लेते हैं। उनमें दूध, मक्खन और अण्डा डाला जाता है। इससे वह और भी

स्वादिष्ट हो जाती है। यद्यपि वह बहुत फूल जाती है, पर स्वाद उसका जली हुई रोटी-सा होता है। यह रोटी साधारण से लेकर विलायती चपाती की तरह होती है, पर पैरिस की 'गैलबिन' (एक प्रकार की रोटी)-सी स्वादिष्ट नहीं होती। बाज़ार में बहुत तरह का कबाब और कलिया बिकता है, पर मुझे विश्वास नहीं कि वह किसी अच्छे जानवर का माँस हो; क्योंकि मैं जानता हूँ कि कभी-कभी यह माँस ऊँट, घोड़े या बीमार पशुओं का भी होता है, और इसीलिये जो चीजें अपने मकान पर न बनाई जायँ, वे कभी खाने और व्यवहार में लाने योग्य नहीं होतीं। दिल्ली की प्रत्येक गली में माँस बिकता है। पर कभी बकरी के धोखे में भेड़ का भी माँस दे देते हैं। इसलिये इन सबों को अच्छी तरह देख-भालकर लेना-खाना चाहिये। यद्यपि बकरी व अन्य ऐसे पशुओं के माँस का स्वाद बुरा नहीं होता, पर वह कुछ गर्म होता है, तथा बादी करता और देर में पचता है। बकरी के बच्चे का माँस सब से अच्छा होता है। पर वह बाज़ार में नहीं मिलता। इससे जीवित बच्चा खरीदना पड़ता है। एक कठिनता तो यहाँ यह है कि सुबह का माँस शाम तक नहीं ठहरता। दूसरी यह कि जानवर दुबले मिलते हैं, जिससे उनके माँस का स्वाद बिगड़ जाता है। बाज़ार में क़साइयों की दूकानों पर भी दुबली बकरियों का माँस मिलता है, जो बहुधा कठोर होता है। पर मैं इन सब कष्टों से बचा हुआ हूँ। कारण यह है कि मैं इन लोगों के फन्दों से परिचित हूँ, और इसलिये अपने खाने का मूल्य बादशाह के बावर्चीखाने के दरोगा के पास क़िले में अपने नौकर के हाथ भेज देता हूँ, और वह मुझे खुशी से अच्छा भोजन देते हैं। यद्यपि इन चीज़ों पर उनकी लागत बहुत कम आती है, पर मैं उन्हें मूल्य कुछ अधिक देता हूँ। मैंने एक दिन अपने आग़ा से इस चोरी और चालाकी के विषय में कहा भी जिस पर वह बहुत हँसा। फ्रान्स में मैं ।।) में बादशाही भोजन कर लिया करता था। पर यहाँ यदि ऐसी चालाकी न करता, तो कदाचित् ३७५) रु० में जो मुझे मेरे आग़ा की सरकार से मिलते हैं, मेरा गुज़ारा कभी न होता और मैं भूखों मर जाता।

"इस देश के लोगों में दया अधिक है, और इसी कारण मुर्गी बाज़ार में दिखाई नहीं देती। पर नहीं मालूम, यह दया उन मनुष्यों के भाग्य में

क्यों नहीं होती, जो ज़नाने मकानों के लिये ख़ोजा बनाता हैं। चिड़िया बाज़ार में अनेक प्रकार की अच्छी और सस्ती मिलती हैं। यहाँ हर प्रकार की छोटी मुर्गी, जिसका चमड़ा काला होता है, और जिसका नाम मैंने 'जिप्सी' रखा है, मिलती है। कबूतर भी मिलते हैं, पर बच्चे नहीं मिलते। इसका कारण यही है कि यहाँ के लोग बच्चों को मारना बड़ी निष्ठुरता का कार्य समझते हैं, तीतर भी मिलते हैं, जो हमारे देश के तीतरों से छोटे होते हैं। किन्तु जाल में फाँसकर और पिंजरे में बन्द करके लाये जाने के कारण वे ऐसे अच्छे नहीं होते जैसे अनेक पशु। यही अवस्था यहाँ मुर्गियों और ख़रगोशों की होती है, जो जीवित पकड़े जाकर पिंजरों में भरे हुए शहर में आते हैं। देहली के मछुए अपने कार्य में कुछ ऐसे चतुर नहीं हैं। पर फिर भी मछलियाँ कभी-कभी बाज़ारों में अच्छी बिकती हैं—विशेषकर सिंघाड़ा, जो अपने यहाँ की 'कार्प' के समान होती है—अच्छी होती है। जाड़े के दिनों में मछुए मछलियाँ कम पकड़ते हैं। कारण कि वहाँ के लोग सर्दी से उतना ही डरते हैं, जितने हम लोग जाड़े के दिनों में गर्मी से! यदि कोई मछली बाजार में दिखलाई दे, तो ख़्वाजासरा उसे स्वयं ख़रीद लेने हैं। वे लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं। परन्तु इसका कोई विशेष कारण मुझे अब तक मालूम नहीं हुआ। अमीर लोग अपने कोड़ों के बल, जो उनके दरवाजे पर इसी कार्य के लिये लटकते रहते हैं—जाड़े के दिनों में प्रायः मछली पकड़वाया करते हैं। इसमें सन्देह नहीं, कि यहाँ के धनी लोगों को हमेशा अच्छी चीजें मिला करती हैं, पर इसका कारण केवल रुपया और उनके पास बहुत-से नौकरों का रहना ही है। देहली में साधारण स्थिति के लोग नहीं रहते। बड़े-बड़े अमीर, उमरा और रईस बिल्कुल ही कम हैं। ऐसी हैसियत के लोग—जिनका जीवन कष्ट से बीतता है, अधिक रहते हैं। यद्यपि मुझे यहाँ अच्छा वेतन मिलता है, परन्तु सामान जो मिलता भी है, वह बहुत ही रद्दी, और केवल वही, जोकि अमीर लोगों के नापसन्द होने के कारण बच रहता है। मदिरा, जो हमारे यहाँ भोजन का प्रधान अङ्ग है—दिल्ली की किसी दुकान पर नहीं मिलती। जो मदिरा यहाँ देशी अंगूर की बन सकती है, वह भी नहीं मिलती; क्योंकि मुसलमानों की क़ुरान और हिन्दुओं के शास्त्रों में उसका पीना वर्जित है। मुग़ल-राज्य

में जो मदिरा शीराज़ वा कनारी टापू से आती है, अच्छी होती है। शीराज़ी मदिरा ईरान से खुश्की के रास्ते—'बन्दर-अब्बास' और वहाँ के जहाज़ के द्वारा सूरत में पहुँचती और फिर वहाँ से दिल्ली आती है। शीराज़ से दिल्ली तक मदिरा आने में छः दिन लगते हैं। कनारी टापू से मदिरा सूरत होती दिल्ली आती है। पर ये दोनों मदिरायें इतनी मँहगी होती हैं कि इनका मूल्य ही इन्हें बदमज़ा कर देता है। एक शीशी जो तीन अँग्रेजी बोतलों के बराबर होती है, १५) या १८) रुपये की आती है। जो मदिरा इस देश में बनती है, जिसे यह लोग अर्क कहते हैं—वह बहुत ही तेज होती है। यह भभके में खींचकर गुड़ से बनाई जाती है, और बाज़ार में नहीं बिकने पाती। धर्म-विरुद्ध होने के कारण अँग्रेजों व ईसाइयों के अतिरिक्त इसे कोई नहीं पी सकता। यह अर्क ठीक वैसा ही है, जैसा कि पौलैण्ड के लोग अनाज से बनाते हैं और जिसे परिमाण से ज़रा भी अधिक पीजाने से मनुष्य बीमार पड़ जाता है। समझदार आदमी तो यहाँ सादा पानी पियेगा या नींबू का शरबत, जो यहाँ सहज ही मिल जाता है, और जो हानिकारक भी नहीं होता। इस गर्म देश में लोगों को मदिरा की आवश्यकता भी नहीं होती। मदिरा न पीने और बराबर पसीने आते रहने के कारण यहाँ के लोग सर्दी, बुख़ार, पीठ का दर्द आदि रोगों से बचे रहते हैं, और जो ऐसे रोगी यहाँ आते हैं, वह शीघ्र ही अच्छे भी होजाते हैं, जिसकी मैं स्वयं परीक्षा कर चुका हूँ।

"चित्रकारी और नक्क़ाशी करने का काम तो यहाँ ऐसा उत्तम और बारीक होता है, जिसे देखकर मैं चकित हो गया। अकबर बादशाह की एक बड़ी लम्बाई की तस्वीर, चित्रकार ने सात वर्ष में, एक ढाल पर बनाई थी। उसे देखकर मैं हैरान रह गया। परन्तु भारतीय चित्रकार मुँह तथा किसी अन्य अंगों द्वारा उन भागों को व्यक्त नहीं कर पाते, जो पात्र की चित्रित दशा में हुआ करते हैं। यदि इन्हें इसकी पूर्ण रूप से शिक्षा दी जाये, तो ये इस दोष से मुक्त हो सकते हैं। हाँ, इससे स्पष्ट प्रकट है कि भारत में बहुत अच्छी-अच्छी चीजों का न होना, यहाँ के लोगों की अयोग्यता के कारण नहीं, वरन् शिक्षा के अभाव से है। यह भी स्पष्ट है कि यदि इन लोगों को उत्साह दिलाया जाय, तो भारत में उत्कृष्ट कलाओं का

प्रादुर्भाव सहज ही में हो सकता है। कारीगरों को यहाँ इनके कला-कौशल का यथोचित पुरस्कार नहीं मिलता, बल्कि उनके साथ कठोरता का व्यवहार होता है।

"धनी लोग सब वस्तुएँ सस्ते मूल्य पर लेना चाहते हैं। जब किसी अमीर को कारीगर की आवश्यकता होती है, तो वह उन्हें बाजार से पकड़वा मँगाता है, और बेचारे से ज़बरदस्ती काम लिया जाता है तथा चीज तैयार हो जाने पर उसके योग्यतानुसार नहीं, किन्तु अपनी इच्छानुसार उसे मज़दूरी देता है। कारीगर कोड़ों की मार खाने से ही बच जाने में अपना अहोभाग्य समझता है। तब ऐसी अवस्था में यह कब सम्भव है, कि कोई कारीगर अच्छी और सुन्दर चीजें बनाने की चेष्टा कर सके ?

"क़िले के दरवाजे पर कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका वर्णन किया जाय। हाँ, उसके दोनों ओर दो पत्थर' बड़े-बड़े हाथी बनाकर खड़े कर दिये गये हैं, जिनमें से एक पर चित्तौड़ के सुविख्यात राजा जयमल और दूसरे पर उनके भाई फत्ता की मूर्ति बनी है। ये दोनों वीर बड़े पराक्रमी थे। इनकी माता इनसे भी अधिक बहादुर थीं। यह दोनों शाई अकबर के साथ बड़ी बहादुरी से लड़े थे, कि उनका नाम प्रलय तक संसार में अमर रहेगा। जिस समय शहन्शाह अकबर ने इनके नगर को चारों ओर से घेर लिया था, इन्होंने बड़ी वीरता से उसका सामना किया, और इतने बड़े बादशाह के सामने भी पराजय स्वीकार करने की अपेक्षा उन्होंने तथा उनकी वीरांगना माता ने, रण-भूमि में अपने प्राण-विसर्जन कर दिये। यही कारण है, जो उनके शत्रुओं ने भी उनकी इन मूर्तियों को चिह्न स्वरूप स्थापित रखना अपना सौभाग्य समझा। वह दोनों हाथी—जिन पर यह दोनों वीर बैठे हैं, बड़े शानदार हैं। इन्हें देखकर मेरे मन में ऐसा आतङ्क उठा, जिसका वर्णन मैं नहीं कर सकता।

"इस फाटक से होकर क़िले में जाने पर एक लम्बी-चौड़ी सड़क मिलती है, जिसके बीचों-बीच पानी की एक नहर बहती है, और उसके दोनों ओर पाँच या छः फ्राँसीसी फुट ऊँचा और प्रायः चार फ़ुट चौड़ा चबूतरा पेरिस के 'पाण्टनियोफ़' की भाँति बना हुआ है। इसको छोड़कर दोनों ओर बराबर महराबदार दालान बनते चले गये हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न

विभागों के दारोग़ा और छोटी श्रेणी के ओहदेदार बैठे हुए अपना काम करते रहते हैं, और वह मन्सबदार भी, जो रात के साथ पहरा देने आते है, यहीं ठहरते हैं। पर इनके नीचे से आने-जानेवाले सवारों और साधारण लोगों को इससे कोई कष्ट नहीं होता।

"क़िले की दूसरी ओर के फाटक के अन्दर और भी ऐसी-ही लम्बी-चौड़ी सड़क है। उसके भी दोनों ओर ऐसे-ही चबूतरे हैं। पर मेहराबदार दालानों के स्थान में वहाँ दुकानें बनी हुई हैं। सच पूछिये, तो यह एक बाज़ार है, जो लदाव की छत के कारण, जिसमें ऊपर की ओर हवा और प्रकाश के लिये रोशनदान बने हुए हैं, गर्मी और बरसात के काम की जगह है।

"इन दोनों सड़कों के अतिरिक्त इसके दाहिनी और बाईं ओर भी अनेक छोटी-छोटी सड़कें हैं, जो उन मकानों की ओर जाती हैं, जहाँ नियमानुसार उमरा लोग सप्ताह में बारी-बारी से पहरा दिया करते हैं। यह मकान, यहाँ उमरा लोग चौकी देते हैं, अच्छे हैं। इनके सहन में छोटे-छोटे बाग़ हैं, जिनमें छोटी-छोटी नहरें, हौज और फ़व्वारे बने हुए हैं। जिस अमीर की नौकरी होती है, उसके लिये भोजन शाही ख़ज़ाने से आता है। जब भोजन आता है, तो अमीर को धन्यवाद और सम्मान-स्वरूप महल की ओर मुँह करके तीन बार आदाब बजा लाना, अर्थात् जमीन तक हाथ ले जाकर माथे तक ले आना होता है। इनके अतिरिक्त भिन्न-भिन्न स्थानों में सरकारी दफ्तर के लिये दीवानख़ाने बने हुए हैं, और ख़ेमे लगे हुए हैं, जिनके प्रत्येक भाग में किसी अच्छे कारीगर की निगरानी में काम हुआ करता है। किसी में चिकनदोज़ और जरदोज आदि काम करते हैं, किसी में सुनार, किसी में चित्रकार और नक्क़ाश, किसी में रंगसाज, बढ़ई और खरादी, किसी में दर्जी और मोची, किसी में कमख़ाब और मख़मल बुननेवाले और जुलाहे, जो पगड़ियाँ, कमर के बाँधने के फूलदार पटके और जनाने पायजामों के लिये बारीक कपड़ा बनाते हैं—बैठते हैं। यह कपड़ा इतना महीन होता है, कि एक-ही रात व्यवहार में लाने से बे-काम हो जाता है। यह २५)-३०) मूल्य का होता है। जब इस पर सुई से बढ़िया जरी का काम किया जाता है, तो इसका मूल्य और भी अधिक हो जाता है। ये सब

कारीगर सबेरे से आकर अपना-अपना काम करते हैं, और शाम को अपने घर चले जाते हैं। इसी दिनचर्य्या में इन लोगों का जीवन व्यतीत हो जाता है। जिस अवस्था में ये लोग जन्म लेते हैं, उसमें उन्नतिशील होने की चेष्टा तक नहीं करते। चिकनदोज आदि अपनी सन्तान को अपना ही काम सिखलाते हैं। सुनार का लड़का सुनार ही होता है। शहर का हकीम अपने पुत्र को हकीमी ही सिखलाता है। यहाँ तक कि कोई व्यक्ति अपने लड़के या लड़की का विवाह अपने पेशेवालों के अतिरिक्त और किसी के घर नहीं करता। इस नियम का पालन मुसलमान भी वैसा ही करते हैं, जैसा कि हिन्दू; जिनके शास्त्रों की यह आज्ञा है। इसी कारण से बहुत-सी सुन्दर लड़कियाँ कुमारी ही रह जाती हैं। उनके माता-पिता यदि चाहें, तो उन लड़कियों का विवाह बहुत अच्छी जगह हो सकता है।

"अब मैं दरबार ख़ास व आम का वर्णन उचित समझा हूँ—जो इन मकानों के आगे मिलता है। यह इमारत बहुत सुन्दर और अच्छी है। यह एक बड़ा-सा मकान है, जिसके चारों ओर महराबें हैं, और यह 'पैलेस-रॉयल' से मिलता है। पर भेद इतना ही है कि इसके ऊपर कुछ इमारत नहीं है। इसकी महराबें ऐसी बनी हुई हैं कि एक महराब से दूसरी महराब में जा सकते हैं। इसके सामने एक बड़ा दरवाजा है, जिसके ऊपर नक्क़ारखाना बना हुआ है। इसमें शहनाई, नफ़ीरियाँ और नक्क़ारे रखे हैं। इसी से लोग इसे नक्क़ारख़ाना कहते हैं, जो दिन और रात को नियत समय पर बजाये जाते हैं। यह नक्क़ारे एक-साथ बजाये जाते हैं। इसमें सब से बड़ी नफ़ीरी—जिसको 'करना' कहते हैं, ६ फ़ीट लम्बी है, और इसके नीचे का मुँह एक फ्रान्सीसी फुट से कम नहीं है। लोहे या पीतल के सबसे छोटे नक्क़ारे की गोलाई कम-से-कम छः फ़ीट है। इससे आप समझ सकते हैं, कि इस नक्क़ारखाने से कि इतना शोर होता होगा। जब मैं पहले-पहल यहाँ आया, तो शोर के मारे कान बहरे हो गये। अभ्यास के कारण अब मैं उसे बड़े चाव से सुनता हूँ। विशेषतः रात के समय, जबकि मकानकी छत पर लेटे हुए इसकी आवाज दूर से सुनाई देती है, तो बहुत-ही सुरीली और भली मालूम होती है। और यह कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है, कारण कि इसके बजाने वाले बचपन ही से इसकी शिक्षा पाते और इन

बाजों की आवाज को ऊँचा-नीचा करने और सुरीली तथा लय-पूर्ण बनाने में बड़े चतुर होते हैं। यदि यह नफ़ीरी दूर से सुनी जाय, तो अच्छी मालूम होती है। नक्कारखाना शाही महल से बहुत दूर बना है, जिससे बादशाह को इसकी आवाज से कष्ट न हो।

"नक्कारख़ाने के दरवाजे के सामने सहन के आगे एक बड़ा दालान है, जिसकी छत सुनहरे काम की है। यह बहुत ऊँचा, हवादार और तीन ओर से खुला हुआ है। उस दीवार के बीचोंबीच, जो इसके और महल के मध्य में है, प्रायः ६ फ़ीट ऊँचा और १ फुट चौड़ा शहनशीन बना हुआ है, जहाँ नित्य दोपहर के समय बादशाह आकर बैठता है। उसके दाएँ-बाएँ शहज़ादे खड़े होते हैं, और ख़्वाजासरा या तो मोर्छल हिलाते हैं या बड़े-बड़े पंखे हिलाते हैं, और या बादशाह का हुकुम बजा लाने के लिये हाथ-बाँधे खड़े रहते हैं। तख़्त के नीचे चाँदी का जंगला लगा हुआ है, जिसमें उमरा, राजे तथा अन्य राजाओं के प्रतिनिधि हाथ बाँधे और नीची आँखें किये बैठे रहते हैं। तख़्त से कुछ दूर हटकर मन्सबदार या छोटे-छोटे उमरा खड़े रहते हैं। इसके अतिरिक्त जो स्थान ख़ाली बचता है, उसमें बड़े-छोटे अमीर ग़रीब सब तरह के लोग भरे रहते हैं। केवल यही एक स्थान है, जहाँ बादशाह को सर्वसाधारण के आगे उपस्थित होने को सुअवसर मिलता है, और इसलिये इसे आम व ख़ास कहते हैं। यहाँ डेढ़-दो घण्टे तक लोगों का सलाम व मुजरा होता रहता है। इसलिये बादशाह के मुलाहजे के लिये अच्छे-अच्छे सजे और सधे घोड़े पेश किये जाते हैं। इनके बाद हाथियों की बारी आती है, जिनकी मैली खाल खूब नहला-धुलाकर साफ़ कर दी जाती है, और फिर स्याही से रंग दी जाती है। इसके सिर से लाल रंग की लकीरें सूँड के नीचे तक खींच दी जाती हैं। फिर इन पर जरी की झूलें पड़तीं हैं, जिनमें चाँदी के घण्टे एक जंजीर से बाँधकर उसके दोनों ओर लटका दिये जाते हैं। दो छोटे-छोटे हाथी, जो खूब सजे होते हैं, खिदमतगारों की तरह इन बड़े हाथियों के दोनों ओर चलते हैं। यह हाथी झूम-झूमकर और सँभलकर पैर रखते हैं, इतराते हुए चलते हैं, और जब तख़्त के निकट पहुँचते हैं, तो महावत—जो उनकी गर्दन पर बैठा होता है अंकुश चुभोकर कुछ आज्ञा-सूचक शब्द कहता है। उस समय हाथी घुटने के बल

बैठकर, सूँड़ ऊपर की ओर उठाकर चिङ्घाड़ता है, जिसे लोग उसका सलाम करना समझते हैं। इसके उपरान्त और-और जानवर पेश होते हैं। सिखाये हुए हरिन लड़ाये जाते हैं। नीलगाय, गैंडे और बंगाल के बड़े-बड़े भैंसे भी लाये जाते हैं—जिनके सींग इतने लम्बे और तेज होते हैं, कि वे शेर के साथ लड़ सकते हैं। चीते, जिनसे हिरन का शिकार खेला जाता है, और अनेक प्रकार के शिकारी कुत्ते, जो बुखारा आदि से आते हैं, जिनके बदन पर लाल रंग की झूलें पड़ी होती हैं—पेश होते हैं। अन्त में शिकारी पक्षी, जैसे-बाज़, शिकरे आदि, जो तीतर और ख़रगोश को पकड़ते हैं, पेश किये जाते हैं। कहते हैं, यह पक्षी हिरन पर भी छोड़े जाते हैं; जिन पर यह बहुत तेज़ी से झपटते और पंजे मार-मारकर उन्हें अन्धा कर देते हैं। इन सब के पेश हो जाने के बाद कभी-कभी दो अमीरों के सवार भी पेश किये जाते हैं, जिनके कपड़े और समय की अपेक्षा अधिक बहुमूल्य और सुन्दर होते हैं। इनके घोड़ों पर पाखरें पड़ी होती हैं। तरह-तरह के जेवर, जैसे—हैकल, झुनझुने आदि, से वे सजे होते हैं। बहुधा बादशाह को प्रसन्नता के लिये अनेक खेल किये जाते हैं। मरी हुई भेड़ें, जिनका पेट साफ़ करके फिर सी दिया जाता है, बीच में रख दी जाती हैं। उमरा मन्सबदार, गुर्जबर्दार और नेजा बर्दार, उन पर तलवार से अपना करतब दिखलाते हैं, और एक ही हाथ में उन्हें काटने की चेष्टा करते हैं। यह सब खेल दरबार के आरम्भ में हुआ करते हैं। इनके बाद राज्य-सम्बन्धी अनेक मामले पेश होते हैं। फिर बादशाह सब सवारों को बड़े गौरव से देखता है। जब से लड़ाई बन्द हुई, कोई सवार या पैदल ऐसा नहीं है, जिसे बादशाह ने स्वयं न देखा हो। बहुतों का वेतन बादशाह स्वयं बढ़ाता, अनेकों का कम करता, और कइयों को बिल्कुल ही मौकूफ़ कर देता है।

"इस अवसर पर सर्वसाधारण जो अर्जियाँ पेश करते हैं, वे सब बादशाह के कानों तक पहुँचती हैं, और बादशाह स्वयं लोगों से उनके दुःख के विषय में पूछता और उनके निवारण के उपाय करता है। इनमें से दस अर्जियाँ देने वाले चुनकर सप्ताह में एक दिन बादशाह के सामने पेश किये जाते हैं, और उस दिन बादशाह पूरे दो घण्टों तक वे अर्जियाँ सुना करता है।

"इन अर्जी देने वाले व्यक्तियों के चुनने का काम अमीर के सुपुर्द है। इनका फ़ैसला बादशाह शहर के दो क़ाजियों के साथ 'अदालतख़ाना' नामक क़मरे में बैठकर करता है, और इसमें कभी नाग़ा नहीं होती। इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि वह एशिया के बादशाह, जिन्हें हम फिरङ्गी लोग मूर्ख और तुच्छ समझते हैं, अपनी प्रजा का न्याय करने में त्रुटि नहीं करते।

आम-खास के बड़े दालान से सटा हुआ एक ख़िलवतख़ाना है, जिसे गुस्लख़ाना कहते हैं। यहाँ बहुत कम आदमियों को जाने की आज्ञा है। यद्यपि यह आम व ख़ास के बराबर नहीं है फिर भी बहुत ही बड़ा, सुन्दर और सुनहरे काम का है, और शहनशीन की तरह चार-पाँच फ्रान्सीसी फुट ऊँचा है। यहाँ कुरसी पर बैठकर बादशाह—वजीरों से, जो इधर-उधर खड़े होते हैं, सलाह करता है, बड़े-बड़े अमीरों और सूबेदारों की अर्जियाँ सुनता है, और अनेक गूढ़ राज्य-कार्य करता है। यद्यपि ग़ुस्लख़ाने के दरबार में यही बात होती है, जो मैंने अभी कही है, पर आम व ख़ास की तरह यहाँ भी अधिकांश जानवरों आदि का मुलाहजा होता है। हाँ, रात हो जाने के कारण और सामने सहन के छोटे हो जाने के कारण अमीरों के रिसालों का मुलाहजा नहीं हो सकता। इस समय के दरबार में यह विशेषता है, कि यह मन्सबदार, जिनकी उस दिन चौकी की बारी होती है, बड़ी ही शिष्टता और अदब के साथ सामने सलाम करते हुए गुजर जाते हैं। उनके आगे लोग हाथ में 'कौर' लिये हुए चलते हैं। यह 'कौर' बहुत-ही सुन्दर होते हैं, और चाँदी की छड़ियों के सिरों पर मढ़े होते हैं। इनमें से कुछ तो मछलियों की शक्ल के और हाथ और पंजे की तरह बने हुए होते हैं। इन लोगों में से बहुत से गुर्जबरदार होते हैं, जो हृष्ट-पुष्ट शरीर देखकर भर्ती किये जाते हैं और ज़िनका काम है कि दरबार के समय हुल्लड़ या गड़बड़ न होने दें, तथा बादशाही आज्ञा-पत्र आदि यथा-स्थान पहुँचा दें और बादशाह जो आज्ञा दे, बहुत शीघ्र उसका पालन करें।

---

: १५ :

# मुग़ल—साम्राज्य का अन्त

औरङ्गजेब के बाद उसका पुत्र मुअज़्ज़म आगरे में गद्दी पर बैठा। उसने अपनी उपाधि बहादुरशाह रखी। उसके छोटे भाई ने विद्रोह किया, पर वह क़ैद कर लिया गया। यह व्यक्ति उतना क्रूर तो न था, पर इस महान साम्राज्य को सम्हालने की शक्ति भी उसमें न थी। इस समय मुग़ल-साम्राज्य का विस्तार इतना था, जितना पहले कभी न हुआ था।

इसने प्रजा को सन्तुष्ट करने की चेष्टा की। राजपूतों और मरहठों की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया। मरहठों को मुग़ल-प्रान्तों से चौथ लेने का भी अधिकार दे दिया। परन्तु सिक्खों से उसका समझौता नहीं हो सका। सिक्ख लोग तूफानी ढंग से बढ़ रहे थे। उन्होंने पूर्वी पंजाब और सरहद को जीत लिया था। उनका नेता बन्दा बड़ी वीरता दिखा रहा था। बादशाह को इनके विरुद्ध स्वयं यात्रा करनी पड़ी। यह बादशाह तीन ही वर्ष राज्य करके लाहौर में मर गया।

इसके बाद इसका छोटा पुत्र 'जहाँदारशाह' के नाम से गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने सब सम्बन्धियों को तलवार के घाट उतारा। पर वह जितना ज़ालिम था, उतना-ही कायर भी था। वह सेनापति जुल्फ़िक़ारखाँ के हाथ की कठपुतली था। जुल्फ़िक़ारखाँ अच्छा सेनापति तो था, परन्तु अच्छा प्रबन्धक न था। अतः प्रजा में चारों तरफ़ कुप्रबन्ध तथा अत्याचारों के दौर होने लगे। दक्षिण में तो दाऊदखाँ ने हद करदी। अन्त में दक्षिण के हाकिम सैयद हसनअली और अवध के हाकिम अबदुल्ला ने जुल्फ़िक़ार को हटाकर बहादुरशाह के पोते फ़र्रुख़सियर को

गद्दी पर बैठाया। यह अभागा ५ वर्ष गद्दी पर रह पाया, और जब तक रहा, तब तक दोनों सैयदों के हाथ की कठपुतली बना रहा। इसके राज्य-काल में दक्षिण बिल्कुल हाथ से निकल गया, और उसे मरहठों का करद राज्य स्वीकार कर लिया गया। इसी बादशाह ने अंग्रेजों को बङ्गाल में बिना चुङ्गी व्यापार करने का अधिकार दे दिया। सिक्ख क़ैदियों सहित दिल्ली लाये गये, और अति क्रूरता से मारे गये। अन्त में दक्षिण का सैयद सूबेदार १०००० मरहठों को बालाजी विश्वनाथ पेशवा की अध्यक्षता में चढ़ा लाया, जिनके हाथों यह बादशाह मार डाला गया।

इसके बाद सैयदों ने एक और व्यक्ति को बादशाह बनाया, जिसे क्षय-रोग था। तीन मास ही बादशाह रहकर वह मर गया। फिर एक और व्यक्ति बादशाह बना। वह एक वर्ष राज्य करके मर गया। इस बीच में मुग़ल-प्रान्त एक-एक करके ख़त्म हो गये। तब सैयदों ने बहादुरशाह के एक पोते मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया, पर सैयदों के उपद्रव से तंग आकर इसने दो पराक्रमी सरदार सआदतखाँ और आसफ़जाह की सहायता से उन्हें मार डाला। इसके इनाम में सआदतखाँ को अवध की नवाबी दी गई, जिसे उस सरदार ने जल्द ही एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में सम्पादित कर लिया। तब से किसी ने भी अवध को फिर क़ब्ज़े में करने की चेष्टा नहीं की, और १३० वर्ष तक सआदत के वंशधर वहाँ की बादशाहत भोगते रहे।

इसके दो वर्ष बाद आसफ़जाह ने, जो इसका मन्त्री था, मन्त्री-पद से इस्तीफ़ा दे दिया, और दक्षिण में जाकर हैदराबाद को राजधानी बना, नया राज्य स्थापित कर लिया। १० वर्ष तक वह मरहाठों से लोहा लेता रहा और एक विख्यात राज्य पैदा कर दिया।

शिवाजी के वंशधर अब मुग़ल-सम्राट् से कर ग्रहण करते थे। शिवाजी के समय में राज्य-सत्ता बालाजी विश्वनाथ के हाथ में पहुँच गई थी, जो पेशवा के नाम से प्रख्यात हुए। दूसरा पेशवा बाजीराव इतना सशक्त हुआ कि उसके समय में महाराष्ट्र-शक्ति उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच गई। शीघ्र ही मरहठों के तीन बड़े राज्य स्थापित हो गये। सिन्धिया ग्वालियर में, होल्कर इन्दौर में, और गायकवाड़ बड़ौदे में।

तीनों सरदार शूद्र से क्षत्रिय-वर्ण में परिणित हुए। अन्त में मराठों

की पूर्ण-शक्ति संगठित होकर दिल्ली पर चढ़ आई। बादशाह ने आसफ़ को सहायता के लिये लिखा। वह हैदराबाद से भारी सैन्य लेकर चला। भूपाल में बाजीराव ने ८० हज़ार सवार लेकर उससे लोहा लिया। निज़ाम की पूरी हार हुई, और उसने मालवा प्रान्त मरहठों के हवाले कर दिया, तथा ५० लाख रुपये दिल्ली के ख़ज़ाने से दिलाने स्वीकार कर लिये। बाजीराव ने मालवा सिन्धिया और होल्कर को हर्जाने में दे डाला।

अब नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया। यह खुरासान का एक गड़रिया था, जिसने अपने बाहु-बल से ईरान का राज्य प्राप्त किया था। निजाम और सआदत ने उसे करनाल में रोकना चाहा, पर वे बुरी तरह हराये गये। दिल्ली के निकट पहुँचकर उसने बादशाह को लिखा—"दो करोड़ रुपये दो, वरना दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दूँगा।"

जब यह दूत दरबार में पहुँचा, तो बादशाह शराब पी रहा था, और शेर-ग़ज़लें गाई जा रही थीं। राजा स्वयं भी अपनी कविताएँ सुना रहे थे, और अमीर-उमरा उन्हें 'कलामुल्मुल्क लूकुलकलाह' कहकर झुक-झुककर सलाम कर रहे थे। दूत ने ख़त दिया तो बादशाह ने वजीर से कहा—"पढ़ो क्या है?" वजीर ने पढ़ा और कहा—"हुजूर, ऐसे गुस्ताख़ी के अल्फ़ाज़ हैं कि जहाँपनाह के सुनने क़ाबिल नहीं।" बादशाह ने कहा—"ताहम—पढ़ो!" ख़त सुनकर कहा—"क्या यह मुमकिन है, कि यह शख़्स दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दे?" खुशामदी दरबारियों ने कहा—"हुजूर, क़तई नामुमकिन है।" तब बादशाह ने हुक्म दिया—"यह ख़त शराब की सुराही में डुबो दिया जाय, और इसके नाम पर एक-एक दौर चले।" जब दौर ख़तम हुआ तो दूत ने कहा—"हुजूर, बन्दे को क्या इरशाद है?" बादशाह ने हुक्म दिया—"पाँच सौ अशर्फ़ी और एक दुशाला इसे इनाम में दिया जाय।"

दूत चला गया और नादिरशाह तूफ़ान की भाँति दिल्ली में घुस आया। तब रङ्गीले बादशाह की आँखें खुलीं। उसने नगर पर और क़िले पर अधिकार कर लिया। बादशाह ने सिर झुकाकर तख़्त उसकी नज़र किया। कहते हैं कि उसने उसे हुक्म दिया—महल की तमाम बेगमात और शाहजादियाँ उसके सामने हाजिर की जायें। जब उसके हुक्म की तामील की गई और तमाम औरतें उसके सामने खड़ी कर दी गईं, तो उसने कमर

से तलवार खोलकर तख़्त के एक किनारे रख दी, और आराम से तख़्त पर लेट गया। कुछ देर बाद वह उठा और लाल-लाल आँखों से घूरकर प्रत्येक औरत को देखा, और कहा—"तुम लोग शाहज़ादी और शाही बेगमात हो, परन्तु इस क़दर बेशर्म और बे-ग़ैरत हो, कि बिना तअम्मुल दुश्मन के सामने आ-खड़ी हुईं। किसी में इतनी ग़ैरत न थी, जो जान खो देती, मगर मेरे सामने न आतीं ? मैंने तलवार दूर रख दी, और इतनी देर आँखें बन्द किये पड़ा रहा। इस पर भी किसी की हिम्मत न हुई कि अपनी बेहुर्मती और बे-इज्जती करने वाले दुश्मन के कलेजे में कटार भोंक दे। ओ, जलील औरतो ! क्या तुमसे यह उम्मीद की जाय कि तुम हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनेवाले बच्चे पैदा कर सकती हो ? हटो सामने से !" यह यह कहकर वह वहाँ से चल दिया।

दूसरे दिन उसके मरने की अफ़वाह फैल गई, और उसके सिपाही जहाँ-तहाँ मारे जाने लगे। यह देख वह स्वयं घोड़े पर सवार होकर निकला, पर उस पर भी पत्थर फेंके गये। यह देख, वह सुनहरी मस्जिद पर चढ़ गया और वहाँ से उसने क़त्ले-आम का हुक्म दिया। चार दिन तक क़त्ले-आम होता रहा। शहर लाशों से पट गया। नगर धाँय-धाँय जलने लगा। शहर-भर लूट लिया गया। राज्य का ख़जाना भी लूट लिया गया। व्यापारियों और सरदारों के जवाहरात लूट लिये गये। तख़्त ताऊस भी वह लूट ले गया। इस लूट में उसे तख़्त के अलावा दस करोड़ का माल मिला।

इसके बाद दिल्ली की शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई। दक्षिण, मालवा, गुजरात, राजपूताना, यह सब दिल्ली के अधिकार से बाहर हो गये। अब से बंगाल के नवाब अलीवर्दीख़ाँ ने भी अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया और ख़िराज़ देना बन्द कर दिया। यह सब उलट-पुलट माया के जादू से—औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद सिर्फ़ तीस वर्ष के भीतर-ही भीतर हो गई !

उसके मरने पर अहमदशाह तख़्त पर बैठा। छः वर्ष राज्य करने के बाद गाजीउद्दीन नामक एक सरदार ने उसको पटककर आँखें निकाल लीं, और जहाँदार के बेटे को तख़्त पर बैठाया। उसका नाम आलमगीर द्वितीय रखा। इसके गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिन बाद अहमदशाह अब्दाली ने भयानक रीति से दिल्ली को लूटा। फिर वह मथुरा पर चढ़ गया, और यहाँ

क़त्लेआम मचा दिया और लौट गया। अब गाज़ीउद्दीन ने बादशाह से बिगड़कर मराठों को बुलाया। पेशवा का भाई रघुनाथराव दिल्ली आया और गाजीउद्दीन को बादशाह का मन्त्री बनाकर पंजाब चला गया। वहाँ से अब्दाली के हाकिम को मार भगाया। अब मराठों का आधिपत्य सर्वोपरि होगया, और वे प्रत्येक प्रान्त से चौथ वसूल करने लगे।

अब अब्दाली फिर एक भारी सेना लेकर चढ़ आया। गाज़ीउद्दीन ने यह देख, आलमगीर को मरवा डाला और वह स्वयं जाटों की रियासत में भाग गया। उधर मराठे बड़े दर्प से अब्दाली का मुक़ाबिला करने पानीपत के मैदान में आ डटे। परन्तु परस्पर की फूट और विग्रह ने उसका पतन किया। होलकर और सूरजमल लड़ाई से फिर गये। दो लाख मराठे काट डाले गये और बाईस हजार को पकड़कर अब्दाली गुलाम बनाकर लेगया। इस घटना ने महाराष्ट्र में हाहाकार मचा दिया।

युद्ध के पीछे अली-गौहर गद्दी पर बैठा और अपना नाम 'शाहेआलम' रखा। इसके समय में गुलाम क़ादिर नामक एक सरदार रुहेलों को चढ़ा लाया। गुलाम जोरों से महल में घुस गया और बादशाह को तख़्त से नीचे गिराकर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। कटार से आँखें निकालकर बाहर फेंक दीं। फिर क़िले को खूब लूटा। यहाँ तक कि बेगमों के बदन से कपड़े भी उतरवा लिये। मराठों ने जब यह सुना, तो तुरन्त महादजी सिन्धिया दिल्ली पर आ धमके, और गुलाम क़ादिर को पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इसके बाद सिन्धिया ने बादशाह को तो क़िले में बन्द कर दिया और नगर पर अपना क़ब्जा कर लिया।

अब अंग्रेज रंग-मञ्च पर खल्लम-खुल्ला आये। लॉर्ड लेक ने दिल्ली जाकर बादशाह को सिन्धिया की क़ैद से छुड़ाया और इलाहाबाद ले गये। उन्होंने अवध के नवाब से डरा-धमकाकर इलाहाबाद और कड़ा का इलाक़ा बादशाह के लिये ले लिये, और बादशाह को इलाहाबाद का किला सौंप दिया। इसके बाद ही लॉर्ड क्लाइव ने आकर बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी बादशाह से ले ली। इसका मतलब यह था कि अंग्रेजों को इन तीनों प्रान्तों से कर और लगान उगाहने का अधिकार मिल गया। अँग्रेजों

ने इसके बदले बादशाह को छब्बीस लाख रुपये पेन्शन देने का वचन दिया। मुर्शिदाबाद के नवाबों का केवल शासनाधिकार मात्र रह गया।

परन्तु इसके कुछ दिन बाद ही ज्योंही बादशाह दिल्ली आये, उधर वारेन हेटिंग्स गवर्नर हुए। उन्होंने पचास लाख रुपये नक़द लेकर अवध के नवाब को फिर इलाहाबाद और कड़ा का इलाक़ा बेच दिया। साथ-ही बादशाह को खिराज भेजना बन्द कर दिया। उसका कारण यह बतला दिया कि बादशाह मराठों से मिल गया है।

बादशाह ने कई बार गवर्नर को पत्र लिखा। एक बार पत्र के उत्तर में वारेन ने लिखा था—

"जब आप कम्पनी और अवध के नवाब-वजीर से अलहदा होकर दूसरों को (मराठों को) अपना कृपा-पात्र बनाने लगे, जिसमें कम्पनी की सरासर हानि है, तो जो-कुछ आपके पास था, उसी समय कम्पनी का हो चुका।"

परकैंच बादशाह ने फिर भी ठण्डे-ठण्डे लिखा—

"कम्पनी के अधिकारी सुलहनामे की रू से आप हमारे पाक दामन से अलहदा नहीं हो सकते, और बंगाल के सूबे का ख़िराज भेजना उनका फर्ज है। हम कहीं क्यों न रहें; कड़ा और इलाहाबाद हमारे नौकरों के हाथों में बने रहने चाहिये। दो वर्षों से हमें इलाहाबाद और कड़ा के रुपये नहीं मिले। रुपयों की हमें अजहद जरूरत है।"

परन्तु इस पत्र का कोई जवाब नहीं दिया गया। विवश, बादशाह ने फिर मराठों की शरण ली। उन्होंने महादजी सिन्धिया को लिखा कि तुम खुद कलकत्ता जाकर यह ख़िराज वसूल करो। नाना फड़नवीस से भी सहायता माँग गई। सिन्धिया पूना पहुँचकर नाना से इस सम्बन्ध में सलाह कर ही रहे थे, और सम्भव था कि भारी सैन्य लेकर कलकत्ते ख़िराज के लिये चढ़ दौड़ते, पर, अकस्मात्-ही उनकी मृत्यु हो गई। कहा जाता है कि उन्हें मरवा डाला गया।

इस व्यक्ति की प्रशंसा में एक बादशाह ने कहा था—

**"माधोजी सोंधिया फ़र्जन्द जिगर बन्देमन्।**
**हस्त मसरूफ तलाफ़ीए सितमगरि एमा॥"**

अर्थात्—माधोजी सिंधिया मेरे जिगर का टुकड़ा और मेरा बेटा है। मेरे दुःखों को दूर करने में लगा हुआ है।

इसके बाद अँग्रेज़ों ने मराठों और बादशाह में विरोध उत्पन्न करा दिया और एक इक़रारनामा लिख दिया, जिसका अभिप्राय यह था कि उन्हें मराठों से सम्पूर्ण अधिकार दिला दिये जायेंगे।

परन्तु यह वादा कभी पूरा नहीं किया गया। लार्ड लेक ने दिल्ली के समस्त अधिकार अपने क़ब्जे में कर लिये और बारह लाख रुपये बादशाह की पेन्शन नियत करदी। अब बादशाह के हाथ में कुछ भी अधिकार न थे। वह सिर्फ पेन्शन-भोगी नाम-मात्र का बादशाह था। दिल्ली पर क़ब्जा रखने और बादशाह को क़ब्जे में रखने के लिये, दिल्ली में एक मजबूत सेना रखने की व्यवस्था की गई। एक बार बादशाह को दिल्ली से हटाकर मुँगेर भेजने का विचार किया गया, परन्तु विद्रोह के भय से यह विचार काम में न लाया गया।

शाहआलम के बाद बादशाह अकबरशाह (दूसरा) गद्दी पर बैठा। इसके समय में ही लखनऊ के नवाबों को बादशाह की उपाधि प्राप्त हुई और अँग्रेजों ने उन्हें बादशाह स्वीकार किया।

अब तक अँग्रेज अधिकारी दिल्ली के बादशाह को भारत का बादशाह मानते तथा कम्पनी-सरकार का न्यायाधिराज स्वीकार करते थे। उनके साथ बातचीत करने, मिलने और पत्र-व्यवहार में, सभी अफ़सर प्राचीन-मर्यादा का पालन करते थे, तथा प्रत्येक गवर्नर-जनरल दिल्ली आकर उनसे मिलता था।[1] परन्तु जब वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर हुए, तब बादशाह अकबरशाह ने हेस्टिंग्स को दिल्ली बुलाना चाहा। परन्तु हेस्टिंग्स ने साफ इन्कार कर दिया, और यह कहा कि मुझे इस नियम को स्वीकार करने में ऐतराज़ है कि दिल्ली के बादशाह कम्पनी की सरकार के अधिराज हैं।

जब लॉर्ड एमहर्स्ट गवर्नर बनकर आये, तब दिल्ली आकर बादशाह से मिले। इन्होंने यह प्रथम ही तय कर लिया था कि इस मुलाक़ात में

---

१. गवर्नर की मुहर पर 'दिल्ली के बादशाह का फ़िदवी-ख़ास' खुदा रहता था।

प्राचीन शाही अलक़ाब आदाब काम में न लाये जायेंगे। जब गवर्नर बादशाह के सामने पहुँचा, तब वे तख्त पर बैठे थे। एमहर्स्ट बादशाह के सामने दाहिनी ओर की शाही कुर्सी पर बैठा। उसका रुख़ बादशाह के बाँई ओर था। रेज़ीडेण्ट और बड़े-बड़े तमाम अफ़सर खड़े रहे।

जब बात-चीत शुरू हुई, तो लॉर्ड एमहर्स्ट ने बात-चीत में सब अलक़ाब-आदाब बदल दिये, और इस प्रकार बादशाह तमाम दरबारियों की नजर में तुच्छ होगये। उसने पुराने वायदों को भी राजनैतिक छल कहकर पालन करने से इनकार कर दिया। इसके बाद जो पत्र-व्यवहार बादशाह से अँगरेज़ी सरकार का हुआ, उसमें भी कोई आदाब-अलकाब काम में नहीं लाया गया।

इस मुलाक़ात का जो असर हुआ, उसका वर्णन 'पीटर ऑरा' नामक एक अँगरेज़ ने इस भाँति किया है—

"इससे प्रथम कि इस कल्पना का अन्त कर दिया जाय कि अँगरेज़ सरकार दिल्ली के बादशाह की प्रजा हैं, अत्यन्त स्वभाविक था कि इस घटना ने एक जबर्दस्त सनसनी पैदा कर दी थी; क्योंकि यह पहला अवसर था, जबकि हमने खुले और निश्चित तौर पर ब्रिटिश-सत्ता की स्वाधीनता का प्रतिपादन किया। लोग आम तौर पर यह कहते थे कि—हिन्दोस्तान का ताज दिल्ली के बादशाह के सर से हटाकर अब अँगरेज़ों के सिर पर रख दिया जाय।"

कहा जाता हैं कि शाही ख़ानदान लौर उसके आश्रितों ने इस घटना पर गहरा शोक मनाया। उन्होंने अनुभव किया कि इससे प्रथम उन्हें मराठों के कारण और तकलीफ़ें चाहे कुछ भी क्यों न सहनी पड़ी हों, किन्तु मराठे दिल्ली-सम्राट् को सदा समस्त भारत का न्याय-अधिराज स्वीकार करते रहे। अब पहली बार उनका रुतबा छीना गया है।

बादशाह ने खिन्न होकर लार्ड लेक का दस्तख़ती इक़रारनामा देकर राजा राममोहनराय को विलायत भेजा था। वहाँ वह गुम कर दिया गया और इस बात पर खेद प्रकट कर दिया गया कि किसी भी भाँति वह नहीं मिला।

अब तक कम्पनी का रेजीडेण्ट, जो दिल्ली में रहता था साधारण

अमीर की भाँति बादशाह को बाक़ायदा तस्लीम, कोर्निस और मुजरा किया करता था और शाही ख़ानदान के प्रत्येक बच्चे के प्रति प्रतिष्ठा प्रकट करता था। पर, अब उसके स्थान पर मेटकाफ़ नियुक्त होकर आया। उसने अपना व्यवहार बिलकुल बदल दिया, और बार-बार बादशाह का अपमान करना शुरू कर दिया।

बादशाह ने अपने पुत्र मिरजा सलीम को युवराज-पद देना चाहा, परन्तु अँग्रेजों ने उसे इलाहाबाद क़िले में नज़रबन्द कर दिया। अन्त में बादशाह मरा, और उसका पुत्र बहादुरशाह पिता की भाग्यहीन गद्दी पर बैठा।

यह वह समय था, जब भारत में भीतर-ही-भीतर अशान्ति के चिह्न उठ रहे थे। बादशाह की आर्थिक स्थित बहुत नाजुक थी। बादशाह ने अँग्रेजों को ख़र्च की रक़म अधिक देने को लिखा, पर उसे जवाब दिया गया—"आप अपने और अपने वंशजों के समस्त अधिकार कम्पनी को सौंप दें, तो यह रक़म बढ़ सकती है।" बादशाह ने इसे नामंजूर किया।

अब तक भी यह रस्म बनी थी कि ईद के दिन या नौरोज या बादशाह की साल-गिरह पर गवर्नर जनरल और कमाण्डर-इन-चीफ़, दोनों, शाही दरबार में हाजिर होकर या रेजीडेण्ट-द्वारा, नजरें पेश करते थे। बहादुरशाह के तख़्त पर बैठने तक भी यह रस्म की गई थी। परन्तु इसके कुछ ही वर्ष बाद लॉर्ड एलेनब्रुक ने इस नजर को भी बन्द कर दिया।

इस अवसर पर गवर्नर-जनरल लार्ड एलेनब्रुक ने रेज़ीडेण्ट टामस मेटक़ाफ को लिया था—

"बादशाह की ऊपरी शानो-शौक़त का शृंगार उतर चुका है। उसके वैभव की पहली-सी चमक-दमक नहीं रही। बादशाह के वे अधिकार, जिन पर तैमूर के ख़ानदानवालों को घमण्ड था, एक दूसरे के बाद छिन चुके हैं। इसलिये बहादुरशाह के मरने के बाद कलम के एक डोबे में 'बादशाह' की उपाधि का अन्त कर देना कुछ भी कठिन नहीं है। बादशाह की नजर जो गवर्नर-जनरल और कमाण्डर-इन चीफ़ देते थे, बन्द हुई। कम्पनी का सिक्का जो बादशाह के नाम से ढाला जाता था, बन्द कर दिया गया। गवर्नर-जनरल की मुहर में जो पहले 'बादशाह का फ़िदवी-ख़ास'—ये शब्द रहते

थे, वे निकाल दिये गये, और हिन्दुस्तानी रईसों को तम्बीह कर दी गई, कि वे अपनी मोहरों में बादशाह के प्रति ऐसे शब्दों का उपयोग न करें। इन सब बातों के बाद गवर्नमेण्ट ने अब फ़ैसला कर लिया है कि, दिखावे की अब कोई भी बात ऐसी न रखी जाय, जिससे हमारी गवर्नमेंट बादशाह के आधीन मालूम हो। इसलिये दिल्ली के बादशाह की उपाधि एक ऐसी उपाधि है, जिसे रहने देना गवर्नमेंट की इच्छा पर निर्भर है।"

सन् १८३६ में बादशाह के पुत्र दाराबख़्त की मृत्यु हुई। बादशाह उसके बाद बेगम जीनतमहल के पुत्र शाहजादे जवांबख़्त को युवराज नियत करना चाहते थे। परन्तु अँग्रेज-सरकार ने बादशाह के आठ पुत्रों में से मिरजा क़ीमास के साथ एक गुप्त सन्धि करके उसे युवराज स्वीकार कर लिया। उस सन्धि में तीन शर्तें थीं—

१—वह बादशाह के स्थान पर 'शाहजादा' कहा जायेगा।

२—दिल्ली का क़िला ख़ाली करना पड़ेगा।

३—एक लाख मासिक के स्थान पर १५ हजार रुपये मासिक खर्च के लिये मिला करेगा।

१० मई को सन् ५७ का विद्रोह मेरठ में फूट निकला, और उसी दिन विद्रोही फ़ौजें दिल्ली को चल दीं। ये फ़ौजें ११ मई को दिल्ली में आ पहुँचीं। दिल्ली के सिपाही उनसे मिल गये और अफ़सरों को मार डाला। संयुक्त-सेना काश्मीरी दरवाज़े से नगर में घुसी। दरियागंज की तमाम अँग्रेज़ी बस्ती जला डाली गई, और बहुत से अँग्रेज़ काट डाले गये। दिल्ली के क़िले पर तुरन्त उनका क़ब्ज़ा होगया। इतने में मेरठ की पैदल फ़ौज और तोपख़ाना भी आ पहुँचा। उसने किले में घुसते-ही बादशाह को ११ तोपों की सलामी दी। बादशाह ने उनसे कहा—"मेरे पास कोई ख़ज़ाना नहीं। मैं आप लोगों की तनख़्वाह कहाँ से दूंगा?"

सिपाहियों ने कहा—"हम लोग हिन्दुस्तान-भर के अँग्रेज़ी खजाने को लूटकर आप के क़दमों पर डाल देंगे।"

अन्त में बादशाह ने विद्रोह का नेतृत्व ग्रहण किया। दिल्ली में प्रत्येक नागरिक ने विद्रोह का स्वागत किया। जो अँग्रेज़ जहाँ मिला, काट डाला गया। दिल्ली-निवासी, विद्रोही सिपाहियों को ओलों और बताशों का

शरबत लुटियों में घोल-घोलकर पिलाने लगे। दिल्ली का अँग्रेज़ी दूतावास लूटकर जला दिया गया। अन्य अँग्रेजी इमारतें भी तहस-नहस कर दी गईं। दिल्ली के मेगजीन में ६ लाख कारतूस, १० हज़ार बन्दूक तथा बहुत-सा गोला-बारूद था। मेगजीन में ६ अँग्रेज और कुछ हिन्दुस्तानी सिपाही थे। हिन्दुस्तानियों ने जब क़िले पर हरा और सुनहरा झण्डा फहराते देखा, तब वे भी उनमें मिल गये। नौ अँग्रेजों ने मेगज़ीन का बचना असम्भव देखकर उसमें आग लगादी। उसके धड़ाके से तमाम दिल्ली हिल गई। ६ अँग्रेज, २५ हिन्दुस्तानी सिपाही, और ३०० आदमी इधर-उधर गली में टुकड़े-टुकड़े हो गये। बन्दूकें विद्रोहियों के हाथ आईं। प्रत्येक सिपाही को ४-४ बन्दूकें मिलीं।

शीघ्र ही यह विद्रोह की आग दूर-दूर तक फैल गई। बहुत से अँगरेज मारे-काटे और लूट लिये गये।

लॉर्ड केनिंग ने एक भारी सेना जनरल नील की आधीनता में विद्रोह-दमन को भेजी। यह सेना जिधर से गुज़री, रास्ते-भर बिना विचारे क़त्ले-आम करती, गाँवों को लूटती, और फूँकती बढ़ी चली आई। इस समय का वर्णन सर जॉन ने इस प्रकार किया है—

"फौजी और सिविल दोनों अदालतें बिना किसी तरह के मुक़दमे का ढोंग रचे, और बिना मर्द-औरत या छोटे-बड़े का विचार किये—भारत-वासियों का संहार कर रही थीं।..........बूढ़ी औरतों और बच्चों का उसी तरह वध किया, जिस प्रकार विद्रोहियों का। उन्हें सोच-समझकर फाँसी नहीं दी गई, बल्कि उन्हें उनके गाँवों में अन्दर जलाकर मार डाला गया, गोली से उड़ा दिया गया। सड़कों के चौरस्तों पर, बाज़ारों में जो लाशें टँगी हुई थीं, उनको उतारने में प्रातःकाल से संध्या तक मुरदे ढोने-वाली आठ-आठ गाड़ियाँ बराबर तीन महीने तक लगी रहीं।..........."

जनरल नील भयानक मार-काट करता हुआ इलाहाबाद तक बढ़ा चला गया। इलाहाबाद का क़िला अब भी सिक्खों की बदौलत अँगरेजी अधिकार में था। वहाँ के विद्रोही नेता मौलवी लियाक़तअली ने डटकर युद्ध किया। अन्त में तीस लाख रुपये का ख़जाना लेकर कानपुर को भाग आया। इलाहाबाद में भयानक क़त्ले आम और अग्नि-काण्ड करके वह सेना

आगे बढ़ी——लखनऊ, कानपुर इत्यादि विद्रोह के मुख्य केन्द्र थे। उधर सिक्खों ने किसी भाँति विद्रोह में सहायता न दी। बादशाह ने एक अपना खास दूत ताजुद्दीन पटियाला, नाभा आदि रियासतों के राजाओं के पास भेजा था। उसने बादशाह को लिखा—

"सिख-सरदार सब सुस्त और कायर हैं। उनसे बहुत कम आशा है। वे फ़िरंगियों के हाथों के खिलौने हैं। मैं उनसे एकान्त में मिला और बातें कीं। उनके सामने कलेजा पानी कर कर दिया। इस पर उन्होंने जवाब दिया—'हम मौक़े की इन्तजारी में हैं। बादशाह का हुक्म होते ही हम दुश्मनों को एक-ही दिन में मार भगायेंगे,'·······परन्तु मेरे विचार में उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता।"

उधर अँग्रेज़-सरकार ने इन राजाओं को अपने आधीन करने में बड़ी-बड़ी युक्तियाँ काम में लीं।

अब सिक्ख राजाओं की सहायता लेकर सर हेनरी बनार्ड भारी सेना ले, दिल्ली पर चढ़ आया। उसने भी मार्ग में लूट-मार, अग्नि-काण्ड, क़त्ले आम बराबर जारी रखा। उधर दिल्ली में पल्टन और खज़ाने जमा हो रहे थे। बादशाह के नाम राज-भक्ति के पत्र आ रहे थे। शहर में बारूद और हथियारों के कारखाने खुल गये थे, जिनमें दर्जनों तोपें रोज ढलतीं, और हज़ारों मन बारूद तैयार होती थी। बादशाह, हाथी पर बैठकर नगर में निकलता और नगरवासियों को उत्साहित करता।

बादशाह ने एक ऐलान छपाकर सब फ़ौजों और बाजारों में बँटवाया था। वह इस प्रकार था—

"तमाम हिन्दू मुसलमानों के नाम। हम महज अपना धर्म समझकर जनता के साथ शरीक हुए हैं। इस मौक़े पर जो बुजदिली दिखायेगा—या भोलेपन के कारण दग़ाबाज फिरङ्गियों पर एतबार करेगा—वह जल्द शर्मिन्दा होगा, और इङ्गलिस्तान के साथ अपनी वफ़ादारी का वैसा ही इनाम पावेगा, जैसा लखनऊ के नवाबों ने पाया। इसके अलावा इस बात की भी जरूरत है कि इस जङ्ग में तमाम हिन्दू और मुसलमान मिल कर काम करें, और किसी प्रतिष्ठित नेता की हिदायतों पर चलकर इस तरह का व्यवहार करें, जिससे कि अमनो-अमान क़ायम रहे, और ग़रीब सन्तुष्ट

रहें तथा उनका रुतबा और शान बढ़े। जहाँ तक मुमकिन हो सकता है, सब को चाहिये कि इस ऐलान की नक़ल करके किसी आम जगह पर लगायें।"

जब दिल्ली में युद्ध छिड़ा, मिरजा मुग़ल सेनापति थे। पर वे सुप्रबन्धक और सुशासक न थे। न कोई सेनापति ही उस समय योग्य था। बादशाह ने उनकी जगह बख्तखाँ को प्रधान सेनापति बनाया। वह वीर और साहसी था। इसके साथ चौदह हजार पैदल, तीन हजार सवार, और अनेक तोपें थीं। सेना को उसने छः महीने का वेतन पेशगी बाँट दिया था, और चार लाख रुपया बादशाह को नजर किया था। उसने नगर में घोषणा करदी थी, कि कोई शस्त्र रहित न रहे। जिसके पास शस्त्र न थे, उन्हें मुफ्त हथियार बाँट दिये गये। यह प्रबन्ध कर, तीन जुलाई को आम-परेड हुई। इसमें बीस हजार सिपाही सम्मिलित थे।

चार जुलाई को बख्तखाँ ने अँग्रेजी सेना पर आक्रमण किया। छोटे-बड़े घमासान यद्ध हुए। जयपुर, जोधपुर, सिन्धिया और होलकर अभी-तक आगा-पीछा कर रहे थे। फिर भी बादशाह के पास पचास हजार सेना थी। परन्तु सेनानायक का अभाव था। बख्तखाँ वीर और साहसी था। पर कुल-वंश का उच्च न था, और कुलीन राजे उसकी आधीनता में युद्ध करना अपना अपमान समझते थे।

बादशाह ने जोश में आकर एक ख़त राजपूत-राजाओं को अपने हाथों से लिखा—

"मेरी यह दिली ख्वाहिश है कि जिस जरिये और जिस क़ीमत पर भी हो सके, फिरङ्गियों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। मेरी यह जबर्दस्त ख्वाहिश है कि तमाम हिन्दुस्तान आजाद हो जाय। इस मक़सद को पूरा करने के लिये जो लड़ाई शुरू की गई है, उसमें उस वक्त तक फ़तहयाबी नहीं हो सकती, जब तक कोई शख़्श अपने ऊपर ऐसी जिम्मेवारी न ले ले, जो क़ौम की मुख्तलिफ़ ताक़तों को संगठित करके एक ओर लगा सके, और अपने को तमाम क़ौम का नुमाइन्दा कह सके। अँग्रेजों को हिन्दुस्तान से निकाल देने के बाद अपने ज़ाती फायदे के लिये हिन्दुस्तान पर हुकूमत करने की मुझे जरा भी ख्वाहिश नहीं है। अगर आप सब देशी

राजे दुश्मन को निकालने की ग़रज से अपनी तलवार खींचने के लिये तैयार हों, तो मैं इस बात के लिये राजी हूँ कि अपने तमाम शाही हक़ूक़ और अख़्त्यारात राजाओं के ऐसे गिरोह के हाथ सौंप दूँ—जो इस काम के लिये चुने जायँ।"

पचीस अगस्त तक युद्ध होता रहा। इसके बाद विद्रोही सेना में द्वेष-भाव उत्पन्न हो गया। अब साहस करके अँग्रेजी सेना नगर की ओर बढ़ने लगी। इस समय अँग्रेजी सेना में पाँच हजार सिख, गोरखे और पंजाबी तथा ढाई हजार कश्मीरी और स्वयं महाराज जींद अपनी सेना-सहित थे। दोनों ओर भयानक मार-काट होती गई। अन्त में १४ सितम्बर को अँग्रेजी सेना दिल्ली में घुस आई। इसी दिन सेनापति निकलसन घायल हुआ और २३ सितम्बर को हस्पताल में मरा। इधर अव्यवस्था बढ़ गई थी। कुछ सेना दिल्ली छोड़कर चल दी। अन्त में १६ सितम्बर तक अधिकांश नगर अँग्रेजी अधिकार में आ गया। तब बादशाह क़िला छोड़-कर हुमायूँ के मकबरे में चले गये। बख्तखाँ मक़बरे की दाहिनी ओर फ़ौज लिये पड़े थे। उन्होंने बादशाह से कहा—"अभी आप हिम्मत न हारिये। मेरे साथ दिल्ली से निकल चलिये। हम, पूरी तैयारियों से फिर युद्ध करेंगे।" पर मिरजा इलाहीबख़्श, जो अँगरेजों के एजेण्ट थे, बादशाह को भागने की सलाह न देते थे। अन्त में बादशाह ने बख्तखाँ से कहा—

"बहादुर, मुझे तेरी बात का यक़ीन है, और तेरी राय भी दिल से पसन्द करता हूँ, मगर जिस्म की कुव्वत ने जवाब दे दिया है। इसलिये मैं मामला तक़दीर के हवाले करता हूँ। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो, और बिसमिल्लाह करो। यहाँ से जाओ और कुछ काम करके दिखाओ! मैं नहीं, मेरे खानदान में से नहीं, तुम या कोई हिन्दुस्तान की लाज रखे, हमारी फ़िक्र न करो, अपने फ़र्ज़ को अदा करो।"

बादशाह के इस जवाब से बख्तखाँ हताश हो गया। वह गर्दन नीची करके मक़बरे के पूर्वी दरवाजे से निकल आया। उधर इलाहीबख़्श ने पश्चिमी दरवाजे से निकलकर कप्तान हडसन को सूचना दी कि बादशाह को गिरफ्तार करने का यही समय है। उसने तुरन्त ५० सवार लेकर, पश्चिमी दरवाजे पर पहुँच बादशाह को गिरफ्तार कर लिया।

बादशाह, बेगम जीनतमहल और शाहजादे जवाँबख्त को लाकर लाल-क़िले में क़ैद किया गया। बख्तखाँ का किसी को पता नहीं लगा।

बादशाह के दो बेटे मिरजा मुग़ल और मिरजा अख़्तर सुलतान तथा बादशाह का पोता मिरजा अकबर हुमायूँ के मक़बरे में अब भी थे। इलाहीबख्श से सूचना पाकर हडसन ने फिर वहाँ जाकर उन्हें क़ैद कर लिया। इलाहीबख्श के समजाने से वे चुपचाप क़ैद होगये। जब उन्हें रथों पर सवार कराकर हडसन शहर की ओर लौटा, और शहर एक मील रह गया, तब उसने रथों को ठहराया और शाहजादों को रथों से उतरने का हुक्म दिया। उनके कपड़े उतरवाए और एक सिपाही के हाथ से तमंचा लेकर तीनों को गोली मार दी। उसके बाद उनके तत्काल सिर काट लिये गये, और उन्हें रूमाल में रखकर बादशाह के सामने पेश किया गया, और कहा गया—"आपको बहुत दिन से शिकायत थी कि कम्पनी ने आपको खिराज नहीं दिया। यह ख़िराज हाजिर है।"

बादशाह ने देखकर मुँह फेर लिया और कहा—"अलहम्दोलिल्लाह! तैमूर की औलाद है, जो सुर्खरू होकर बाप के सामने आई है।"

अगले दिन दो सिर खूनी दरवाजे के सामने लटका दिये गये और धड़ कोतवाली के सामने टाँग दिये गये। दूसरे दिन उन्हें जमना में फिंकवा दिया गया। इसके बाद दिल्ली की तत्कालीन भयानक अवस्था का रोमांचकारी वृत्तान्त लॉर्ड राबर्ट्स ने लिखा है—

"हम सुबह को लाहौरी दरवाजे से चाँदनी चौक गये, तो हमें शहर, वास्तव में मुर्दों का शहर नजर आता था। कोई आवाज, सिवाय हमारे घोड़ों की टापों के, सुनाई न देती थी। कोई जीवित मनुष्य नजर नहीं आया। सब ओर मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था, जिनमें से कुछ मरने से पहले सिसक रहे थे।

"हम चलते-चलते बहुत धीरे-धीरे बात करते थे, इस डर से कि कहीं हमारी आवाज से मुर्दे न चौंक पड़ें।..........एक ओर लाशों को कुत्ते खा रहे थे और दूसरी ओर लाशों के आस-पास गिद्ध जमा थे, जो उनका माँस नोंच-नोंचकर खा रहे थे, और हमारे घोड़ों की टापों की आयाज से उड़-उड़कर थोड़ी दूर पर जा बैठते थे।"

"शहर पर क़ब्जा करने के बाद ३ दिन तक कम्पनी की फ़ौज नगर को लूटती रही। ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि—"..........एक दस्ता फ़ौज को इस काम के लिये नियुक्त किया गया कि जहाँ कहीं आबादी पाओ—मर्द, औरत और बच्चों को घर के असबाब सहित गिरफ्तार कर, ले आओ। आगे-आगे मर्द असबाब के गट्ठर सिर पर रक्खे हुए आते, और पीछे-पीछे उनकी औरतें रोती हुई पा-पैदल और बच्चों को साथ लिये हुए। जिन औरतों को कभी पैदल चलने की आदत न थी, वे ठोकरें खा-खाकर गिरती थीं, बच्चे गोद से गिर पड़ते थे और सिपाही क्रूरता के साथ उन्हें आगे चलने के लिये धकेलते थे।

"जब वे लोग सामने पेश होते तो हुक्म दिया जाता कि असबाब में जितनी कीमती चीज़ें हैं, उन्हें ढूँढ़कर जब्त करलो। व्यर्थ की चीज़ें इन्हें वापिस दे दो। यह हो चुकने पर दूसरा हुक्म होता कि इन्हें सिपाहियों की देख-रेख में लाहौरी दरवाजे तक ले जाओ और वे लोग शहर से बाहर धक्का देकर निकाल दिये जाते।

"दिल्ली शहर के बाहर इस प्रकार हजारों मर्द, औरतें और बच्चे असहाय, नंगे-पाँव, नंगे-सिर, भूखे-प्यासे फिर रहे थे।.........सैकड़ों माताएँ छोटे बच्चों का दुःख न देख सकने के कारण उन्हें अकेला छोड़कर कुएँ में डूब मरीं।.........नगर के अन्दर हजारों औरतें ऐसी थीं, जो बेइज्जती और मुसीबतों से बचने के लिये कुओं में गिरने लगीं। ये इतनी अधिक संख्या में गिरीं कि डूबने को पानी न रहा। अनेक कुएँ औरतों की लाशों से भर गये थे।

"इस प्रकार बदनसीब दिल्ली ने एक बार फिर भयानक दिन देखे। शाही ख़ानदान पर बुरी बीती। बहुतों को तो फाँसी नसीब हुई। कुछ शाहजादे जेलख़ाने में भेज दिये गये। जब वे अपना काम पूरा न कर सकते थे—तो उन पर कोड़ों की मार पड़ती थी।"

मिर्ज़ा क़ोमास, जिसे अङ्गरेज-सरकार ने युवराज बनाना स्वीकार किया था, एक दिन दिल्ली के पास जंगल में घोड़े पर सवार नंगा खड़ा दिखाई दिया था। हडसन उसकी तलाश में घूम रहा था। उसके बाद आज तक उसका पता न लगा, कि कहाँ है ?

बहादुरशाह की एक बेटी रजिया बेग़म नें रोटियों से मुहताज होकर दिल्ली के एक बावर्ची हुसैनी से शादी करली थी। उनकी दूसरी बेटी फ़ातिमा सुलताना ने ईसाई-जनाना-स्कूल में नौकरी करली। बादशाह, बेगम जीनतमहल और शाहजादा जवाँबख़्त क़ैद करके रंगून भेजे गये, जहाँ सन् १८६३ में इस वृद्ध बादशाह का देहान्त हुआ, और उसके साथ-साथ दिल्ली के प्रतापी मुग़ल-साम्राज्य का टिमटिमाता दीपक सदा के लिये बुझ गया !!

---

## : १६ :

## तख़्ते-लखनऊ

दिल्ली इस्लाम की परम प्रतापी राजधानी अवश्य रही—परन्तु इसलामी नजाकत, जो ऐयाशी और मद से उत्पन्न हुई थी—उसका जहूर तो लखनऊ ही में नज़र आया। आज भी लखनऊ अपनी फ़साहत और नजाकत के लिये मशहूर है। लखनऊ के नव्वाबों के एक-से-एक बढ़कर मजेदार और आश्चर्यजनक कारनामे सुनने को मिलते हैं। वह बाँकपन, वह अल्हड़पन, वह रईसी बेवकूफ़ी दुनिया में सिर्फ़ लखनऊ ही के हिस्से में आई थी। आज भी वहाँ सैकड़ों नवाब जूते चटकाते फिरते हैं। यद्यपि अँग्रेजी दौर-दौरे ने लखनऊ को पूरा ईसाई बना दिया है, पर कुछ बुढ़ऊ खूसट अब भी गज-भर चौड़े पाँयचे का पायजामा और हल्की दुपल्ली टोपी पहनकर उसी पुराने ठाठ से निकलते हैं। ताजियेदारी के दिन मानों लखनऊ भूल जाता है कि अब हम प्रबल प्रतापी ब्रिटिश की जायदाद हैं—उस समय उसमें वही शाही छटा देखने को मिलती है। अगर खोज की जाय तो आज भी वहाँ नवाब कनकव्वे और नवाब बटेर देखने को मिल सकते हैं। ख़म्मीरी तम्बाकू की भीनी महँक में डूबकर प्रत्येक पुराना मुसलमान अब भी अपने ऊपर इतराता है।

लखनऊ की नवाबी की नींव नवाब सआदतखाँ बुर्दामुल्-मुल्क ने

डाली थी। उसका असली नाम मिरज़ा मुहम्मद अमीन था। उन दिनों दिल्ली के तख़्त पर मुहम्मदशाह रँगीले मौज कर रहे थे। अवध में तब शेखों ने बड़ा ऊधम मचा रक्खा था। उनकी देखा-देखी दूसरे ज़मींदार भी सरकश हो उठे थे। जो कोई अवध का सूबेदार बनकर जाता, उसे ही मार डालते थे। इसलिये बादशाह किसी ज़बरदस्त आदमी की तलाश में थे। स्वयं बादशाह-सलामत भी इनसे सशंक रहते थे। वे इन्हें दरबार से हटाना चाहते थे, और अन्त में अवध की सूबेदारी देकर उन्होंने इन्हें दूर किया।

बादशाह ने मिरज़ा साहब को अवध की सूबेदारी और ख़िलअत तो दे दी थी, पर फ़ौज का कोई भी बन्दोबस्त न था। मिरज़ा साहब ने हिम्मत न हारी—आवारा और बेकार मुसलमान-युवकों को बटोरकर संगठित किया और कहा—"क्यों पड़े-पड़े बेकार ज़िन्दगी बारबाद करते हो? ख़ुदा ने चाहा, तो अवध पर दख़ल करके मज़ा करेंगे।"

कुछ ही दिनों में हज़ारों आदमी जमा हो गये। कुछ तोपें और हथियार शाही शस्त्रागार से मिल गये। इस फ़ौज को अवध तक ले जाने और सामान के लिये बैल ख़रीदने को मिरज़ा ने अपनी बेगम के ज़ेवर बेच डाले।

जब मिरज़ा इस ठाठ से चले, तो रास्ते में आगरे के सूबेदार ने इनकी ख़ातिरदारी करनी चाही। आपने कहा—"जो रुपया मेरी ख़ातिर-तवाज़े में ख़र्च करना चाहते हो, मुझे नक़द दे दो, क्योंकि रुपये की मुझे बड़ी ज़रूरत है।" आगरे के सूबेदार ने यही किया। वहाँ से बरेली पहुँचे तो वहाँ के सूबेदार से भी दावत के बदले रुपया लेकर फ़र्रुख़ाबाद आये। वहाँ नवाब ने कहा—"लखनऊ के शेख़ बड़े लड़ाके और अवध के आदमी भारी सरक़श हैं। आप एकाएक गंगा-पार न कर, पहले आस-पास ज़मींदारों और रईसों को मिला लें, तब सबकी मदद लेकर लखनऊ पर चढ़ाई करें।" मिरज़ा ने यही किया—और जब वे धूम-धाम से लखनऊ पहुँचे और शेखों को अपने आने की सूचना दी, तो वे इनकी सेना से डर गये, और कहा—"आप गोमती के उस-पार मच्छी-भवन में डेरा डालिये।" मच्छी-भवन अनायास ही दख़ल हुआ देखकर मिरज़ा बहुत ख़ुश हुए; क्योंकि उन्हें आशा न थी कि विना रक्त-पात हुए सफलता मिल जायगी।

नवाब ने अपने सुप्रबन्ध और चतुराई से थोड़े-ही दिनों में सूबे की आमदनी सात लाख रुपया करली। और अट्ठाईस वर्षों तक बड़ी सफलता से शासन किया। मृत्यु के समय ख़जाने में नौ करोड़ रुपये जमा थे। यह सन् ११५० हिजरी की बात है।

इनकी मृत्यु पर इनके भांजे और दामाद मिरज़ा मुहम्मद मुक़ीम अबुल मन्सूरख़ाँ सफ़दर जंग के नाम से वजीरे-नबाब नियुक्त हुए। यह अपनी राजधानी लखनऊ से उठाकर फ़ैज़ाबाद ले गये। यहाँ नवाब की सेना की छावनी थी। यह बुद्धिमान् न थे, इसलिये इनका जीवन युद्ध और झगड़ों में गया। इनके समय में शेख़ फिर सिर उठाने लगे। अन्य सरदार भी बागी हो गये।

इनमें एक गुण था—एक-नारी-व्रती थे। इनकी पत्नी नवाब सदर-जहाँ बेगम युद्ध-स्थल में भी छाया की भाँति साथ रहती थीं। ये सोलह वर्ष नवाबी भोगकर मरे।

इनके बाद मिरज़ा जलालुद्दीन हैदर नवाब शुजाउद्दौला के नाम से मसनद पर बैठे। ये २४ वर्ष की आय के वीर युवक थे, पर चरित्र ठीक न था। गद्दी पर बैठते ही किसी हिन्दू स्त्री का अपमान करने के कारण हिन्दू बिगड़ गये। परन्तु इनकी माता ने बहुत-कुछ समझा-बुझाकर हिन्दू-रईसों को शान्त किया। इन्होंने बाईस वर्ष तक नवाबी की। इनके जमाने में दिल्ली की गद्दी पर बादशाह शाहआलम थे, और बंगाल की सूबेदारी के लिये मीरक़ासिम जी-जान से परिश्रम कर रहा था। शुजाउद्दौला, बादशाह के वज़ीर और रक्षक थे। मीरक़ासिम ने उनसे सहायता माँगी थी। उस समय अङ्गरेजी कम्पनी के अधिकारियों ने मीरजाफर को नवाब बनाया था। शुजाउद्दौला ने एक पत्र अंगरेज़ कौन्सल को लिखकर बादशाह के अधिकार और उनके कर्त्तव्यों की चेतावनी दी थी। पर उसका कोई फल न देख, युद्ध की तैयारी कर दी। युद्ध हुआ भी, परन्तु अंगरेजों की भेद नीति से शुजाउद्दौला की हार हुई, उसमें नवाब को हर्जाने के पचास लाख रुपये और इलाहाबाद तथा कड़े के जिले अंगरेजों को देने पड़े। अंगरेजों का एक एजेण्ट भी उनके यहाँ रक्खा गया, और दोनों ने परस्पर के शत्रु-मित्रों को अपना निजू शत्रु-मित्र समझने का क़ौल-क़रार भी कर लिया।

नवाब को इमारतों का भी बड़ा शौक़ था। १० लाख रुपये के लगभग आप इमारतों पर भी ख़र्च किया करते थे। इनकी बनाई इमारतें आज भी लखनऊ की रोशनी हैं। दौलतगंज या दौलतख़ाना जहाँ नवाब स्वयं रहते थे—इन्द्र-भवन के समान शोभा रखता था।

यह वह समय था, जब ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी की कौंसिल में वारेन हेस्टिंग्स का दौर-दौरा था, और मुग़ल-तख़्त शाह आलम के पैरों के नीचे डगमगा रहा था। हम कह आये हैं, कि लखनऊ में भी कम्पनी का एक रेजीडेण्ट रहता था। उस समय तक रेजीडेण्टों को नवाब के सामने आने पर दरबार के नियमों का पालन करना पड़ता था, और अन्य दरबारियों की भाँति उन्हें भी अदब के साथ नवाब से मिलना पड़ता था।

नवाब ने रेजीडेण्ट के रहने के लिये एक विशाल इमारत बनवाई थी, जो १८५७ की घटनाओं के कारण अब बहुत प्रसिद्ध होगई है।

एक बार नवाब घोड़े पर सवार सैर को निकले, तो एक चूहा आप के घोड़े की टाप के नीचे दब गया। इस पर आपने वहीं उसकी क़ब्र बनवा दी, और एक बाग़ लगवाया, जो 'मूसा बाग' के नाम से प्रसिद्ध है। यह बाग़ नवाब को बहुत प्रिय था। इसी में बादशाह जानवरों की लड़ाई देखा करते थे।

इनके बाद इनके तीसरे पुत्र मिरज़ा अनजीअलीख़ाँ आसफ़उद्दौला के नाम से गद्दी पर बैठे। ये प्रारम्भ में ७ वर्ष तक फ़ैज़ाबाद में रहे। परन्तु बाद में लखनऊ चले आये, और उसे हो राजधानी बनाया।

इनके लखनऊ आने से लखनऊ की तक़दीर चेती। उस समय तक लखनऊ एक साधारण क़स्बा था। आसफ़उद्दौला ने उसे अच्छा ख़ासा शहर बना दिया। उन्होंने कई मुहल्ले और बाजार बनवाये। ये बड़े शाहख़र्च, स्वाधीन प्रकृति के, और हिम्मतवाले शासक थे। इन्होंने सब पुराने दरबारियों को निकालकर नयों को नियुक्त किया। इनके जमाने में दरबार की शानो-शौक़त देखने योग्य थी। दाता तो अनोखे थे। इनकी शाहखर्ची से इनकी माँ ने अँगरेजों से कह-सुनकर ख़जाना अपने अधिकार में कर लिया था, परन्तु नवाब ने लड़-भिड़कर ६२ लाख रुपये ले लिये। होली, दिवाली, ईद, मुहर्रम के अवसरों पर लाखों रुपये स्वाहा हो जाते थे। ब्याह-

शादी की दावतों में ५-५, ६-६, लाख रुपया पानी हो जाता था। नवाब का निजू रोजाना खर्च भी कम न था। आपके यहाँ १२०० हाथी, ३००० घोड़े, १००० कुत्ते, अगणित मुर्गियाँ, कबूतर, बटेर, हिरन, बन्दर, साँप, बिच्छू और भाँति-भाँति के जानवर थे। इनके लिए लाखों की इमारतें बनी थीं, और लाखों रुपये खर्च होते थे। इनके निजू नौकरों में २००० फ़राश, १०० चोबदार और खिदमतगार तथा सैकड़ों लौंडियाँ थीं। ४ हज़ार तो माली थे। रसोई का खर्च ही २-३ हज़ार रुपये रोज़ाना का था। सैकड़ों बावर्ची थे। शाहजादे वज़ीरअली की शादी में ३० लाख रुपये खर्च किये थे। ये सिर्फ़ दाता और उदार ही नहीं, एक योग्य शासक और गुण-ग्राही भी थे। मीर, सौदा और हसरत आदि उर्दू के नामी कवि थे, जो साल में सिर्फ़ एक बार दरबार में हाज़िर होकर हजारों रुपये पाते थे। संगीत और काव्य के ऐसे रसिक थे, कि एक-एक पद पर हज़ारों रुपये बर-साये जाते थे।

अँगरेज कम्पनी ने नवाब से कई बड़ी रक़में बार-बार तलब की थीं। उधर वारेन हेस्टिंग्स को रुपये की बड़ी ज़रूरत थी। वह जहाँ तक बनता, रईसों से रुपये तलब करता था। विवश हो, नवाब ने चुनार के क़िले में गवर्नर से मुलाक़ात की, और बताया कि केवल सेना की मद्द में ही मुझे एक बड़ी रक़म देनी पड़ती है।

अन्त में गवर्नर ने नवाब से मिलकर यह तै किया, कि चूँकि स्वर्गीय नवाब शुजाउद्दौला मृत्यु के समय में अपनी माँ और विधवा बेग़म को बड़े-बड़े ख़जाने दे गया है, और फ़ैज़ाबाद के महल भी उन्हीं के नाम कर गया है, तथा ये बेगमें अपने असंख्य सम्बन्धियों, बाँदियों और गुलामों के साथ वहीं रहती थीं—अतः उनसे यह रुपया ले लिया जाय। आसफ़ुद्दौला यह शर्त सुनकर बहुत लज्जित हुआ, पर लाचार इसे सहमत होना पड़ा, और इसका प्रबन्ध अंगरेज-अधिकारी स्वयं कर लेंगे, यह निश्चय होगया।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि मृत नवाब इन बेगमों को अंग-रेजों की संरक्षकता में छोड़ गये थे। अब इन पर काशी के राजा चेतसिंह के साथ विद्रोह में सम्मिलित होने का अभियोग लगाया गया, और सर इला-इजा कहारों की डाक बैठाकर इस काम के लिए कलकत्ते से तेजी के साथ

रवाना हुआ। लखनऊ पहुँचकर उसने गवाहों के हलफ़नामे के लिये, और बेग़मों को विद्रोह में सम्मिलित होने का फ़ैसला करके कलकत्ते लौट गया।

फ़ैज़ाबाद के महलों को अँगरेजी फौजों ने घेर लिया—और बेगमात को हुक्म दिया कि आप क़ैदी हैं, और आप तमाम जेवरात, सोना, चाँदी, जवाहरात दे दीजिए। जब उन्होंने इन्कार किया, तो बाहर की रसद बन्द कर दी गई, और वे भूखों मरने लगीं। अन्त में बेगमों ने पिटारों-पर-पिटारे और ख़जानों-पर-ख़जाने देना शुरू कर दिया। इस रक़म का अन्दाज एक करोड़ रुपये के अनुमानतः होगा।

इस घटना से अवध-भर में तहलका मच गया, और आसफुद्दौला का दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया।

इसके बाद हेस्टिंग्स ने कर्नल हैनरी को नवाब के यहाँ भेजा और उसे बहराइच तथा गोरखपुर जिलों का कलक्टर बनवा दिया। इसने उन जिलों पर भयानक अत्याचार किया, और तीन वर्ष के अन्दर ही उसने पैंतालीस लाख रुपया कमा लिया। नवाब ने तंग होकर उसे बर्ख़ास्त कर दिया। पर हेस्टिंग्स ने फिर उसे नवाब के सिर मढ़ना चाहा। तब नवाब ने लिखा—"मैं हजरत मुहम्मद की क़सम खाकर कहता हूँ कि यदि आपने मेरे यहाँ किसी काम पर कर्नल हैनरी को भेजा—तो मैं सल्तनत छोड़कर निकल जाऊँगा।"

सर जॉन केमार तीसरे अँगरेज-गवर्नर थे। उन्होंने नवाब की पुरानी संधि को तोड़ डाला, और नवाब पर जोर दिया कि आप साढ़े पाँच लाख रु० सालाना ख़र्च पर एक अँगरेजी पल्टन अपने यहाँ और रक्खें। नवाब 'सबसीडियरी सेना' के लिये पचास लाख रुपया सालाना प्रथम ही देता था। उसने इससे इन्कार कर दिया। तब अँगरेजों ने जबर्दस्ती वजीर झाऊलाल को पकड़कर क़ैद कर लिया। पीछे जब सर जान शोर लखनऊ पहुँचे तो नई फ़ौज का ख़र्चा नवाब के सिर मढ़ दिया।

इस धींगा-मुश्ती से नवाब के दिल को सदमा पहुँचा। वह बीमार हो गया, और दवा खाने से भी इन्कार कर दिया। इसी रोग में उसकी मृत्यु हो गई।

इन्होंने २३ वर्ष राज्य करके शरीर त्यागा। इनके बाद इनकी वसीयत पर मिरज़ा वजीरअली गद्दी पर बैठे। पर इन्होंने एक ही वर्ष में सब को

नाराज कर दिया। अन्त में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने बनारस में उन्हें नजर-बन्द कर दिया। वहाँ उन्होंने विद्रोह की तैयारियाँ कीं, तो अँगरेजों ने उन्हें कलकत्ता बुलाया। जब रेजीडेण्ट मि० चोरी उन्हें यह सन्देश देने गये, तो बात बढ़ चली और नवाब ने अपनी तलवार निकालकर साहब को क़त्ल कर दिया। मेम साहब भागकर बच गईं। आप नैंहाल के जंगलों में भेष बदले मुद्दत तक फिरते रहे। अन्त में जब नगर के राजा के विश्वास-घात से गिरफ्तार किये गये, और लखनऊ में उन पर क़त्ल का मुक़दमा चला। पर गवाह कोई न मिलने से फाँसी से बच गये। तब वे कलकत्ते में क़ैद कर लिये गये। वहाँ वे २६ वर्ष की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुए।

इनके बाद नवाब आसफ़उद्दौला के भाई सआदतअलीख़ाँ गद्दीनशीन हुए। इस समय इनकी उम्र ६० वर्ष की थी। वे बड़े बुद्धिमान, दूरदर्शी, ईमानदार और योग्य शासक थे। पर, लोग इन्हें कंजूस कहा करते थे; क्योंकि वे आसफ़उद्दौला की भाँति शाह-ख़र्च न थे। परन्तु ख़र्च की जगह पीछे न हटते थे। ये अँग्रेज-सरकार के बड़े भक्त थे; क्योंकि इन्हें अँग्रेज सरकार ने ही गद्दीनशीन किया, और उस वक्त कम्पनी के साथ इनकी ये शर्तें हो गई थीं :—

१—कम्पनी को बक़ाया रक़म दे दें।

२—इलाहाबाद का क़िला कम्पनी का है। उसकी मरम्मत के लिये आठ लाख रुपया दे दें।

३—फ़तहगढ़ के क़िले की मरम्मत के लिए तीन लाख रुपये दे दें।

४—फ़ौजों के इधर-उधर जाने-आने का ख़र्चा दें। कितने लाख ?—यह पीछे देखा जायेगा।

५—उन्हें नवाब बनाने की चेष्टा में जो खर्च हुआ, उनके लिये १२ लाख रुपये दें।

६—पदच्युत नवाब वज़ीरख़ाँ को डेढ़ लाख की पेन्शन दें।

७—'सब-सीडियरी सेना' के खर्च के लिये ५६ लाख के स्थान पर ७६ लाख रुपया सालाना दें।

मेजर वर्ड का अनुमान है कि इस प्रकार कुल मिलाकर एक करोड़ रुपये से ऊपर तथा इलाहाबाद का किला एक वर्ष ही के अन्दर कम्पनी को

मिल गया। एक शर्त यह भी थी कि सिवा कम्पनी के आदमियों के अन्य कोई भी यूरोपियन अवध-राज्य में न रहने पाये।

इस सन्धि के सम्बन्ध में 'कलकत्ता रिव्यू' में सर हेनरी लारेन्स ने लिखा था "............शायद सर जॉन शोर की सन्धि से अँग्रेज-पाठकों को सब से अधिक यह बात खटके, कि अवध के शासन-प्रबन्ध का इसमें कहीं जरा भी ज़िक्र नहीं है। मालूम होता है कि अवध की प्रजा सब से बढ़कर बोली बोलनेवाले के हाथ नीलाम कर दी गई।............सर जॉन शोर ने अवध की मसनद को केवल एक अँग्रेज-गवर्नर के हाथों की एक बिक्री की चीज़ बना दी थी।"

इसके बाद गवर्नर होकर लार्ड वेलेजली आये, तो उन्होंने दो वर्ष बाद ही यह सन्धि तोड़ दी। उसने नवाब को अपनी सेना में कुछ संशोधन करने की भी अनुमति दी। उस संशोधन का अभिप्राय यह था कि मालगुजारी की वसूली आदि के लिये जितनी सेना दरकार हो, उसे छोड़कर शेष सब सेना तोड़ दी जाय, और उसके स्थान पर कम्पनी के प्रबन्ध और नवाब के नाम से कुछ ऐसी सेनाएँ रक्खी जायें—जिनका खर्चा ७५ लाख रुपये सालाना हो।

नवाब ने इसके उत्तर में एक तर्क-पूर्ण और कड़ा उत्तर लिखा, और अंग्रेज-सरकार को इस प्रकार हस्तक्षेप करने के लिये मीठी फटकार दी।

इस पत्र को लॉर्ड वेलेजली ने तिरस्कार-पूर्वक वापिस कर दिया और नवाब को लिख दिया, कि कुछ पेन्शन सालाना लेकर सलतनत से हट जाओ, या जो पल्टनें नई आ रही हैं, उनके खर्च के लिए आधा राज्य कम्पनी के हवाले करो।

ये पल्टनें भेज दी गईं, और रेजीडेण्ट को लिख दिया गया, कि यदि नवाब चीं-चपड़ करे, तो सेना-द्वारा राज्य पर कब्ज़ा कर लो। वेलेज़ली ने यह भी स्पष्ट लिख दिया कि नवाब की सैनिक-शक्ति ख़त्म करदी जाय, और अवध की सारी सलतनत के दीवानी और फौजदारी अधिकार कम्पनी के हो जायँ।

नवाब ने बहुत चिल्ल-पों मचाई, पर नतीजा कुछ न हुआ, और नवाब को अपनी सलतनत का आधा भाग, जिसकी आय एक करोड़ पैंतीस

लाख रुपये सालाना थी, और जिससे वर्तमान युक्त-प्रान्त की बुनियाद पड़ी, सदा के लिये कम्पनी को सौंप देने पड़े।

इसके कुछ दिन बाद ही फ़र्रुखाबाद के नवाब को, जो अवध का सूबा था, एक लाख आठ हजार रुपया सालाना पेन्शन देकर गद्दी से उतार दिया।

इनमें एक दुर्गुण भी था। ये शराबी और विलासी थे। पर पीछे से तौबा करली थी। इन्होंने लखनऊ में बहुत-सी सुन्दर इमारतें बनवाईं। ये लखनऊ को एक खूबसूरत शहर की शक्ल में देखना चाहते थे। इन्होंने बहुत-से मुहल्ले और बाजार भी बनवाये।

इनकी मृत्यु पर इनके बड़े बेटे नवाब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। उन्होंने अपना ख़िताब नवाब वजीर की बजाय बादशाह रखा। बादशाही पदवी प्राप्त करके इन्होंने अपना नाम 'अबुल मुजफ्फर मुहउद्दीन शाह जिमनग़ाजीउद्दीन हैदर बादशाह' रखा। इन्होंने अपने नाम का सिक्का भी चलाया।

ये भी उदार, साहित्यिक और गुणग्राही बादशाह थे। मिरज़ा मुहम्मदजाँनवी किरमाली इनके दरबारी थे। उर्दू के प्रसिद्ध कवि आतिश और वासिख़ इन्हीं के जमाने में थे। ईद के अवसर पर कवियों को बहुत इनाम मिलता था। उस समय के प्रसिद्ध गवैये रज़कअली और फ़जलअली का भी दरबार में पूरा मान था। यह दोनों 'ख्याल' गाने में अपना सानी नहीं रखते थे। एक दक्षिणी वेश्या का भी इनके यहाँ बहुत मान था।

इनके प्रधान मन्त्री नवाब मोतमिउद्दौला आग़ा मीर थे जो बड़े बुद्धिमान् थे। इन्होंने राज्य की बड़ी उन्नति की। खजाना रुपयों से भरपूर रहा। करोड़ों रुपये ईस्ट इण्डिया-कम्पनी को कर्जा देते रहे।

बादशाह की प्रधान बेगम बादशाह-बेगम कहाती थीं, और बड़े ठाठ से अलग महल में रहती थीं। इनसे किसी बात पर बादशाह की खटक गई थी। इन्होंने भी कई अच्छी इमारतें बनवाईं। प्रसिद्ध शाह नजफ़ा इन्होंने बनवाया था। लोहे का पुल, जो गौमती नदी पर है, इन्होंने विलायत से बनवाकर मँगवाया था, पर उसे तैयार न करा सकीं, और आप की मृत्यु हो गई।

इस जमाने में कम्पनी की आर्थिक स्थिति बहुत ही नाजुक थी। उसकी हुण्डियों की दर बाजार में बारह फ़ीसदी बट्टे पर निकलती थी। इन दिनों मेजर बेली रेजीडेण्ट थे, जिनके बुरे व्यवहार से नवाब तंग आगये थे। नवाब ने गवर्नर से इनकी शिकायतें कीं। गवर्नर लखनऊ आये, पर नतीजा उल्टा हुआ। इस सम्बन्ध में स्वयं तत्कालीन गवर्नर लार्ड हेस्टिंग्स ने लिखा है:—

"नवाब मेजर बेली के उद्धत प्रभुत्व के नीचे हर घण्टे आहें भरता था। उसे आशा थी कि मैं उसे इस अन्याय से छुटकारा दिला दूँगा। किन्तु मैंने मेजर बेली का प्रभुत्व और भी पक्का कर दिया। मेजर बेली छोटी-से-छोटी बातों पर नवाब पर हुकूमत चलाता था। जब कभी मेजर बेली को नवाब से कुछ कहना होता था, वह चाहे-जब बिना सूचना दिये महल में जा-धमकता था। उसने अपने आदमियों को बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों पर नवाब के यहाँ लगा रक्खा था, जो जासूसी का काम करते थे। मेजर बेली जिस हाकिमाना शान के साथ हमेशा नवाब से बात करता था, उसके कारण उसने नवाब को उसके कुटुम्बियों और प्रजा की नजरों में गिरा दिया था।"

इस यात्रा में गवर्नर ने नवाब से ढाई करोड़ रुपये नक़द नैपाल-युद्ध के खर्च के लिये वसूल किये थे। इसके बदले नैपाल से मिली भूमि का टुकड़ा नवाब को दिया गया था, जो वास्तव में लगभग बंजर था। इसके बाद नवाब को एक दर्बार करके 'स्वतन्त्र-बादशाह' का पद दिया गया। इसमें भी एक राजनैतिक छल था। क्योंकि इस चाल से दिल्ली के साम्राज्य को भंग किया गया था। बादशाह बन कर न नवाब के अधिकार बढ़े थे, न स्वतन्त्रता—यह केवल एक हास्यास्पद प्रहसन था।

आपके बाद आपके ज्येष्ठ पुत्र ग़ाजी नसीरुद्दीन हैदर गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपना नाम अबुलबसर कुतुबुद्दीन सुलेमान जाह नसीरुद्दीन हैदर-बादशाह, रक्खा। ये पचीस वर्ष के युवक थे। इन्होंने गद्दी पर बैठते ही पिता के वजीर को बर्खास्त करके एक पीलवान को वजीर बनाया और एतमुद्दौला का खिताब दिया। पर ये शीघ्र ही मर गये। तब नवाब मुत्त-जिमुद्दौला हकीम ऐहदीअली ख़ाँ वजीर हुए। इन्होंने एक अस्पताल और

एक खैरातखाना तथा एक लीथो छापाखाना भी खुलवाया। एक अंग्रेजी स्कूल भी खुला।

नसीरुद्दीन बड़े ऐयाश थे। इनके महल में कई यूरोपियन लेडियाँ थीं। छतरमंजिल आप ही ने बनवाई थी। और भी बहुत-सी कोठियाँ आपने बनवाईं। इन्होंने कर्नल बिलकान्स की आधीनता में एक वेधशाला भी बनवा दी थी, जो ग़दर में नष्ट होगई थी। इन्होंने दस वर्ष राज्य किया।

इनके जमाने में गवर्नर लार्ड बैंटिंग थे। उन्होंने अवध के दौरे में नवाब बादशाह को खूब डरा-धमकाकर राज्य में बहुत-से उलट-फेर किये, और यह अफ़वाह फैल गई थी कि अङ्गरेज अब नवाबी का अन्त किया चाहते हैं। नवाब ने घबराकर इंगलिस्तान की पार्लियामेण्ट में अपील करने के इरादे से कर्नल यूनाक-नामक फ्रान्सीसी को इङ्गलैण्ड भेजा। पर बैंटिंग ने नवाब को डरा-धमकाकर बीच ही में उसकी बर्खास्तगी का परवाना भिजवा दिया।

इनके बाद बादशाह की वेश्या का पुत्र मुन्नाजान गद्दी पर बैठा। पर नसीरुद्दीन की माता ने उसका भारी विरोध कर, उसे गद्दी से उतरवाया। कुछ खून-खराबी भी हुई। अन्त में वे चुनार में क़ैद कर लिये गये। इनके बाद नवाब सआदतअली खाँ के द्वितीय पुत्र मिरज़ा मुहम्मद-अली गद्दी पर बैठे। ये विद्या-व्यसनी और शान्त पुरुष थे। हुसेनबाद का इमामबाड़ा इन्होंने बनवाया था। इन्होंने सिर्फ़ ५ वर्ष राज्य किया।

इनके बाद मिरज़ा मुहम्मद अमजदअली खाँ गद्दी पर बैठे। ये शाह मुहम्मदअली के बेटे थे। ये भी ५ वर्ष राज्य कर, मृत्यु को प्राप्त हुए।

इनके बाद प्रसिद्ध और अन्तिम बादशाह वाजिद अली शाह २५ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे। ये बड़े शौक़ीन, नाजुक मिजाज और विनोद-प्रिय थे। इन्होंने नये फ़ैशन के अँगरखे, कुरते, टोपी ईजाद किये। ठुमरी भी इन्हीं की ईजाद है। इनके जीवन में २४ घण्टे नाच-गाने का रंग रहता। स्वयं भी नाच-गाने में उस्ताद थे। सिकन्दरबाग़, कैसरबाग़ आदि इमारतें इन्हीं की बनवाई हुई हैं।

यह नवाब जवान, सुन्दर, उत्साही और समझदार था। इसने अवध का राज-रोग समझ लिया था। इसने मुस्तैदी से सेना को सुधारना शुरू

किया, और रोजाना अपने सामने फ़ौज से क़वायद करानी शुरू की। बादशाह दोपहर तक क़वायदें देखता था। कम्पनी-सरकार ने इस काम से नवाब को बलपूर्वक रोका।

लार्ड डलहौज़ी ने गवर्नर होते ही घोषणा कर दी कि नवाब शासन के योग्य नहीं, अतः अवध की सल्तनत कम्पनी के राज्य में मिला ली जायगी। गवर्नर के हुक्म से रेजीडेण्ट नुहरम महल में वह परवाना लेकर गया, और उस पर नवाब को दस्तखत करने को कहा। नवाब ने इससे बिल्कुल इनकार कर दिया। धमकी और प्रलोभन भी दिये गये। तीन दिन गुजर गये, पर नवाब ने दस्तखत करना स्वीकार न किया। इस पर कम्पनी 'सब-सीडियरी-सेना' जबर्दस्ती महल में घुस पड़ी। महल लूट लिया गया, और वाज़िदअली को पकड़कर क़ैद करके कलकत्ते भेज दिया गया। समस्त अवध पर कम्पनी का अधिकार होगया। क़ैद में बादशाह को एक लाख रुपया महीना खर्च के लिये मिलता था। यह घटना सन् १८५६ में हुई।

इसके बाद अवध के ताल्लुकेदारों की रियासतें छीन ली गईं और अवध का तख़्त सदा के लिये धूल में मिल गया।

---

: १७ :

## रुहेलों का अन्त

अवध के उत्तर और गंगा के पूर्व हिमालय की तराई में जो हरा-भरा सुहावना प्रदेश है, वही रुहेलखण्ड है। दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के जमाने में यहाँ का सूबेदार नवाब अली मुहम्मद था। सन् १७४८ में जब वह मरा, तो उसके आधीन एक लाख सेना अफ़गानों और पठानों की थी। खजाने में तीन करोड़ चालीस लाख रुपये और एक करोड़ सोलह लाख सोने की मोहरें थीं।

अवध के नवाब बहुत दिनों से रुहेलखण्ड को हथियाना चाहते थे, मगर जब कभी सब रुहेल-सर्दार मिलकर युद्ध का डङ्का बजाते थे, तब उनकी संख्या अस्सी हजार पहुँचती थी। इसके सिवा वे वीर भी थे, अतः नवाब को उन्हें छेड़ने का साहस न होता था। अब उसने अँग्रेजों की धन-लिप्सा को देखा तो उसने गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स को लिखकर इस काम में मदद माँगी। दोनों ने सलाह करली, और चालीस लाख रुपये और सेना का कुल खर्च लेना स्वीकार करके अँग्रेजों ने भाड़े पर अपनी सेना देना स्वीकार कर लिया।

रुहेलों से अँग्रेजों का कोई मतलब न था, न कुछ टण्टा था, इसके सिवा वे अन्य सूबेदारों की तरह बादशाह के अधिकार प्राप्त सूबेदार थे। ऐसी दशा में केवल रुपये के लालच से भाड़े पर सेना भेजना सर्वथा अनुचित काम था।

इस विषय पर मेकाले ने लिखा भी था :—

"धन लेकर और भड़ैतू बनाकर पामर अथवा हानिकारक काम में

प्रवृत्त होना अवश्य ही अकीर्ति का काम है, और बिना छेड़-छाड़ के किसी पर चढ़-दौड़ना अवश्य ही नीचता का काम है।"

हेस्टिंग्स ने कर्नल चैम्पियन की आधीनता में तीन ब्रिगेड अँगरेजी सेना और ४००० कड़ावीं रवाने किये। रुहेलों ने प्रथम तो बहुत-कुछ लिखा-पढ़ी की, पर अन्त में हार-कर युद्ध की तैयारियाँ कीं, और हाफ़िज रहमतखाँ ४० हजार सेना लेकर अवध के नवाब और अँगरेजों की सम्मिलित सेना की गति रोकने को अग्रसर हुए। बाबुल-नाले पर घोर युद्ध हुआ, और रुहेलों की वीरता से इस संयुक्त सेना के छक्के छूट गये। पर भारत से मुसलमानों का भाग्य-चक्र तेजी से फिर रहा था। २३ अप्रैल १७७४ में स्मरणीय दिन हाफ़िजखाँ युद्ध में मारा गया, और पूर्वी सेनाओं के दस्तूर के अनुसार उसके मरते ही सेना का उत्साह भंग होगया, और वह भाग चली। रुहेलों का अस्तित्व मिट गया!

नवाब की फ़ौज ने भागते रुहेलों को मारने और लूटने में बड़ी फुर्ती दिखाई। एक लाख से अधिक रुहेले सुख-निवासों को छोड़-छोड़कर विकट जंगलों में भाग गये।

नवाब ने फ़सल उजाड़ दी; कुछ घोड़ों से कुचलवा दी। नगर गाँवों में आग लगवा दी। क्या मनुष्य, क्या स्त्री, क्या बालक, या तो क़त्ल कर दिये गये, या अंग-भंग करके तड़पते छोड़ दिये गये, अथवा गुलाम बना-कर बेच दिये गये। रुहेले सरदारों की कुल-महिलाओं और कुमारी कन्याओं का अत्यन्त पाशविक ढंग से सतीत्व नष्ट किया गया। यह सब काम जब नर-पशु नवाब के सिपाही कर रहे थे, तब अँग्रेज-सेना तटस्थ खड़ी थी!

हेस्टिंग्स के इस कृत्य का विरोध करते हुए कलकत्ते के कुछ अंग्रेज-मेम्बरों ने विलायत को लिखा था—

"रुहेलखण्ड की बर्बादी की असली बात अब छिपाने पर भी देर तक नहीं छिपी रहेगी। अब वह समय दूर नहीं है, जब कारण बताने के पूर्व ही परिणाम प्रकट हो जायेगा। ऐसा होने पर यह निश्चय कर लेना कठिन न होगा कि किसी व्यक्ति की दुर्व्यवस्था से सम्पत्तिशाली एवं भरे पूरे एक राज्य का अकारण नाश हुआ, और उसमें बसने वाले मनुष्य भिखमंगों की दशा को प्राप्त हुए।"

खुद कर्नल चैम्पियन, जो इस काम के लिये भेजा गया था, लिखता हैं।

"हम ब्रिटिश जाति को आधुनिक रोमान्स की उपाधि से इसलिये विभूषित कर सकते हैं कि उनकी राजनैतिक सभा के सदस्य अपनी जातीय प्रतिष्ठा को कलंकित करने के लिये भाड़े पर एक अँग्रेज जनरल को काफ़िर हाकिम के आधीन कर देने की बात कभी न भूल सकेंगे।"

हेस्टिंग्स ने इस विषय में अपने बचाव में कहा था कि रुहेले मरहठों के साथ लगाव रखते थे, यदि वे उनसे मिलकर एक हो जाते, तो कम्पनी और उसके मित्र नवाब वजीर की सरहद में शान्ति बनाये रखना असम्भव हो जाता। पर यह सब झूठ था। मरहठे तो रुहेलों पर आक्रमण ही करते थे, वे उनके मित्र नहीं थे। एक बार उन्होंने मुरादाबाद तक आक्रमण किया था, और भारी लूट-पाट मचाई थी। तब रामघाट के पास नवाब वजीर ने ही मरहठों की गति को रोका था। इसके सिवा मरहठों का अन्त दो वर्ष पूर्व पानीपत के मैदान में अहमदशाह अब्दाली के भीषण युद्ध में हो चुका था, जिसमें दो लाख मरहठे उस खेत में कट मरे थे। यह कैसे सम्भव था, दो ही वर्ष में मरहठे फिर वैसे ही सशक्त बन जाते, जो उस समय की विजयिनी और सुशिक्षित कम्पनी की प्रबल सेना को, जो रुहेलों एवं नवाब-वजीर तथा क़ासिम की संयुक्त सेनाओं को बुरी तरह से पराजित कर चुकी थी, शान्ति स्थापित रखना असम्भव कर देते?—और एक हँसी के योग्य बात है कि जो नवाब वजीर कल मीरकासिम का पक्ष लेकर कम्पनी से इलाहाबाद तक का प्रदेश छिनवा बैठा था, वह आज ४० लाख रुपये देते ही कम्पनी का मित्र बन गया!

इस युद्ध के बाद ही नये शासन सुधारों की योजना हुई और गवर्नर को एक कौंसिल दी गयी। तब तक हेस्टिंग्स ही सर्वेसर्वा था, अब कौंसिल ने उससे रुहेला-युद्ध के सम्बन्ध के कागज़-पत्र माँगे। हेस्टिंग्स साहेब ने उन्हें दिखाने में आना-कानी की। कौंसिल में झगड़ा मच गया। कौंसिल के मेम्बरों ने हेस्टिंग्स के पिट्ठू मिडिलटन साहब को लखनऊ की रेजीडेन्सी से च्युत कर दिया, और कम्पनी की पल्टनें लौटा लीं। नवजात-वजीर को सब रुपये भेज देने की ताकीद कर दी।

कर्नल चैम्पियन, जिनके अधीन अँग्रेज़ी सेना रुहेलों के विरुद्ध भेजी

गई थी, नवाब से न जाने-क्यों बहुत बिगड़ गये थे, उनके ऊपर वाले नोट से ही पता चलता है कि उन्होंने नवाब को काफ़िर कहा था। अब उन्होंने ही इस युद्ध का भण्डा फोड़ किया। हेस्टिंग्स के संकेत से मिडिलटन ने इन पर कई दोष लगाये। हेस्टिंग्स ने कर्नल चैम्पियन पर नवाब की आज्ञा-भंग करने के अपराध में मुक़दमा चलाने की धमकी दी थी। इस पर कर्नल ने इस्तीफ़ा दे दिया, पर कौन्सिल के नवीन सभ्यों ने रुहेला-युद्ध की जाँच करना आरम्भ किया। कर्नल लैसली, मेजर हन्नो, कर्नल चैम्पियन आदि से जिरह हुई। सभी मैम्बर जिरह के समय प्रश्न करते थे। अनेक नई बातें प्रकट हुई।

इसी जिरह में मरहठों के आक्रमण की बात झूठ सिद्ध हुई। इसी जिरह में मुन्शी बेगम के अँगूठी-छल्ले तक उतरवाये जाने की बात खुली। इसी जिरह में महबूबख़ाँ की लड़की पर नवाब के पाशविक अत्याचार से विष खाकर आत्म-घात करने की पाप-कथा खुली। इसी जाँच में यह मालूम हुआ कि रुहेलों का डेढ़ करोड़ रुपये का माल लूटा गया है। इसी जाँच से यह बात भी खुली कि जिन रुहेले सरदारों की बेगमों ने घरों की ड्योढ़ियों के बाहर पैर नहीं धरा था—वे दाने-दाने के लिये दर-दर की भिखारिणी बनायी गयीं। इसी जाँच से विदित हुआ कि इस जीत से नवाब-वजीर को ७०-८० लाख सालाना की रियासत मिल गई। इसी जाँच में यह पता लगा कि लखनऊ के नवाब ने क़ैदी रुहेलों को अभयदान देकर उनके साथ विश्वासघात किया था। इसी जाँच से विदित हुआ कि कर्नल चैम्पियन की नजर बचाने के अभिप्राय से कठोर अत्याचार और यन्त्रणायें भुगतने के लिये रुहेले सरदार महबूबुल्लाख़ाँ और फ़िदाउल्लाख़ाँ के परिवारवाले भेज दिये गये।

---

: १८ :

## बंगाल के मुस्लिम–राज्य

१२ वीं शताब्दी में शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज चौहान को बन्दी करके दिल्ली की गद्दी ग़ुलाम कुतुबुद्दीन को दी। उसके १० वर्ष बाद उसने अपने सेनापति बख़्तियार ख़िलजी को बंगाल-विजय के लिये भेजा। उस समय बंगाल में राजा लक्ष्मणसेन राज्य करता था। उसे हटाकर बख़्तियार ने बंगाल पर अधिकार कर लिया।

इसके बाद शमशुद्दीन अल्तमश ने बंगाल के विद्रोह को दमन कर, उस पर अपना अधिकार जमाया। फिर जब अलाउद्दीन मसऊद दिल्ली के तख़्त पर था, तब मुग़लों ने तिब्बत के रास्ते से बंगाल पर आक्रमण किया था, पर पराजित होकर भाग गये।

इसके बाद ख़िलजी-वंश का वहाँ कुछ दिन अधिकार रहा। बुगरा ख़ाँ वहाँ का सूबेदार था।

मुग़ल-काल में कभी हिन्दू और कभी मुसलमान शाहजादे और अमीर बंगाल के सूबेदार रहे। शाहजहाँ के जमाने में शाहजादा शुजा और औरंगजेब के जमाने में प्रथम मीर जुमला और बाद में शाइस्ताख़ाँ वहाँ के सूबेदार रहे।

इसके बाद नवाब अलीवर्दीख़ाँ बंगाल, बिहार तथा बंगाल और उड़ीसा के सूबेदार रहे। जब उन पर मराठों की मार पड़ी और कमजोर दिल्ली के बादशाह ने उनकी मदद न की, तो नवाब ने दिल्ली के बादशाह को सालाना मालगुज़ारी देना बन्द कर दिया। परन्तु वह बराबर अपने को बादशाह के आधीन ही समझता रहा।

अलीवर्दीख़ाँ एक सुयोग्य शासक था, और उसके राज्य में प्रजा बहुत प्रसन्न थी। ऐस० सी० हिल ने लिखा है—"·········बंगाल के किसानों की हालत उस समय के फ्रान्स अथवा जर्मनी के किसानों से कहीं अधिक अच्छी थी।" बङ्गाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के सम्बन्ध में क्लाइव ने लिखा था—

"मुर्शिदाबाद शहर उतना ही लम्बा-चौड़ा, आबाद और धनवान है, जितना कि लन्दन शहर। अन्तर सिर्फ़ इतना है कि लन्दन के धनाढ्य से धनाढ्य मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है, उससे बहुत ज्यादा मुर्शिदाबाद निवासियों के पास है।" कर्नल मिल ने इस भारी सम्पत्ति को देखकर एक योजना योरोप भेजी थी। उसमें लिखा था—

"मुगल-साम्राज्य सोने-चाँदी से लबालब भरा हुआ है। यह साम्राज्य सदा से निर्बल और अरक्षित रहा है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आज तक योरोप के किसी बादशाह ने, जिसके पास जल-सेना हो, बंगाल को फ़तह करने की कोशिश नहीं की। एक ही बार में अनन्त धन प्राप्त किया जा सकता है, जो कि ब्राजील और पेरू की सोने की खानों के मुक़ाबिले होगा। मुग़लों की राजनीति ख़राब है। उनकी सेना और भी अधिक ख़राब है। जल-सेना उनके पास नहीं है। राज्य-भर में विद्रोह होते रहते हैं। नदियाँ और बन्दरगाह दोनों विदेशियों के लिये खुले हैं। यह देश इतनी ही आसानी से फ़तह हो सकता है, जितनी आसानी से कि स्पेनवालों ने अमेरिका के नंगे बाशिन्दों को अपने आधीन कर लिया था।

"अलीवर्दीख़ाँ के पास ३० करोड़ रुपया नक़द है, और उसकी सालाना आमदनी भी सवा दो करोड़ से कम नहीं। उसके प्रान्त समुद्र की ओर से खुले हुये हैं। ३ जहाजों में डेढ़ या दो हज़ार सैनिक इस काम के लिये काफ़ी हैं।"

जब अंगरेज़ बङ्गाल में आये और इन्होंने यहाँ के व्यापार से लाभ उठाना चाहा, तो वहाँ के हिन्दुओं से मिलकर उन्होंने मुस्लिम-राज्य को पतित करने की चेष्टा की। एक पंजाबी धनी व्यापारी अमीचन्द को इसमें मिलाया गया, और उसके द्वारा चुपके-चुपके बड़े-बड़े हिन्दू-राजाओं को वश में किया गया। अमीचन्द को बड़े-बड़े सब्ज़ बाग़ दिखाये गये। अमी-

चन्द के धन और अंगरेज़ों के वादों ने मिलकर, नवाब के दरबार को बेई-मान बना डाला।

इसके बाद अंगरेज़ों ने अपनी सैनिक-शक्ति बढ़ानी और क़िलेबन्दी शुरू कर दी। दीवानी के अधिकार वे प्रथम ही ले चुके थे। अलीवर्दीख़ाँ अंगरेज़ों के इस सङ्गठन को ध्यान से देख रहा था, पर वह कुछ कर न सका और उसका देहान्त हो गया।

---

: १९ :

# सिराजुद्दौला

यह भाग्यहीन युवक नवाब २४ वर्ष की आयु में अपने नाना की गद्दी पर सन् १७५६ में बैठा। इस समय मुग़ल-साम्राज्य की नींव हिल चुकी थी, और अंगरेज़ों के हौसले बढ़ रहे थे। उन्हें दिल्ली के बादशाह ने बंगाल में बिना चुंगी महसूल दिये व्यापार करने के पास दे दिये थे। इन पासों का खुल्लमखुल्ला दुरुपयोग किया जाता था, और वे किसी भी हिन्दुस्तानी व्यापारी को बेच दिये जाते थे; जिससे राज्य की बड़ी भारी हानि होती थी।

मरते वक्त अलीवर्दीख़ाँ ने पुत्र को यह हिदायत दी थी······"योरोपियन क़ौमों की ताक़त पर नजर रखना। यदि खुदा मेरी उम्र बढ़ा देता, तो मैं तुम्हें इस डर से बचा देता। अब मेरे बेटे! यह काम तुम्हें खुद करना होगा। तिलंगों के साथ उनकी लड़ाइयाँ और राजनीति पर नजर रखो—और सावधान रहो। अपने-अपने बादशाहों के घरेलू झगड़ों के बहाने इन लोगों ने मुग़ल बादशाह का मुल्क और उनकी प्रजा का धन छीनकर आपस में बाँट लिया है। इन तीनों कौमों को एक-साथ जेर करने का ख़याल न करना; अंगरेजों को ही पहले जेर करना। जब तुम ऐसा कर लोगे, तो बाक़ी क़ौमें तुम्हें ज्यादा तक़लीफ़ न देंगी।······उन्हें क़िले बनाने या फ़ौज रखने की इजाज़त न देना। यदि तुमने यह ग़लती की, तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जायगा।"

सिराजुद्दौला पर, मालूम होता है, इस नसीहत का भरपूर प्रभाव पड़ा था, और वह अंगरेज़ी शक्ति की ओर से चौकन्ना था। उसके तख़्त-

नशीन होने पर नियमानुसार अँग्रेज़ों ने उसे भेंट नहीं दी थी; इसका अर्थ यह था कि वे उसे नवाब न स्वीकार करते थे। वे प्रायः सिराजुद्दौला से सीधा सम्बन्ध भी नहीं रखते थे; आवश्यकता पड़ने पर अपना काम ऊपर-ही ऊपर निकाल लेते थे।

धीरे-धीरे नवाब और अँग्रेजों का मन-मुटाव बढ़ता गया। अँग्रेजों ने जो क़ासिम बाजार में क़िलेबन्दी करली थी, नवाब उसका अत्यन्त विरोधी था। उसने वहाँ के मुखिया को बुलाकर समझाया—"यदि अँग्रेज शान्त व्यापारियों की भाँति देश में रहना चाहते हों तो खुशी से रहें। किन्तु सूबे के हाक़िम की हैसीयत से मेरा यह हुक्म है कि वे उन सब क़िलों को फ़ौरन तुड़वाकर बराबर करदें, जो उन्होंने हाल ही में बिना मेरी आज्ञा के बना लिये हैं।"

परन्तु इसका कुछ भी फल न हुआ। अन्त में नवाब ने क़ासिम बाजार में सेना भेजने की आज्ञा देदी। अचानक क़ासिम बाजार में नवाबी सिपाही दीख पड़ने लगे। होते-होते और भी सैकड़ों सवार और बरकन्दाज़ आ-आकर शामिल होने लगे। सन्ध्या के प्रथम ही दो लड़ाके हाथी झूमते-झामते क़ासिम बाजार में आ पहुँचे। यह क़ैफियत देखकर, अँग्रेजों के प्राण काँपने लगे। राजदूत का अपमान करने की बात सबको मालूम थी। एक-एक करके अँग्रेज कोठीवाले भागने लगे। महामति हेस्टिंग्स भागकर अपने दीवान कान्ता बाबू के घर में छिप गये। सबने समझ लिया, रात्रि के अन्धकार के बढ़ने की देर है, बस नवाब की सेना बलपूर्वक क़िले में घुसकर अँग्रेजों के माल-असबाब का सत्यानाश कर, लूट-पाट मचा देगी। क़िले में जो नौकर तथा गोरे-काले सिपाही थे, वे तैयार होकर दर-वाजे पर आ डटे। परन्तु बुद्धिमान नवाब ने आक्रमण नहीं किया। उसका मतलब खून बहाने का न था। वह केवल उनकी राजनीति के विरुद्ध, क़िले बनाने की कार्यवाही का विरोध करने और अपनी आज्ञा के निरादर का दण्ड देने आया था।

सोमवार, मंगल, बुध, वृहस्पतिवार भी बीत गया। नवाब की अग-णित सेना क़िला घेरे खड़ी रही। पर आक्रमण नहीं किया। उस क्षुद्र क़िले को राख का ढेर बनाना क्षण-भर का काम था। इस चुप्पी से अँग्रेज बड़े

चकित हुए; घबराये भी। न मालूम नवाब का क्या इरादा है ! अन्त में साहस करके डॉ० फोर्थ साहब को दूत बनाकर नवाब की सेवा में भेजा।

उमरबेग ने डॉक्टर को समझा दिया—"घबराओ मत, नवाब का इरादा खून-ख़राबी का नहीं है। आपके सरदार वाट्स साहब को नवाब के दरबार में एक मुचलका लिख देना होगा और उसे वे यदि राज़ी से न लिखेंगे, तो ज़बर्दस्ती लिखाया जायगा। सिर्फ़ इतनी सेना इसीलिये यहाँ आई है।"

पर वाट्स साहब को आत्म-समर्पण करने का साहस नहीं हुआ। उन्होंने अत्यन्त नम्रतापूर्ण लिख भेजा—

"नवाब साहब का अभिप्राय ज्ञात हो जाने-भर की देर है। पश्चात् जो उनकी आज्ञा होगी—अंगरेज़ों को वह स्वीकार होगा।" इस पत्र का नवाब के दरबार से यही उत्तर मिला—"किले की चाहरदीवारी गिरा दो—बस, यही नवाब का एकमात्र अभिप्राय है।"

अंगरेज़ों ने बड़े शिष्टाचार और नम्रता से कहला भेजा कि—नवाब का जो हुक्म होगा, वही किया जायगा। परन्तु वे अपनी अभ्यस्त रिश्वत और खुशामद के ज़ोर से मतलब निकालने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने अमीर-उमरावों को इसी बल पर अपने वश में कर लिया। पर, वास्तव में अंगरेज़ सिराजुद्दौला के स्वभाव और उद्देश्य को नहीं जानते थे। उन्होंने इस खटपट का यही मतलब समझा था कि रिश्वत और भेंट लेने के लिये यह नया जाल फैलाया गया है। काले लोगों को हीन समझने वाले इन बनियों के दिमाग़ में यह बात न आई कि सिराजुद्दौला युवक और ऐयाश है—तो क्या है, वह देश का राजा है। विद्वान् सिराजुद्दौला, इन प्रलोभनों से जरा भी विचलित न हुआ।

अन्त में वाट्स साहब हाथ में रूमाल बाँधकर दरबार में हाजिर हुए। नवाब ने उनको अंगरेज़ों के उद्दण्ड-व्यवहार के लिये बहुत लानत-मलामत की। वाट्स बेचारे हवा में बेंत की तरह काँपते-थरथराते खड़े रहे। लोगों को भय था कि नवाब इन्हें कहीं कुत्तों से न नुचवा दे। परन्तु, उसने क्रोधित होने पर भी, कर्त्तव्य का ख्याल किया। उसने साहब को अपने डेरे

में जाकर मुचलका लिख देने की आज्ञा दी। वाट्स साहब ने जल्दी-जल्दी मुचलका लिख दिया। उसका अभिप्राय यह था—

"कलकत्ते का क़िला गिरा देंगे। कुछ अपराधी, जो भागकर कलकत्ते में छिप गये, उन्हें बाँधकर ला देंगे। बिना महसूल व्यापार करने की जो सनद बादशाह से कम्पनी ने पाई है, और उसके बहाने बहुतेरे अंगरेज़ों ने बिना महसूल व्यापार करके जो हानि पहुँचाई है, उसकी भर-पाई कर देंगे। कलकत्ते के अंगरेज़ कर्मचारी हॉलवेल के अत्याचारों से—देशी प्रजा जो कठिन क्लेश भोग रही है, उसे, उनसे मुक्त करेंगे,"

मुचलका लिखवाकर वाट्स और चेम्बर्स को उसकी शर्तों के पालन होने तक मुर्शिदाबाद में नजरबन्द करके नवाब शान्त हुए। परन्तु पन्द्रह दिन बीतने पर भी मुचलके की शर्तों का कलकत्ते वालों ने पालन नहीं किया। वाट्स की स्त्री और नवाब की माता में मेल-जोल था। वह अन्तः-पुर में आकर बेगम-मण्डली में 'हाय-दैया' मचाने—रोने-पीटने लगी। उसके करुण-विलापों से पिघलकर नवाब की माता ने पुत्र से दोनों को छोड़ देने का अनुरोध किया। माता की आज्ञा शिरोधार्य कर, नवाब को बिलकुल अनिच्छा से दोनों बन्दियों को छोड़ना पड़ा।

शीघ्र ही नवाब को मालूम हुआ, कि अंगरेज़-लोग मुचलके की शर्तों का पालन नहीं करेंगे। अतएव उसने व्यर्थ आलस्य में समय न खो, कल-कत्ते को एक दूत भेजा और स्वयं सेना ले चलने को तैयारी करने लगा!

अंगरेज़ों ने यह समाचार पाकर झटपट ढाका, बालेश्वर, जगदिया आदि स्थानों की कोठियों को सूचना दे दी कि, बहीखाता आदि समेट-समाट कर सुरक्षित स्थानों में चले जाओ। कलकत्ते में गवर्नर ड्रेक नगर-रक्षा के लिये सैन्य-संग्रह और बन्दोबस्त करने लगे। वास्तव में वे सिराज को अस्थायी नवाब समझते थे। उनका ख्याल था, अनेक घरेलू शत्रुओं से घिरा रहकर वह हमारे इस तुच्छ काम पर क्या दृष्टि डालेगा? इसके सिवा, अभी तक अपनी घूँस और रिश्वत पर उन्हें बहुत भरोसा था।

पर सिराजउद्दौला वास्तव में नीतिज्ञ पुरुष था। वह जानता था, कि मेरे सभी सरदार मेरे विरोधी हैं। वे बार-बार उसे कलकत्ते न जाने की सलाह देते थे; क्योंकि प्रायः सभी नमकहराम और घूस खाये बैठे थे। पर

नवाब ने किसी की न सुनी। वरन्, जिस-जिस पर उसे षड्यन्त्र का सन्देह हुआ, उस-उस को उसने अपने साथ ले लिया; जिससे पीछे का खटका भी मिट गया। राजवल्लभ, मीरजाफ़र, जगतसेठ, मानिकचन्द्र, सभी को अनिच्छा होने पर भी नवाब के साथ चलना पड़ा। अंगरेज़ों ने स्वप्न में भी न सोचा था कि वह ऐसी बुद्धिमत्ता से राजधानी के सब झगड़े मिटाकर, बिलकुल बे-खटके होकर, इतनी सैन्य ले, कलकत्ते पर आक्रमण करेगा।

७ जून को ख़बर कलकत्ते पहुँची। नगर में हलचल मच गई। अंगरेज़ लोग प्राणपण से तैयारी करने लगे। उसी क़िले में ढेरों तोपें लगादी गईं। जल-मार्ग सुरक्षित करने को, बाग़बाज़ार वाली खाई में लड़ाई के जहाज़ लगा दिये गये। १५०० सिपाही खाई के बराबर खड़े किये गये। चहारदीवारी की समस्त मरम्मत करवाकर उसमें अन्नादि भर दिया गया। मद्रास से मदद माँगने को हरकारा भेजा गया, और जिन फ्रान्सीसी शत्रुओं के डर से क़िला बनाने का बहाना किया गया था, उनसे तथा डचों से भी सहायता माँगी गई।

डच लोग तो सीधे-सादे सौदागर थे। उन्होंने लड़ाई-झगड़े में फँसने से साफ़ इनकार कर दिया। परन्तु फ्रेंचों ने जवाब दिया—"यदि अंगरेज़ी शेर प्राणों से बहुत ही भयभीत हो रहे हैं, तो वे फ़ौरन् ही बिना किसी रोक-टोक के चन्दननगर में हमारा आश्रय लें। आश्रितों की प्राण-रक्षा के लिये फ्रान्सीसी वीर सिपाही अपने प्राण देने में तनिक भी कातर न होंगे।"

इस उत्तर से अंगरेज़ लज्जित हुए, और खीझे। कलकत्ता से ढाई कोस पर गंगा के किनारे नवाब का एक पुराना क़िला था। ५० सिपाही उसमें रहते थे। वह कभी किसी काम न आता था। अंगरेज़ों ने दौड़कर उस पर हमला कर दिया। बेचारे सिपाही भाग गये। उनकी तोपें तोड़-फोड़कर अंगरेज़ों ने गंगा में बहादीं, और बड़े गौरव से अपनी विजयपताका उस पर फहरा दी। लोगों ने समझ लिया, बस, अब अंगरेज़ों की खैर नहीं है। नवाब यह उद्दण्डता न सहन करेगा। दूसरे दिन २००० नवाबी सिपाही क़िले के सामने पहुँचे ही थे, कि अंगरेज़ अफ़सर लज्जा को वहीं छोड़, खिसकने लगे। परन्तु सिपाहियों ने भागतों पर भी तरस न किया। भागते-जहाज़ों पर

तड़ातड़ गोले बरसने लगे। अंगरेज़ अपना गोला-बारूद नष्ट कर, और अपनी झण्डी उखाड़, कलकत्ते लौट आये।

यहाँ आकर, उन्होंने दो-एक और भी बढ़िया काम किये। कृष्ण वल्लभ, जो राजा राजवल्लभ का पुत्र था, और भागकर विद्रोह के अपराध में अंगरेज़ों की शरण आरहा था, उसे इस डर से क़ैद कर लिया कि, कहीं यह क्षमा-आदि माँगकर नवाब से न मिल जाय।

अमीचन्द कलकत्ते का एक प्रमुख व्यापारी था। सेठों में जैसी प्रतिष्ठा जगतसेठ की थी, व्यापारियों में वही दर्जा अमीचन्द का था। यह व्यक्ति भारतवर्ष के पश्चिमी प्रदेश का बनिया था। अंगरेज़ों ने उसी की सहायता से बंगाल में वाणिज्य-विस्तार का सुभीता पाया था। उसी की मार्फ़त अंगरेज़ गाँव-गाँव रुपया बाँटकर कपास तथा रेशमी वस्त्र की ख़रीद में खूब रुपया पैदा कर सके थे। उसकी सहायता न होती, तो अंगरेज़ लोगों को अपरिचित देश में अपनी शक्ति बढ़ाने और प्रतिष्ठा प्राप्त करने का मौक़ा कदापि न मिलता। इस व्यक्ति के परिचय में इतिहासकार अक्षयकुमार लिखते हैं—

"केवल व्यापारी कहने ही से अमीचन्द का परिचय नहीं मिल सकता। सैकड़ों विशाल-महलों से सजी हुई उसकी राजधानी, तरह-तरह की पुष्प-बेलियों से परिपूरित उसका वृहत् राज-भण्डार, सशस्त्र सैनिकों से सुसज्जित उसके महल का विशाल फाटक, देखकर औरों की तो बात क्या है स्वयं अगरेज़ उसे राजा मानते थे। विपत्ति पड़ने पर अंगरेज़ लोग सदा अमीचन्द की ही शरण लेते थे। अनेक बार अमीचन्द ही के अनुग्रह से अंगरेज़ों की इज्जत बची थी।" अंगरेज़ इतिहासकार 'अर्मी साहब' ने लिखा है—

"अमीचन्द का महल बहुत ही आलीशान था। उसके भिन्न-भिन्न विभागों में सैकड़ों कर्मचारी हर वक्त काम किया करते थे। फाटक पर पर्याप्त सेना उसकी रक्षा के लिये तैयार रहती थी। वह कोई मामूली सौदागर न था, बल्कि राजाओं की भाँति बड़ी शान-शौक़त से रहता था। नवाब के दरबार में उसका बहुत आदर था, और नवाब उसे इतना मानते थे कि कोई आफ़त-मुसीबत आने पर नवाब-सरकार से किसी तरह की सहायता लेने के लिये लोग प्रायः अमीचन्द की ही शरण लेते थे।"

जिस समय नवाब की सेना कलकत्ते की तरफ़ आरही थी, तो अमीचन्द के मित्र राजा रामसिंह ने गुप्त रूप से एक पत्र लिखकर अमीचन्द को चेता दिया था कि 'तुम सुरक्षित स्थान में चले जाओ तो अच्छा है।' दैवयोग से यह पत्र अंगरेज़ों के हाथ लग गया। बस, इसी अपराध पर धीर-वीर अंगरेज़ों ने अमीचन्द को पकड़कर क़ैदखाने में ठूँस देने का हुक्म फ़ौज को दे दिया। अमीचन्द को इस विपत्ति की कुछ ख़बर न थी। एकाएक फ़ौज ने उसे गिरफ्तार कर लिया, और अभियुक्तों की तरह बाँधकर ले चली। कलकत्ते के देशी लोगों में इस घटना से हाहाकार मच गया।

अमीचन्द का एक सम्बन्धी, जो सारे कारबार का प्रबन्धक था, अत्याचार से डरकर स्त्रियों को कहीं सुरक्षित स्थान में पहुँचाने का बन्दोबस्त करने लगा। पर अंगरेज़ों ने जब यह सुना, तो अमीचन्द के घर पर धावा बोल दिया। अमीचन्द के यहाँ जगन्नाथ नामक एक बूढ़ा विश्वासी जमादार था। वह जाति का क्षत्रिय था। वह तत्काल अमीचन्द के नौकर बरक़न्दाज़ों को इकट्ठा करके महल के फाटक पर रक्षा करने को कमर-कसकर तैयार होगया। अंगरेज़ों ने आकर फाटक पर लड़ाई-दङ्गा शुरू कर दिया। दोनों पक्षों की मार-काट से खून की नदी बह निकली। अन्त में एक-एक करके अमीचन्द के सिपाही धराशायी हुए। मानुषिक-शक्ति से जो सम्भव था, हुआ। अंगरेज़ बड़े जोरों से अन्तःपुर की ओर बढ़ने लगे। बूढ़े जगन्नाथ का पुराना क्षत्रिय-रक्त गर्म होगया। जिन आर्य-महिलाओं को भगवान भुवन-भास्कर भी नहीं देख सकते थे, वे क्या विदेशियों द्वारा दलित होंगी? स्वामी के परिवार की लज्जावती कुल-कामिनियाँ भी क्या बाँधकर विधर्मियों की बन्दी की जायेंगी?

बस, पल-भर में बिजली तरह तड़पकर उसने इधर-उधर से टूटे-फूटे काठ किवाड़ और लकड़ी एकत्र कर आग लगादी और नङ्गी-तलवार ले, अन्तःपुर में घुस गया, तथा एक-एक कर १३ महिलाओं का सिर काट-काटकर आग में डाल दिया। अन्त में पतिव्रताओं के खून से लाल—वही पवित्र-तलवार अपनी छाती में खोंस ली, और उसी रक्त की कीचड़ में गिर पड़ा।

देखते-ही-देखते आग और धुएँ का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। बड़ी

कठिनता से जगन्नाथ को सिपाहियों ने उठाकर क़ैद किया—उसके प्राण नहीं निकले थे। पर अंगरेज़ों को भीतर घुसने का समय न मिला—धाँय-धाँय करके वह विशाल महल जलने लगा।

नवाब हुगली तक आ पहुँचा। गङ्गा की धारा को चीरती हुई सैकड़ों सुसज्जित नावें हुगली में जमा होने लगीं। डच और फ्रांसीसी सौदागरों ने नवाब से निवेदन किया कि 'यूरोप में अंगरेज़ों से सन्धि होने के कारण वे इस लड़ाई में शरीक़ नहीं हो सकते हैं।' नवाब ने उनकी इस नीति-युक्त बात को स्वीकार कर, उनसे गोला-बारूद की सहायता ले, उन्हें विदा किया।

नवाब के कलकत्ते पहुँचने की ख़बर बिजली की तरह फैल गई। अंगरेज़-लोग क़िले में घुसकर फाटक बन्द कर, बैठ रहे। जिसको जिधर राह सूझी भाग निकला। रास्तों, घाटों, जंगलों और नदियों के किनारों में दल-के दल स्त्री-पुरुष कुहराम मचाते भागने लगे। पर सबसे अधिक दुर्दशा उन अभागों की हुई थी, जिन्होंने काले चमड़े पर टोप पहनकर अपने धर्म को तिलांजलि दी थी। इनसे देशवासी भी घृणा करते थे, और अंगरेज़ भी। निदान, इन्हें कहीं आसरा न था। ये सब स्त्री, बच्चे, बूढ़े इकट्ठे होकर क़िले के द्वार पर सिर पीटने लगे। अन्त में इनके आर्तनाद से निरुपाय होकर अंगरेज़ों ने इन्हें भी क़िले में आश्रय दिया।

नवाब की बृहदाकार तोपें भीषण गर्जन द्वारा जब अपना परिचय देने लगीं, तो अंगरेज़ों के छक्के छूट गये। उन्होंने अब भी मायाजाल फैलाने घूस देने और नज़र-भेंट देने की बहुत चेष्टा की, पर नवाब ने इरादा नहीं बदला। उसका यही हुक्म था, कि क़िला अवश्य गिरा दिया जायेगा।

यह क़िला पूर्व की ओर २१० गज़, दक्षिण की ओर १३० गज़, और उत्तर की ओर सिर्फ १०० गज था। मजबूत चहारदीवारी के चारों कोनों पर चार बुर्ज थे। प्रत्येक पर १० तोपें लगी थीं। पूर्व की ओर विशाल फाटक पर ५ वृहदाकार तोपें मुँह फैला रही थीं। इसके पश्चिम की ओर गङ्गा की प्रबल धारा समुद्र की ओर बह रही थी। पूरब की ओर फाटक के पास से गुजरती हुई लाल बाजार की सीधी और सुन्दर सड़क बलिया-घाट तक चली गई थी। इस क़िले पर पूर्व, उत्तर और दक्षिण की ओर तोपों के तीन मोर्चे और भी थे। कलकत्ते के तीन ओर मराठा-खाई थी।

दक्खिन की ओर खाई न थी—घना जंगल था। पीछे गङ्गा में युद्ध-सज्जा से सजे जहाज तैयार थे। १८ जून को नवाब की तोप दगी। अंगरेज़ों ने तत्काल क़िले और जहाजों से आग बरसानी शुरू की।

अंगरेज़ों का ख़्याल था कि बाग़बाजार की ओर से ही नवाब आक्रमण करेगा। उस मोर्चे पर उन्होंने बड़ी-बड़ी तोपें लगा रखी थीं। पर अमीचन्द के उस जख्मी जमादार जगन्नाथ की सहायता से नवाब को यह भेद मालूम होगया कि नगर के दक्षिण में मराठा-खाई नहीं है। अतएव नवाब ने उसी ओर आक्रमण किया।

लालबाजार के रास्ते के ऊपर पूर्व की ओर जो तोपों का मंच बनाया गया था, उसके सामने की कुछ दूर पर जेलख़ाना था। अंगरेजों ने उसकी एक दीवार को फोड़कर कुछ तोपें जुटा रखी थीं। उनका ख़्याल था कि लालबाजार के रास्ते नवाबी सेना के अग्रसर होते ही जेलख़ाने और पूर्व वाले मोर्चों से आग बरसाकर सेना को तहस-नहस कर देंगे। परन्तु नवाब की सेना अनजानों की तरह तोपों के सामने सीधी नहीं आई। उसने सावधानी से सड़कवाला रास्ता ही छोड़ दिया। केवल पहरेदारों को मारकर वह उत्तर और दक्षिण को हटने लगी।

देखते-ही-देखते अंगरेज़ी तोपों के तीनों मोर्चे घिर गये। अब तो नगर-रक्षा असम्भव हो गई। कलकत्ते के स्वामी हॉलवेल साहब और मोर्चे के अफ़सर कप्तान क्लेटन क़िले में भाग गये। मोर्चे नवाबी सेना के क़ब्जे में आगये। अब उन्हीं तोपों से किले पर गोले बरसने लगे। किले में कुहराम मच गया।

किले के नीचे गङ्गा में कुछ नाव और जहाज तैयार थे। उनके द्वारा स्त्रियों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने की व्यवस्था शाम को हुई, स्त्रियों को जहाज तक पहुँचाने को दो अफ़सर मेनिहम और फ्राँकलेण्ड रात्रि के अन्धकार में चुपके-चुपके निकले। परन्तु जहाज पर पहुँचकर उन्होंने फिर किले में आने से साफ़ इन्कार कर दिया। उनकी इस कायरता का वर्णन यरंटन साहब ने इन शब्दों में किया है—"...............उनका पारस्परिक अनैक्य और मतभेद तथा कम्पनी के कुछ प्रधान-कर्मचारियों की बिना ही

कुछ हानि उठाये भाग जाने की इच्छा,—यह ऐसे नीच काम थे, जो पराजय के अन्तिम समय में किये गये, और जो शायद अंगरेज़ों में कभी नहीं हुए।"

क़िले की भीतरी दशा अजीब थी। सब-कोई दूसरों को सिखाने में लगे थे। पर स्वयं किसी की बात को कोई नहीं मानना चाहता था। बाहर तो नवाबी सेना उन्मत्तों की भाँति कूद-फाँद और शोर मचा रही थी, भीतर फिरङ्गियों का आर्त्तनाद, सिपाहियों की परस्पर की कलह और सेनापतियों के मति-भ्रम इत्यादि से क़िले में शासन-शक्ति का सर्वथा लोप हो गया था।

बड़ी कठिनता से रात को दो बजे सामरिक सभा जुड़ी। इसमें छोटे-बड़े सभी थे। बहीखाता समेटकर भाग जाना ही निश्चय हुआ। प्रातःकाल जो भागने को एक गुप्त दरवाजा खोला गया, तो बहुत-से आदमियों ने उतावली से भागकर, किनारे पर आकर कोलाहल मचा दिया, और नावों पर बैठने में छीना-झपटी करने लगे। परिणाम बुरा हुआ—नवाबी सेना ने सावधान होकर तीर बरसाने शुरू किये। कितनी ही नावें उलट गईं। किसी तरह कुछ लोग जहाज तक पहुँचे। उस पर गोले बरसाये गये। फिर भी गवर्नर ड्रेक, सेनापति मनचन, कप्तान ग्राण्ट आदि बड़े-बड़े आदमी इस तरह से भाग गये।

अब कलकत्ते के ज़मींदार हॉलवेल साहब ही मुखिया रह गये। वे क्या करते? अंगरेज़ समझते थे कि महामति ड्रेक घबराकर मति-भ्रम होने के कारण भाग गये हैं। शायद, वे विचार कर, सहकारियों को सज्जित करके अपने साथियों की रक्षा के लिये फिर आयें। पर आशा व्यर्थ हुई। ड्रेक साहब न आये। क़िलेवालों ने लौटने के बहुत संकेत किये,—बराबर निवेदन किये। गवर्नर साहब न आये। एक अँगरेज़ने लिखा है—"केवल एक नायक और पन्द्रह वीर पुरुषों की संरक्षकता ही से दुर्गवासियों की दुर्दशा का अन्त हो सकता था। परन्तु शोक! भागे हुए अँगरेजों में ऐसे पन्द्रह वीर न थे।"

अब हारकर हॉलवेल साहब अपने पुराने सहायक अमीचन्द की शरण में गये, जो उन्हीं के क़ैदख़ाने में बन्दी पड़ा था। अमीचन्द ने उस समय उनकी कुछ भी लानत-मलामत न कर, उनके कातर-क्रन्दन से

द्रवीभूत हो नवाब के सेनानायक मानिकचन्द को एक पत्र इस आशय का लिख दिया—"अब नहीं। काफी शिक्षा मिल गई है। नवाब की जो आज्ञा होगी—अंगरेज़ वही करेंगे।"

यह पत्र हॉलवेल साहब ने चहारदीवारी पर खड़े होकर बाहर फेंक दिया। पर इसका कोई जवाब नहीं आया। पता नहीं, वह पत्र ठिकाने पहुँचा भी या नहीं। एकाएक क़िले का पश्चिम दरवाजा टूट गया, और धुआँधार नवाबी सेना क़िले में घुस आई। सब अंगरेज़ क़ैद कर लिये गये। किले के फाटक पर नवाबी पताका खड़ी कर दी गई।

तीसरे पहर नवाब ने किले में पधारकर दरबार किया। अमीचन्द और कृष्णवल्लभ को खोजा गया। अंगरेज़ों के ही इतिहास में लिखा है कि—"वे दोनों आकर जब नवाब के सामने नम्रतापूर्वक खड़े हुए, तो नवाब ने उनका तिरस्कार तो दूर रहा, उनका आदर करके आसन दिया। यही कृष्णवल्लभ था—जिसकी बदौलत इतने झगड़े हुए थे।"

इसके बाद अंगरेज़ कैदियों की तरह बाँधकर नवाब के सामने लाये गये। सामने आते ही हॉलवेल साहब के बन्धन खुलवा दिये गये, और उन्हें अभय-दान देते हुए कहा—"तुम लोगों के उद्दण्ड-व्यवहार के कारण ही तुम्हारी यह दशा हुई है।" इसके बाद सेनापति मानिकचन्द को क़िले का भार सौंपकर दरबार बर्खास्त किया। थकी-माँदी सेना आराम का स्थान इधर-उधर खोजने लगी।

यह बात बहुत प्रसिद्ध हो गई है कि नवाब ने १४६ अंगरेज उस दिन (२० जून को)—रात को—१८ फुट आयतन की कोठरी में बन्द करवा दिये, जिसमें सिर्फ एक खिड़की थी, और जिसमें लोहे के छड़ लगे हुए थे। प्रातःकाल जब दरवाज़ा खोला गया, सिर्फ २३ आदमी ज़िन्दा बचे।

काल-कोठरी की यह बात इतनी प्रसिद्ध होगई है कि समस्त भारत और इंग्लैंड में बच्चा-बच्चा इस बात को जानता है। पर यह बात प्रमाणित की जा चुकी है कि यह सिर्फ नवाब को बदनाम करने को हॉलवेल ने कहानी गढ़ी थी, जिसके अत्याचार का ज़िक्र मुचलके में है, और जो बड़ा मिथ्या-वादी आदमी था।

अत्यन्त साधारण बुद्धिवाला व्यक्ति भी समझ सकता है कि १८

फ़ुट की व्यासवाली कोठरी में १४६ आदमी, यदि वे बोरों की तरह भी लादे जाएँ तो नहीं आ सकते। इसका जिक्र न तो किसी मुसलमान लेखक ने किया है, न कम्पनी के कागजों में ही कहीं इसका ज़िक्र है, उस समय मद्रासी अंगरेज़ों और नवाब में जो पीछे हर्जाने की बात चली, उसमें भी काल-कोठरी का जिक्र नहीं है। क्लाइव ने जिस तेजी-तुर्शी के साथ नवाब से पत्र-व्यवहार किया था, उसमें भी काल-कोठरी के अत्याचार का जिक्र नहीं है। यहाँ तक कि सिराजुद्दौला और अंगरेज़ों की जो पीछे सन्धि-स्थापना हुई थी, उस में भी इसका कुछ जिक्र नहीं है। क्लाइव ने नवाब को पद-च्युत करने पर कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स को, नवाब के अत्याचारों से परिपूर्ण जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें भी काल-कोठरी का ज़िक्र नहीं है। अंगरेज़ों ने मीरज़ाफ़र को अपने हरजाने का पैसा-पैसा भरपाई का हिसाब लिखा था, पर उसमें भी काल-कोठरी का जिक्र नहीं है।

अंगरेज़ों ने लिखा है कि क़िले पर आक्रमण करने से प्रथम क़िले में ६०० आदमी थे, जिनमें ६० यूरोपियन थे। इनमें से बहुतेरे ड्रेक के साथ भाग गये, २५ मर गये, ७० घायल पड़े थे। तिस पर भी १६४ आदमी कहाँ से बन्द किये गये!

यह कहानी वास्तव में २८ फरवरी को हॉलवेल ने अपने एक दोस्त को गढ़कर सुनाई थी। इंग्लैंड में भारतीय अंगरेज़ों के अत्याचार और नवाब की हत्या का समाचार पाकर रौरा मचा, तब यह सर्व-साधारण पर प्रकट की गई और बड़ी सफलता से इसका प्रभाव पड़ा। हॉलवेल साहब इसका एक स्मृति-स्तम्भ भी बनवा गये थे, पर पीछे वह अंगरेज़ों ने ही गिरा दिया। आज इसी कल्पित काल-कोठरी की यातना प्रत्येक जेल में प्रत्येक क़ैदी को भुगतनी पड़ती है।

ये हॉलवेल साहब वास्तव में पहले डॉक्टर थे, और अंगरेज़ों की कम्पनी से इन्हें ६००) रुपये तन्ख्वाह मिलती थी। नज़र-भेंट में भी ख़ासी आमदनी होती थी। पर ये काले लोगों के प्रति बड़े ही निर्दयी थे। इसी से नवाब ने मुचलक़ा लिखाया था। जब कलकत्ता फ़तह हुआ, तो हॉलवेल साहब का सर्वनाश हुआ। साथ ही वे बन्दी करके मुर्शिदाबाद लाये गये। पर पलासी-युद्ध में मीरजाफ़र से घूँस में १ लाख रुपया इन्हें मिला। तब

उन्होंने कलकत्त के पास थोड़ी-सी जमींदारी ख़रीद ली। कुछ दिन कलकत्ते के गवर्नर भी रहे। पर शीघ्र-ही विलायत के अधिकारियों से लड़ने-भिड़ने के कारण अलग कर दिये गये, और जिस मीरजाफर ने इतना रुपया दिया था, उसे झूठा कलंक लगाकर राज्य-च्युत किया। अन्त में इंगलैण्ड जाकर मर गये।

अस्तु, कलकत्ते का शासन-भार राजा मानिकचन्द को दे, नवाब ने कलकत्ते से चलकर हुगली में पड़ाव डाला। डच और फ्रान्सीसी सौदागर गले में दुपट्टा डाले आधीनता स्वीकार करने के लिए सम्मानपूर्वक नज़र-भेंट लाये। डचों ने ४॥ लाख और फ्रेंचों ने ४॥ लाख रुपया नवाब को भेंट किया। नवाब ने दो अंगरेज़ वाट्स और क्लेट को बुलाकर यह समझा दिया कि—"मैं तुम लोगों को देश से बाहर निकालना नहीं चाहता, तुम ख़ुशी से कलकत्ते में रहकर व्यापार करो।" नवाब तो राजधानी को लौट गये। अंगरेज़ कलकत्ते में वापिस आये और अमीचन्द की उदारता की बदौलत उन्होंने अन्न-जल पाया।

इस यात्रा से लौटकर ११ जुलाई को नवाब ने राजधानी में गाजे-बाजे से प्रवेश किया। तोपों की सलामी दगी। नाच-रंग होने लगे। नवाब रत्नजटित पालकी पर अमीर-उमरावों के साथ नगर में होकर जब गाजे-बाजे से मोती-झील को जा रहा था, उस समय रास्ते में, कारागार में स्थित हॉलवेल साहब पर उसकी नजर पड़ी। उसने तत्काल सब बाजे बन्द करवा दिये, और पालकी से उतर, पैदल कारागार के द्वार पर जाकर चोबदार को हॉलवेल की हथकड़ी-बेड़ी खुलवाने का हुक्म दिया। हॉलवेल साहब और उसके तीन साथियों को यथेच्छ स्थान में जाने को मुक्त कर दिया। हॉलवेल साहब ने स्वयं यह बात लिखी है।

धीरे-धीरे अंगरेज फिर कलकत्ते में आकर वाणिज्य करने लगे। पर शीघ्र ही एक दुर्घटना हो गई। एक अंगरेज़ सर्जन ने एक निरपराध मुसलमान की हत्या कर डाली। बस, राजा मानिकचन्द की आज्ञा से सब अंगरेज़ कलकत्ते से बाहर कर दिये गये। अंगरेज़ लोग निरुपाय होकर पालता-बन्दर पर इकट्ठे होने लगे। इस अस्वास्थ्यकर स्थान में अंगरेज़ों की बड़ी दुर्दशा हुई। प्रचण्ड गर्मी, तिस पर निराश्रय, और खाद्य-पदार्थों का अभाव!

जहाज का भण्डार खाली, पास में रुपया नहीं। न कोई बाजार ! केवल कुछ डच, फ्रान्सीसी और काले बंगालियों की कृपा से कुछ खाद्य-पदार्थ मिल जाया करते थे।

दुर्दशा के साथ दुर्गति भी उनमें बढ़ गई। किसके दोष से हमारी यह दुर्दशा हुई ?—इसी बात को लेकर परस्पर विवाद चला। सब लोग कलकत्ते की कौंसिल को सारा दोष देने लगे। कौंसिल के सब लोग परस्पर एक-दूसरे को दोष देने लगे। घोर वैमनस्य बढ़ा। अन्त में सब यही कहने लगे कि लोभ में आकर कृष्णवल्लभ को जिन्होंने आश्रय दिया, और कम्पनी के नाम से परवाने औरों को बेचकर जिन्होंने बदमाशी की, वे ही इस विपित्त के मूल कारण हैं।

पाँचवीं अगस्त को मद्रास में भागे हुए अंगरेज़ों ने पहुँचकर कलकत्ते की दुर्दशा का हाल सुनाया। सुनकर सबके सिर पर वज्र गिरा। सब हत्-बुद्धि होगये। सबने अन्त में एक कमेटी की; खूब गर्जन-तर्जन हुआ। उन दिनों फ्रान्स से युद्ध छिड़ने के कारण अंगरेज़ों का बल क्षीण हो रहा था। वे इसलिये कुछ निश्चय न कर सके।

उधर पालता बन्दर में अंगरेज़ चुपचाप नहीं बैठे थे। यदि नवाब पालता-बन्दर तक बढ़ा चला आता, तो अंगरेज़ों को चोरों की तरह भी भागने का अवसर न मिलता। पर उनका उद्देश्य केवल उनके दुष्ट व्यवहार का दण्ड देना ही था। अनेक बंगाली इन दुर्दिनों में भी लुक-छिप कर इनकी सहायता कर रहे थे। औरों की तो बात अलग रही—स्वयं अमीचन्द, जिसका अँगरेज़ों ने सर्वनाश किया था, और जो इन्हीं की कृपा से शोक-ग्रस्त और मर्म-पीड़ित हो, पथ का भिखारी बन चुका था, वह भी नवाब के दरबार में उनके उत्थान के लिये बहुत-कुछ अनुनय-विनय कर रहा था। उसने एक गुप्त चिट्ठी अंगरेजों को लिखी थी जिसका आशय था—

"सदा की भाँति आज भी मैं उस भाव से आप लोगों का भला चाहता हूँ। यदि आप ख्वाजा वाजिद, जगतसेठ या राजा मानिकचन्द से गुप्त पत्र-व्यवहार करना चाहें, तो मैं आपके पत्र उनके पास पहुँचाकर जवाब मँगा दूँगा।"

इस पत्र से अंगरेजों को साहस हुआ। शीघ्र ही मानिकचन्द की

कृपादृष्टि उन पर हुई। उनके लिये बाज़ार खोल दिया गया, और तरह-तरह की नम्र विनतियों से नवाब के दरबार में व्यापार करने के आज्ञा-पत्र के साथ प्रार्थना-पत्र जाने लगे, और उनके सफल होने की भी कुछ-कुछ आशा होने लगी। परन्तु इसी बीच में क़ासिम-बाज़ार से हेस्टिंग्स ने लिखा,—"मुर्शिदाबाद में बड़ी गड़बड़ी मची है। दिल्ली से शौक़तजंग ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की नवाबी की सनद प्राप्त करली है, और प्रायः सभी जमींदार उसके पक्ष में तलवार उठायेंगे। अब सिराजुद्दौला का गर्व चूर्ण हुआ चाहता है।"

इस ख़बर के मिलते ही अंगरेजों के इरादे ही बदल गये। अब वे शौक़तजंग से मेल बढ़ाने की व्यवस्था करने लगे। पर नवाब को इसकी कुछ ख़बर न थी। उसके पास बराबर अनुनय-विनय के पत्र जा रहे थे। जो उसे इस राज-विद्रोह की कुछ भी ख़बर लग जाय, तो शायद पालता बन्दर ही अंगरेज़ों का समाधि क्षेत्र बन जाय!

इधर मद्रासवाले अंगरेज़ों ने कोई दो महीने पीछे कलकत्ते की रक्षा का निश्चय बड़े वाद-विवाद के बाद किया, और कर्नल क्लाइव तथा एड-मिरल वाट्सन के साथ और स्थल की सेनायें भेज दी गईं। ये लोग ५ सैनिक जहाजों के साथ १३ वीं अक्तूबर को चले। ५ जहाजों पर असबाब था। ६०० गोरे और १५०० काले सिपाही थे।

दिल्ली का सिंहासन धीरे-धीरे काल के काले हाथों से रंग रहा था। पर अब भी उसके नाम के साथ चमत्कार था। नवाब ने सुना कि शाह-जादा शौक़तजंग अंग्रेजों की सहायतार्थ आ रहा है तो उसने उसके आने से पूर्व ही शौकत-जंग को परास्त करने का निश्चय किया। उसे यह मालूम था कि शौक़तजंग बिलकुल मूर्ख, घमण्डी और दुराचारी आदमी है, और उसके साथी—स्वार्थी और ख़ुशामदी। उसे हराना सरल है। परन्तु वह भी अलीवर्दीखाँ खानदान का था। अतएव उसने शौक़तजंग को एक चिट्ठी लिखकर समझाया। उसका जवाब जो मिला वह यह था—

"हम बादशाह की सनद पाकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा के नवाब हुए हैं। तुम हमारे परम आत्मीय हो। इसलिए हम तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहते। तुम पूर्वी बंगाल के किसी निर्जन स्थान में भाग कर

अपने प्राण बचाना चाहो, तो हम उसमें बाधा नहीं देंगे। बल्कि तुम्हारे लिये सुव्यवस्था कर देंगे, जिससे तुम्हें अन्न-वस्त्र का कष्ट न हो। बस, देर मत करना, पत्र को पढ़ते ही राजधानी छोड़कर भाग जाओ। परन्तु—ख़बरदार ! ख़ज़ाने के एक पैसे में भी हाथ न लगाना। जितनी जल्दी हो सके, पत्र का जवाब लिखो ! अब समय नहीं है। घोड़े पर जीन कसा हुआ है, पाँव रक़ाब में डाल चुका हूँ। केवल तुम्हारे जवाब की देर है।"

इस पत्र से ही प्रमाणित होता है कि शौक़त किस योग्यता का आदमी था। नवाब ने यह पत्र उमरावों को पढ़ सुनाया। उसे आशा थी, सब कूच की सलाह देंगे, और बाग़ी, गुस्ताख़ शौक़त को सब बुरा कहेंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। मंत्री से लेकर दरबारियों तक ने विषय छिड़ते ही वाद-विवाद उठाया। जगतसेठ ने प्रतिनिधि बनकर साफ़ कह दिया—"जब आपके पास बादशाह की सनद नहीं है—शौक़तजंग ने उसे प्राप्त कर लिया है, ऐसी दशा में कौन नवाब है—इसका कुछ निर्णय नहीं हो सकता।"

नवाब ने देखा, विद्रोह ने टेढ़े मार्ग का अवलम्बन किया है। उसने गुस्से में आकर जगतसेठ को क़ैद कर लिया और दरबार बरखास्त कर दिया। फिर फ़ौरन आक्रमण करने को पुर्निया की ओर कूच कर दिया।

शौक़तजंग मूर्ख, घमण्डी और निकम्मा नौजवान था। वह किसी की राय न मान, स्वयं ही सिपहसालार बन गया। इससे प्रथम उसने युद्ध-क्षेत्र की कभी सूरत भी नहीं देखी थी। अनुभवी सेनापतियों ने सलाह देनी चाही, तो उसने अकड़कर जवाब दिया—"अजी मैंने इस उमर में ऐसी-ऐसी सौ फ़ौजों की फ़ौजकशी की है। सेनानायक बेचारे अभिवादन कर-करके लौटने लगे। परिणाम यह हुआ कि इस युद्ध में शौक़तजंग मारा गया। नवाब की विजय हुई। पुर्निया का शासन-भार महाराज मोहनलाल को देकर और शौक़त की माँ को आदर के साथ संग लाकर नवाब राजधानी में लौट आया, तथा शौक़त की माँ सिराज की माँ के साथ अन्तःपुर में रहने लगी।

इस बीच में उसे अंगरेज़ों पर दृष्टि देने का अवकाश न मिला था। अतः उन्होंने घूस-रिश्वत दे-दिलाकर बहुत से सहायक बना लिये थे। जगतसेठ को

मेजर किलप्याट्रिक ने लिखा—"अंगरेज़ों को अब आपका-ही भरोसा है। वे क़तई आप पर-ही निर्भर हैं।" जो अंगरेज़ एक वर्ष पहले कलकत्ते में टकसाल खोलकर जगतसेठ को चौपट करने के लिये बादशाह के दरबार में घूस के रुपयों की बौछार कर रहे थे, वे ही अब जगतसेठ के तलुए चाटने लगे। मानिकचन्द को घूस देकर पहले ही मिला लिया गया था। सबने मिलकर अंगरेज़ों को पुनः अधिकार देने के लिए नवाब से प्रार्थना की। नवाब राज़ी भी हुआ।

परन्तु अंगरेज़ इधर लल्लो-चप्पो कर रहे थे, उधर मद्रास से फौज़ मँगाने का प्रबन्ध कर रहे थे। नमकहराम मानिकचन्द ने नदी की ओर बहुत-सी तोपें सजा रखी थीं। पर सब दिखावा था, वे सब टूटी-फूटी थीं। क़िले में सिर्फ़ २०० सिपाही थे, और हुगली के क़िले में सिर्फ़ ५०। ये सब खबरें अंगरेज़ों को मिल रही थीं।

क्लाइव और वाट्सन धीरे-धीरे कलकत्ते की ओर बढ़े चले आ रहे थे। दोनों 'चोर-चोर मौसेरे भाई' थे। कुछ दिन पहले मालाबार के किनारे पर युद्ध-व्यापार में दोनों ने खूब लाभ उठाया। मराठों ने इन दोनों की सहायता से स्वर्ण-दुर्ग को चट कर डाला था, और इसके बदले इन्हें १५ लाख रुपये मिले थे। उड़ीसा के किनारे पहुँचकर एक दिन जहाज़ पर ही दोनों में इस बात का परामर्श हुआ कि यदि बंगाल को हमने लूट पाया, तो लूट में से किसे कितना हिस्सा मिलेगा। दोनों में बहुत वाद-विवाद के पीछे अद्धम-अद्धा तय हुआ।

जिन्होंने इन दोनों को बंगाल भेजा था—उन्होंने सिर्फ़ बंगाल में वाणिज्य-स्थापना करने की हिदायत कर दी थी, और बिना रक्त-पात के यह काम हो, इसीलिये निज़ाम और सरकार के नवाब से सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ भी सिराजुदौला के नाम लिखाई थीं। पर ये लोग तो रास्ते ही में लूट के माल का हिसाब लगा रहे थे।

इधर पालता-बन्दर के अंगरेज़ों की विनीत प्रार्थना से नवाब उन्हें फिर से अधिकार देने को राजी होगया था। सब बखेड़ों का अन्त होने वाला था, कि एकाएक नवाब को खबर लगी, कि मद्रास से अंगरेज़ों के जहाज फौज़ और गोला-बारूद लेकर पालता-बन्दर आगये हैं। इस ख़बर के

साथ ही वाट्सन साहब का एक पत्र भी आया, जिसमें बड़ी हेकड़ी के साथ नवाब को अंगरेज़ों के प्रति निर्दय-व्यवहार की मलामत की गई थी, और उन्हें फिर बसने देने और हर्जाना देने के सम्बन्ध में वैसी-ही हेकड़ी के शब्दों में बातें लिखी थीं।

इनके साथ-ही क्लाइव ने भी बड़ा अभिमानपूर्ण पत्र नवाब को लिखा, जिसमें लिखा था—"मेरी दक्षिण की विजयों की ख़बर आपने सुनी ही होगी—मैं अंगरेज़ों के प्रति किये गये आपके व्यवहार का दण्ड देने आया हूँ।"

कलकत्ते के व्यापारी भी लड़ाई को दबाना चाहते थे, क्योंकि नवाब ने उन्हें अधिकार देना स्वीकार भी कर लिया था। परन्तु क्लाइव और वाट्सन के तो इरादे ही और थे।

वे शीघ्र-ही सज्जित होकर कलकत्ते की ओर बढ़ने लगे। गंगा किनारे बजबज नामक एक छोटा क़िला था। अंगरेज़ों ने उस पर धावा कर दिया। मानिकचन्द ढोंग बनाने को कुछ देर झूठ-मूँठ लड़ा, पर शीघ्र ही भागकर मुर्शिदाबाद जा पहुँचा। यही हाल कलकत्ते के क़िलेवालों का भी हुआ। सूने क़िले में क्लाइव ने धूमधाम से प्रवेश किया।

इस बढ़िया विजय पर क्लाइव और वाट्सन में इस बात पर खूब ही झगड़ा हुआ कि क़िले पर कौन अधिकार जमाये? अन्त में क्लाइव ही उसका विजेता माना गया। अब ड्रेक साहब पुनः बड़े गौरव से कलकत्ते आकर बिना किसी लज्जा के गवर्नर बन गये।

क़िले के भीतर की सब वस्तुएँ ज्यों-की त्यों थी। नवाब ने उसे लूटा न था; न किसी ने चुराया। क़िला फ़तह होगया, मगर लूट तो हुई ही नहीं। क्लाइव को बड़ी आतुरता हुई। अन्त में हुगली लूटने का निश्चय हुआ। वह पुरानी व्यापार की जगह थी। वाणिज्य भी वहाँ खूब था। मेजर किलप्याट्रिक बहुत दिन से बेकार बैठे थे। उन्हें ही यह कीर्ति-सम्पादन का काम सौंपा गया। पैदल, गोलन्दाज़, सभी अंग्रेज़ हुगली पर टूट पड़े। नगर को लूट-पाटकर आग लगा दी गई।

हुगली को लूटकर जब अंगरेज़ क़िले में लौट आये, नवाब का पत्र मिला—

"मैं कह चुका हूँ कि कम्पनी के प्रधान कर्मचारी ड्रेक ने मेरी आज्ञा के विपरीत आचरण करके मेरी शासन-शक्ति का उल्लंघन किया तथा दरबार को निकासी का पावना अदा न कर, मेरी भागी प्रजा को आश्रय दिया। मेरे बार-बार रोकने पर भी उन्होंने इसकी परवा नहीं की। इसी का मैंने उन्हें दण्ड दिया···अतएव राज्य और राज्य के निवासियों के कल्याण के लिये मैं तुम्हें सूचित करता हूँ कि किसी व्यक्ति को अध्यक्ष नियुक्त करो, तो पूर्व-प्रचलित नियम के अनुसार ही तुमको वाणिज्य के अधिकार प्राप्त होंगे। यदि अंगरेज़ों का व्यवहार व्यापारियों जैसा रहेगा, तो इस सम्बन्ध में वे निश्चिन्त रहें कि मैं उनकी रक्षा करूँगा, और वे मेरे कृपा-पात्र रहेंगे।"

नवाब के इस पत्र का अंग्रेजों ने इस प्रकार जवाब भेजा—]

"आपने इस झगड़े की जड़ जो ड्रेक साहब का उद्दण्ड व्यवहार लिखा है—सो आपको जानना चाहिये कि शासक और राजकुमार लोग न आँख से देखते हैं, न कानों से सुनते हैं। प्रायः असत्य ख़बर पाकर-ही काम कर बैठते हैं।·······क्या एक आदमी के अपराध में सब अंगरेज़ों को निकालना उचित था!·······वे लोग शाही फ़रमान पर भरोसा रखकर उस रक्त-पात और उन अत्याचारों के बजाय—जो दुर्भाग्य से उन्हें सहने पड़े—सदैव अपने जान-माल को सुरक्षित रखने की आशा रखते थे। क्या यह काम एक शाहज़ादे की प्रतिष्ठा के योग्य था?···············इसलिये आप यदि बड़े शाहज़ादे की तरह न्यायी और यशस्वी बना चाहते हैं, तो कम्पनी के साथ जो आपने बुरा व्यवहार किया है; उसके लिये उन बुरे सलाहकारों को, जिन्होंने आपको बहकाया था—दण्ड देकर कम्पनी को सन्तुष्ट कीजिये, और उन लोगों को, जिनका माल छीना गया है—राज़ी कीजिये, जिससे हमारी तलवारों की वह धार म्यान में रहे, जो शीघ्र ही आपकी प्रजा के सिरों पर गिरने के लिये तैयार है। यदि आपको मि० ड्रेक के विरुद्ध कोई शिकायत है, तो आपको उचित है कि आप उसे कम्पनी को लिख भेजिये, क्योंकि नौकर को दण्ड देने का अधिकार स्वामी को होता है। यद्यपि मैं भी आपकी तरह सिपाही हूँ, तथापि यह पसन्द करता हूँ कि यह आप स्वयं अपनी इच्छा से सब काम करदें। यह कुछ अच्छा नहीं होगा कि मैं आपकी निरपराध प्रजा को पीड़ित करके आपको यह काम करने पर बाध्य करूँ·········।"

यह पत्र वाट्सन साहब ने लिखा था। जिस समय नवाब को यह पत्र मिला, उस समय के कुछ पूर्व ही हुगली की लूट का भी वृत्तान्त मिल चुका था। नवाब अंगरेज़ों के मतलब को समझ गया, और अब उसने एक चिट्ठी अंगरेज़ों को लिखी—

"तुमने हुगली को लूट लिया, और प्रजा पर अत्याचार किया। मैं हुगली आता हूँ। मेरी फ़ौज तुम्हारी छावनी की तरफ़ धावा कर रही है। फिर भी यदि कम्पनी के वाणिज्य को प्रचलित नियमों के अनुकूल चलाने की तुम्हारी इच्छा हो, तो एक विश्वास-पात्र आदमी भेजो, जो तुम्हारे सब दावों को समझकर मेरे साथ सन्धि स्थापित कर सके। यदि अंगरेज व्यापारी ही बनकर पूर्व नियमों के अनुसार रह सकें—तो मैं अवश्य ही उनकी हानि के मामले पर भी विचार करके उन्हें सन्तुष्ट करूँगा।

"तुम ईसाई हो, तुम यह अवश्य जानते होगे कि शान्ति-स्थापना के लिये सारे विवादों का फैसला कर डालना—और विद्वेष को मन से दूर रखना कितना उत्तम है, पर यदि तुमने वाणिज्य-स्वार्थ का नाश करके लड़ाई लड़ने ही का निश्चय कर लिया है, तो फिर उसमें मेरा अपराध नहीं है। सर्वनाशी युद्ध के अनिवार्य कुपरिणाम को रोकने के लिये ही मैं यह चिट्ठी लिखता हूँ।"

हुगली की लूट और नवाब को गर्मागर्म पत्र लिख चुकने पर विलायत से कुछ ऐसी खबरें आईं कि फ्रेंचों से भयङ्कर लड़ाई आरम्भ हो रही है। भारतवर्ष में फ्रेंचों का ज़ोर अंगरेज़ों से कम न था। अंगरेज़ों लोग अब अपनी करतूतों पर पछताने लगे। शीघ्र-ही उन्हें यह समाचार मिला कि नवाब सेना लेकर चढ़ा आ रहा है। अब क्लाइव बहुत घबराया। वह दौड़कर जगतसेठ और अमीचन्द की शरण गया। परन्तु उन्होंने साफ़ कह दिया कि नवाब अब कभी सन्धि की बात न करेगा। हुगली लूटकर तुमने बुरा किया है। परन्तु जब नवाब का उक्त पत्र पहुँचा, तो मानो अंगरेज़ों ने चाँद पाया उनको कुछ तसल्ली हुई।

कलकत्ते में वणिकराज अमीचन्द के ही महल में नवाब का दरबार लगा। आँगन का बग़ीचा तरह-तरह के बाग़-बहारी और प्रदीपों से सजाया गया। चारों ओर नंगी तलवार लेकर सेनापति तनकर खड़े हुए। भारी-

भारी बहुमूल्य रत्नजटित वस्त्र पहनकर लोग दुजानू होकर, सिर नवाकर बैठे। बीच में सिंहासन, उसके ऊपर विशाल मसनद, ऊपर सोने के दण्डों पर चन्दोवा—जिस पर मोती और रत्नों का काम हो रहा था, लगाया गया। उसी रत्न-जटित चम्पे के फूल जैसी खिली मुख-कान्ति से दीप्तमान—बंगाल, बिहार और उड़ीसा का युवक नवाब आसीन हुआ।

वाट्सन और स्क्राफ्टन अंगरेज़ों के प्रतिनिधि बनकर आये। नवाब के ऐश्वर्य को देखकर क्षण-भर वे स्तम्भित रहे। पीछे हिम्मत बाँध, धीरे-धीरे सिंहासन की ओर बढ़े, और सम्मानपूर्वक अभिवादन करके नवाब के सामने खड़े हुए।

नवाब ने मधुर स्वर और सम्यक् भाषा में उनका कुशल-प्रश्न पूछा, और समझाकर कहा—"मैं तुम्हारे वाणिज्य की रक्षा करना चाहता हूँ, और अपने तथा तुम्हारे बीच में सन्धि-स्थापना करना ही मेरे इतना कष्ट उठाने का कारण है।"

अंगरेज़ों ने झुककर कहा—"हम लोग भी सन्धि को उत्कण्ठित हैं, और झगड़े-लड़ाई से हममें बड़ी बाधाएँ पड़ती हैं।" इसके बाद नवाब ने सन्धि की शर्तें तै करने को, उन दोनों के लिये दोपहर को डेरे में जाने की आज्ञा दे, दरबार बर्ख़ास्त कर दिया।

षड्यन्त्रकारियों ने देखा—काम तो बड़ी ख़ूबी से समाप्त हो गया है। उन्होंने इस अवसर पर एक गहरी चाल खेली। अंगरेज़ दोनों सिविलियन थे। लड़ाई-झगड़े के नाम से बेचारे बहुत घबराते थे। बस, मानिकचन्द ने बड़े शुभचिन्तक की तरह उनके कान में कहा—"देखते क्या हो, जान बचाना हो, तो भाग जाओ। वहाँ डेरों में तुम्हारी गिरफ्तारी की पूरी-पूरी तैयारियाँ हैं। यह सब नवाब का जाल है। नवाब की तोपें पीछे रह गई हैं। इसीलिये यह धोखा दिया जा रहा है। भागो, मशाल गुल कर दो।" इतना कह, मानिकचन्द झपटकर घर में घुस गया, और दोनों अंगरेज़ हतबुद्धि होकर भागे।

उस दिन रात-भर अंगरेज़ों ने विश्राम न किया। क्लाइव जलते अङ्गारे की तरह लाल-लाल होकर सैन्य-सज्जित करने लगा। वाट्सन ने ६०० जहाजी गोरे माँगकर अपनी पैदल सेना में मिलाये, और रात के तीन

बजे नवाब के पड़ाव पर आक्रमण कर दिया। नवाब के पड़ाव में उस समय साठ हजार सिपाही, दस हजार सवार और चालीस तोपें थीं। सब मजे में सो रहे थे। क्लाइव ने यह न सोचा, विशाल सैन्य के जागने पर क्या अनर्थ होगा? उसने एकदम तोपें दाग़ दीं।

एकदम 'गुड़म्-गुड़म्' सुनकर नवाब की छावनी में हल-चल मच गई। जल्दी-जल्दी लोग सजने लगे। सिपाही, मशाल जला, हथियार ले तोपों के पास आने लगे। फिर तो नवाब की तोपें भी प्रचण्ड अग्नि-वर्षा करने लगीं।

सवेरा हो जाने पर चारों तरफ़ धुँआ था। कुछ न दीखता था—तोपों का गर्जन चल रहा था। जब अच्छी तरह सूरज निकल आया, तब लोगों ने आश्चर्य से देखा—क्लाइव की समर-पिपासा बुझ गई है, और उसकी गर्वोन्मित्त पल्टन क़िले की ओर भाग रही है। नवाबी सेना उनका पीछा कर रही थी। अंगरेज़ों के कटे सिपाही जहाँ-तहाँ धूल में पड़े लोट रहे थे। उनकी तोपें भी छिन गई थीं।

क्लाइव की हठधर्मी से अंगरेज़ों का सर्वनाश होगया। इस तुच्छ सेना में १२० अंगरेज़ों के प्राण गये।

नवाब ने जब इस एकाएक युद्ध का कारण मालूम किया, तो—उसे अपने मन्त्रियों का क्रूर-कौशल मालूम हुआ। उसे पता लगा, मीरजाफ़र भी उस नीच काम में लिप्त है, जिसे वह अपना आदरणीय सेनापति समझता था। उसने आक्रमण रोकने की आज्ञा दी, सुरक्षित स्थान पर डेरे डलवाये और अंगरेज़ों को फिर सन्धि के लिये बुला भेजा।

क्लाइव बहुत भयभीत होगया था, और सन्धि के लिये घबरा रहा था। परन्तु वाट्सन उसकी बात को न माना। नवाब ने अंगरेज़ों की इच्छानुसार ही सन्धि करली। अंगरेज़ों ने जो माँगा—नवाब ने उन्हें वही दिया। उन्हें व्यापार के पुराने अधिकार भी मिले, क़िला भी बना रहने देना स्वीकार कर लिया, टकसाल क़ायम करके शाही सिक्के ढलाने की भी आज्ञा मिल गई, और नवाब ने अंगरेज़ों की पिछली शर्त की पूर्ति भी स्वीकार की।

इस उदार सन्धि में अँगरेज़ों को कोई बात शिकायत की न रह गई थी। परन्तु नवाब को यह न मालूम था, कि फ्रान्स के साथ जो जाति ६००

वर्ष से लड़कर भी रक्त-पिपासा को शान्त न कर सकी, वह किस प्रकार प्रतिज्ञा-पालन करेगी ? नवाब ने समझा था, बनिये हैं, चलो टुकड़े दे दिलाकर ठण्डा करें—ताकि रोज का झगड़ा मिटे।

परन्तु सन्धि को एक सप्ताह भी न हुआ था, कि अँगरेज फ्रान्सीसियों को सदा के लिये निकाल देने की तैयारी करने लगे। उन्होंने इस पर नवाब का भी मन लिया। सुनकर नवाब को बड़ा क्रोध आया, और उसने साफ़ जवाब दे दिया कि अंगरेज़ों की तरह फ्रान्सीसी भी मेरी प्रजा हैं, मैं कदापि अपने आश्रितों पर तुम्हारा कोई अत्याचार न होने दूँगा। क्या यही तुम्हारी शान्ति-प्रियता है ? अंगरेज़ चुप हो गये। नवाब ने कलकत्ते से प्रस्थान किया। पर मार्ग में ही उसे समाचार मिला कि अंगरेज़ चन्दननगर लूटने की तैयारियाँ कर रहे हैं। नवाब ने वाट्सन साहब को लिख भेजा।

"सारे झगड़ों को शान्त करने ही के लिए मैंने तुम्हें सब अधिकार तुम्हारी इच्छा के अनुसार दिये हैं।.......परन्तु मेरे राज्य में तुम फिर क्यों कलह-सृष्टि कर रहे हो ? तैमूरलंग के समय से अब तक कभी यूरोपियन यहाँ परस्पर नहीं लड़े।.........अभी उस दिन सन्धि हुई—और अब तुम फिर युद्ध ठान देना चाहते हो ? मराठे लुटेरे थे, पर उन्होंने भी सन्धि नहीं तोड़ी। तुमने सन्धि की है। इसका पालन तुम्हें करना होगा। ख़बरदार, मेरे राज्य में लड़ाई-झगड़ा न मचे। मैंने जो-जो प्रतिज्ञाएँ की हैं—उनका पालन करूँगा।"

पत्र लिखकर ही नवाब शान्त न हुआ। उसने प्रजा की रक्षा के लिये महाराजा नन्दकुमार की अधीनता में हुगली, अमरद्वीप और पलासी की सेनायें नियुक्त करदीं।

मुर्शिदाबाद पहुँचकर नवाब ने सुना कि अंगरेज़ों ने चन्दननगर पर आक्रमण करना निश्चय ही कर लिया है। उसने फिर एक फटकार का ख़त लिखती बार लिखा कि—"बाइबिल की कसम और ख्रीष्ट की दुहाई ले-लेकर भी सन्धि का पालन न करना—शर्म की बात है।"

अब की बार अंगरेज़ों ने जो जवाब लिखा, उसका सार इस प्रकार था—"आप फ्रान्सीसियों के साथ युद्ध से सहमत नहीं हैं—यह मालूम हुआ।

फ्रान्सीसी यदि हमसे सन्धि करलें, तो हम न लड़ेंगे, पर आपको सूबेदार की हैसियत से उनका ज़ामिन होना पड़ेगा।"

नवाब ने इस कूट-पत्र का सीधा जवाब दिया—उसका अभिप्राय ऐसा है—"फ्रान्सीसी यदि तुमसे लड़ेंगे, तो मैं उनको रोकूँगा। मेरा अभिप्राय प्रजा में शान्ति रखने का है। सन्धि के लिये मैंने फ्रान्सीसियों को लिखा है।........."

यथा-समय फ्रान्सीसियों का प्रतिनिधि सन्धि के लिये कलकत्ते पहुँचा, परन्तु अंगरेज़ों ने सन्धि-पत्र पर दस्तख़त करती बार अनेक वितण्डे खड़े किये। वाट्सन साहब इनमें मुख्य थे। निदान, सन्धि नहीं हुई।

उपरोक्त-पत्र में नवाब ने यह भी लिखा था कि दिल्ली की सेना मेरे विरुद्ध आरही है। यदि तुम मेरी मदद अपनी सेना से करोगे, तो मैं तुम्हें एक लाख रुपया दूँगा।

अब फ्रान्सीसी दूत को लगड़ बताकर वाट्सन साहब ने लिखा—"यदि आप हमें फ्रान्सीसियों को नाश करने की आज्ञा दें, तो हम आपकी सहायता अपनी सेना से कर सकते हैं।"

इस बार सिराजुद्दौला घोर विपित्ति में पड़ गया। बादशाही फ़ौज बड़े जोरों से बढ़ रही थी। उधर अँगरेज़ फ्रान्सीसियों के नाश की तैयारियाँ कर रहे थे। नवाब पदाश्रित फ्रान्सीसियों का सर्वनाश करवाकर अंगरेज़ों की सहायता मोल ले—या स्वयं संकट में पड़े।

वाट्सन का ख़याल था कि नवाब के सामने धर्म-अधर्म कोई वस्तु नहीं, अपने मतलब के लिये वह अंगरेज़ों को राज़ी करेगा ही। परन्तु नवाब ने वाट्सन को कुछ जवाब न देकर स्वयं सैन्य-संग्रह करने की तैयारियाँ कीं।

उधर अंगरेज़ों की कुछ नई पल्टनें बम्बई और मद्रास से आगईं। सब विचारों को ताक़ पर रखकर अंगरेज़ों ने फ्रान्सीसियों से यद्ध की ठान ली, ओर नवाब को संकटापन्न देख, वाट्सन साहन ने नवाब को लिख भेजा—

"अब साफ़-साफ़ कहने का समय आगया है। शान्ति की रक्षा यदि आपको अभीष्ट है, तो आज से दस दिन के भीतर-भीतर हमारा सब

पावना रुपया हर्जाने का चुका दीजिये, वरना अनेक दुर्घटनाएँ उपस्थित होंगी……हमारी बाक़ी फ़ौज कलकत्ते पहुँचनेवाली है, ज़रूरत पड़ने पर और भी जहाज़ सेना लेकर आवेंगे, और हम ऐसी युद्ध की आग भड़कावेंगे—जो तुम किसी तरह भी न बुझा सकोगे।……''

नवाब ने इस उद्धत पत्र का भी नर्म जवाब लिखकर जता दिया—''सन्धि के नियमानुसार मैं हर्जाना भेजता हूँ। मगर तुम मेरे राज्य में उत्पात मत मचाना। फ़ान्सीसियों की रक्षा करना मेरा धर्म है। तुम भी ऐसा ही करते, यदि कोई शत्रु भी तुम्हारी शरण आता। हाँ, यदि वे शरारत करें, तो मैं उनका समर्थन न करूँगा।''

अंगरेज़ों ने समझ लिया, नवाब की सहायता या आज्ञा मिलनी सम्भव नहीं है। उन्होंने जल-मार्ग से वाट्सन की कमान में और स्थल-मार्ग से क्लाइव की अधीनता में सेनाएँ चन्दननगर पर रवाना कर दीं।

७ फ़रवरी को सन्धि-पत्र लिखा गया, और ७ ही मार्च को चन्दननगर के सामने अंगरेज़ी डेरे पड़ गये। इस प्रकार बाइबिल और मसीह की क़सम खाकर जो सन्धि अंगरेज़ों ने की थी, उसकी एक ही मास में समाप्ति हो गई!

फ़ान्सीसियों ने क़िले की रक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया था। पास ही महाराजा नन्दकुमार की अध्यक्षता में सेना चाक-चौबन्द उनकी रक्षा के लिये खड़ी थी। क्लाइव, जो बड़े जोरों में आ रहा था—यह सब देखकर भयभीत हुआ। अन्त में अभागे अमीचन्द की मार्फ़त महाराज नन्दकुमार को भरा गया, और तत्काल वे अपनी सेना ले, दूर जा खड़े हुए। फिर मुट्ठी-भर फ़ान्सीसियों ने बड़ी वीरता से, २३ तारीख़ तक क़िले की रक्षा की और सब वीरों के धराशायी होने पर क़िले का पतन हुआ। इस प्रकार इस महायुद्ध में अंगरेज़ विजयी हुए!

इधर नवाब नन्दकुमार को वहाँ भेजकर इधर की तैयारी कर रहा था। अहमदशाह अब्दाली की चढ़ाई की ख़बर गर्म थी, और अंगरेज़ों से घूस खाकर मीरजाफ़र, जगतसेठ, रायदुर्लभ आदि नमकहरामों ने नवाब के मन में दुर्रानी के विषय में तरह-तरह की शंकायें, भय तथा विभीषिकायें भर रखी थीं। खेद की बात है, नन्दकुमार ने भी नमकहरामी की। फिर

भी नवाब ने अपना कर्तव्य-पालन किया। जो फ्रान्सीसी भागकर किसी तरह प्राण बचा, मुर्शिदाबाद पहुँच गये, उन्हें अन्न, वस्त्र, धन की सहायता दे, क़ासिमबाजार में स्थान दिया गया।

इस घृणित विजय से गर्वित अंगरेज़ों ने जब सुना, कि नवाब ने भागे हुए फ्रांसीसियों को सहायता दी है, तो वे बड़े बिगड़े। वे इस बात को भूल गये कि नवाब देश का राजा है। शरणागतों और ख़ासकर प्रजा की रक्षा करना उसका धर्म है। पहले उन्होंने लल्लो-चप्पो का पत्र लिखकर नवाब से फ्रान्सीसियों को अंगरेज़ों के समर्पण करने को लिखा। पीछे जब नवाब ने दृढ़ता न छोड़ी, तो गर्जन-तर्जन से युद्ध की धमकी दी।

नवाब ने कुछ जवाब नहीं दिया। अब वह चुपचाप, सावधान हो कर अंगरेज़ों के इरादों का पता लगाने लगा। इधर अंगरेज़ बाहर से तो फ्रान्सीसियों के नाश के लिये नवाब से कभी लल्लो-चप्पो और कभी घुड़क-फुड़क से काम ले रहे थे, और उधर नवाब को सिंहासन से उतारने की तैयारी कर रहे थे।

विलायत में, हाउस ऑफ कॉमन्स में गवाही देते हुए क्लाइव ने साफ़-साफ़ यह कहा था—

"चन्दननगर पर अधिकार होते ही मैंने सबको समझा दिया था कि बस, इतना करके बैठे रहने से काम न चलेगा—कुछ दूर और आगे बढ़ कर नवाब को गद्दी से उतारना पड़ेगा। इस मेरे मन्तव्य से सब सहमत भी हो गये थे।"

अब अंगरेज़ों ने गहरी चाल चली ; घूस की मदद से नवाब के उमरावों द्वारा यह बात नवाब से कहलाई कि फ्रांसीसियों के क़ासिमबाजार में रहने से शान्ति-भङ्ग होने की आशंका है,—आप इन्हें पटने भेज दें—वहाँ यह सुरक्षित रहेंगे। नवाब को इस बात में कुछ चाल न सूझी। उसने फ्रेंच सेनापति लॉस को पटना जाने का हुक्म दे दिया। लॉस एक बुद्धिमान अफ़सर था। उसने कुछ दिन दरबार में रहकर सब व्यवस्था भली-भाँति जाँच ली थी। उसने नवाब से कहा—

"आपके वजीर और फौजी सरदार सब अंगरेज़ों से मिले हैं, और आपको गद्दी से उतारने की कोशिश कर रहे हैं; केवल फ्रान्सीसियों के भय

से खुलने का साहस नहीं करते। हमारे हटते-ही युद्धानल प्रज्ज्वलित होगी।" नवाब ने सब बात समझकर भी लाचार कहा—"आप लोग भागलपुर के पास रहें, मैं बग़ावत की सूचना पाते ही आपको खबर दूँगा। सेनापति लॉन्स ने आँखों में आँसू भरकर सिर्फ इतना ही कहा—"यही अन्तिम भेंट है—अब हमारा-आपका साक्षात् न होगा।"

इतना करके नवाब के नमकहरामों को दण्ड देने पर कमर कसी। मानिकचन्द पर अपराध प्रमाणित हुआ, और वह क़ैद रखा गया। पर, पीछे बहुत अनुनय-विनय कर, १० लाख रुपये दे, छूट गया। उसके छूटने से ही भयङ्कर षड्यन्त्र की जड़ जमी।

इस उदाहरण से जगतसेठ, अमीचन्द, रायदुर्लभ आदि सभी भयभीत हुए—और जगतसेठ का भवन गुप्त-मन्त्रणा का भवन बना। जैन जगतसेठ, मुसलमान मीरगंज मीरजाफ़र, वैद्य राजवल्लभ, कायस्थ रायदुर्लभ, सूद-ख़ोर अमीचन्द, और प्रतिहिंसा परायण मानिकचन्द—इनमें से न किसी का मत मिलता था, न धर्म; न स्वभाव, न काम! ये केवल स्वार्थान्ध होकर एक हुए। इनके साथ ही कृष्णनगर के राजा महाराजेन्द्र कृष्णचन्द्र भूप बहादुर भी मिले। जब आधे बङ्गाल की अधीश्वरी रानी भवानी को राजा साहब की इस कालिमा का पता चला, तो उसने इशारे से उपदेश देने को उनके पास चूड़ी और सिन्दूर का उपहार भेजा, किन्तु स्वार्थ के रंग में राजा बहादुर को उस अपमान का कुछ ख़्याल न हुआ।

नवाब का ख़्याल था कि फ्रांसीसियों से जब ये सब और अंगरेज़ चिढ़ रहे हैं, तो उन्हें हटा देने से सब सन्तुष्ट हो जायेंगे, परन्तु जब नवाब ने सुना कि फ्रांसीसियों को ध्वंस करने को अंगरेज़ी पल्टन जा रही हैं, तो नवाब ने क्रोध में आकर वाट्सन साहब से कहला भेजा—"या तो इसी समय फ्रांसीसियों को पीछा न करने का मुचलक़ा लिख दो, वरना इसी समय राजधानी त्यागकर चले जाओ।"

यह ख़बर तत्काल साहब को लगी। उसने फ़ौरन व्यापारी नौकाएँ सजवाईं। उनमें भीतर गोला-बारूद था, और ऊपर चावल के बोरे। उनके ऊपर भी ४० सुशिक्षित सैनिक थे। इस प्रकार ७ नावों को लेकर क्लाइव

कलकत्ते रवाना हुआ। साथ ही क़ासिमबाजार के ख़जाने को कलकत्ते भेजने का गुप्त आदेश भी कर दिया गया।

इसके बाद वाट्सन ने नवाब को अन्तिम पत्र लिखा—

"एक भी फ्रांसीसी के ज़िन्दा रहते अंगरेज़ शान्त न होंगे। हम क़ासिमबाजार को फ़ौज भेजते हैं, और शीघ्र ही फ्रांसीसियों को बाँध लाने को पटने फ़ौज भेजी जायगी। इन सब कामों में आपको अँगरेज़ों की सहायता करनी पड़ेगी।"

यारलतीफ़खाँ, पहले जगतसेठ के यहाँ रोटियों पर नौकर था। समय पाकर वह सिराजुद्दौला की सेवा में २००० सवारों का अधिपति हो गया। मीरज़ाफर की नमकहरामी का सन्देश सर्व-प्रथम उसी के द्वारा अंगरेज़ों के पास पहुँचा। दूसरे दिन एक अरमानी सौदागर ख़्वाजा विद्रू ने, जो पहले पालता-बन्दर पर भी अँगरेज़ों की जासूसी करता था—ख़बर दी कि मीर-जाफ़र इस शर्त पर आपकी मदद को तैयार है कि आप उसे नवाब बनाइये और पीछे वह आपकी इच्छानुसार कार्य करने को तैयार है। जगतसेठ आदि सब सरदार आपके पक्ष में होंगे। यह भी सलाह हुई कि इस समय क्लाइव को लौट जाना चाहिये। नवाब शीघ्र ही पटना की तरफ दुर्रानी की फ़ौज से लड़ने को कूच करेगा। तब राजधानी पर हमला करना उत्तम होगा।

क्लाइव तत्काल लौट गया, और नवाब को अंगरेज़ों ने लिखा—"हम तो सेना लौटा लाये। अब आपने पलासी में क्यों छावनी डाल रखी है?" जो दूत इस पत्र को लेकर गया था, वह वाट्सन साहब के लिये यह चिट्ठी भी लेगया—"मीरजाफर से कहना, घबराये नहीं, मैं ऐसे ५ हजार सिपाहियों को लेकर उसके पक्ष में आ मिलूँगा, जिन्होंने युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाई।"

परन्तु अहमदशाह अब्दाली भारत से लौट गया, इसलिये नवाब को पटने जाना ही नहीं पड़ा। इसके सिवा उसने अंगरेज़ों की जाली नौकाएँ रोकलीं, और पलासी में ज्यों-की-त्यों छावनी डाले रहा। अंगरेज़ों के पीछे गुप्तचर छोड़ दिये गये। फ्रान्सीसियों को भागलपुर ठहरने को कहला भेजा, और मीर जाफर को १५ हजार सेना लेकर पलासी में रहने का हुक्म दिया।

इधर मीरजाफर से एक गुप्तसन्धि-पत्र लिखाकर १७ मई को कलकत्ते में उस पर विचार हुआ। इस सन्धि-पत्र में एक करोड़ रुपया कम्पनी को, दस लाख कलकत्ते के अंगरेज़ों, अरमानी और बंगालियों को, तीस लाख अमीचन्द को देने का मीरजाफर ने वादा किया था। इसके सिवा बग़ावत के प्रधान सहायकों और पथ-प्रदर्शकों की रक़में अलग एक चिट्ठे में दर्ज की गईं थीं। राज-कोष में इतना रुपया नहीं था। परन्तु रुपया है या नहीं?—इस पर कौन विचार करता? चारों ओर ग़दर ही तो था!

मसौदा भेजते समय वाट्सन साहब ने लिखा—"अमीचन्द जो माँगता है, उसे वही मंजूर करना। वरना, सब भण्डाफोड़ हो जायगा।" पहले तो अमीचन्द को मार डालने की ही बात सोची गयी, पीछे क्लाइव ने युक्ति निकाली। उसने दो दस्तावेज लिखाये—एक असली दूसरा जाली लाल कागज पर! इसी जाली पर अमीचन्द की रकम चढ़ाई गई थी। असली पर उसका कुछ जिक्र न था। वाट्सन ने इस जाली दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। पर, चतुर क्लाइव ने उसके भी जाली दस्तख़त बना दिये।

इसी दस्तावेज की जालसाजी के सम्बन्ध में हाउस ऑफ कॉमन्स में गवाही देते समय क्लाइव ने कहा था—

"मैंने कभी इस बात क़ो छिपाने की चेष्टा नहीं की। मेरे मत से ऐसे अवसरों पर जाल-झूठ के काम निकाला जा सकता है। मैं जरूरत पड़ने पर और सौ-बार ऐसा काम करने के लिये तैयार हूँ।"

इन महापुरुष की तारीफ में मैकॉले ने लिखा है—

"क्लाइव के घरवालों को उसके स्वभाव से कुछ आशा न थी। अतएव यह कोई आश्चर्य की बात न थी कि उन्होंने उसे दस वर्ष की आयु में कम्पनी की मुहर्रिरी से कुछ रुपया पैदा करने या मदरास में बुखार से मर जाने के लिये भारतवर्ष में भेज दिया।"

मिल ने लिखा है—"धोखे से काम निकालने में क्लाइव को जरा भी सङ्कोच न होता था, और न वह इसमें जरा-से भी कष्ट का अनुभव करता।"

यही दुर्दान्त अंगरेज़ युवक था, जिसने अंगरेज़ी साम्राज्य की नींव

भारत में जमाई, और अन्त में आत्मघात करके मरा तथा इँगलैण्ड में जिसकी मूर्ति वीर जनरल वेलिंगटन के बराबर न लग सकी।

अमीचन्द को धोखा देकर ही ये लोग शान्त न रहे। बल्कि वे उसे कलकत्ते में लाकर अपनी मुट्ठी में लाने की जुगत करने लगे। यह काम स्क्रवायल के सुपुर्द हुआ। उसने अमीचन्द से कहा—

"बातचीत तो समाप्त होगई। अब दो-ही चार दिन में लड़ाई छिड़ जायगी। हम तो घोड़े पर चढ़कर उड़न्तू होंगे, तुम बूढ़े हो—क्या करोगे! क्या घोड़े पर भाग सकोगे?" दवा कारगर हुई। मूर्ख बनिया घबराकर नवाब से आज्ञा ले, मुर्शिदाबाद भागा।

अब मीरजाफ़र से सन्धि पर हस्ताक्षर होने बाकी थे। पर गुप्तचर चारों ओर छुटे थे, वाट्सन साहब बहादुर पर्देदार पालकी में घूँघटवाली स्त्रियों का वेश धर प्रतिष्ठित मुसलमान घराने की स्त्रियों की तरह सीधे मीरजाफ़र के जनानख़ाने में पहुँचे, और मीरजाफ़र ने कुरान सिर पर रख, तथा पुत्र मीरन पर हाथ धर, सन्धि-पत्र पर दस्तख़त कर दिये। इस पर भी अंगरेज़ों को विश्वास न हुआ, तो उन्होंने जगतसेठ और अमीचन्द को ज़ामिन बनाया।

पाठक, एक बात ध्यान में रखिये कि अन्तिम समय मीरजाफ़र के हाथ कोढ़ से गल गये थे, और उसके पुत्र मीरन पर अकस्मात् बिजली गिरी थी।

इधर सिराज को इस सन्धि का पता चला। वाट्सन साहब सावधान हो घोड़े पर चढ़ हवाख़ोरी के बहाने भाग गये। नवाब ने अंगरेज़ों को अन्तिम पत्र लिख कर अन्त में लिखा—"ईश्वर को धन्यवाद है—मेरे द्वारा सन्धि भंग नहीं हुई।.............."

१२ जून को अंगरेज़ों की फ़ौज चली। जिसमें ६५० गोरे, १५० पैदल गोलन्दाज, २१ नाविक, २१०० देशी सिपाही थे। थोड़े पुर्तगीज भी थे। सब मिलाकर कुल ३००० आदमी थे। गोला-बारूद आदि लेकर २०० नावों पर गोरे चले। काले सिपाही पैदल की गंगा के किनारे-किनारे चले। रास्ते में हुगली, काटोपा, अग्रद्वीप, पलासी की छावनियों में नवाब की काफ़ी फ़ौज पड़ी थी। पर हाय! बनिये अंगरेज़ों ने सबको ख़रीद लिया था।

किसी ने रोक-टोक न की। उधर नवाब ने सब हाल जानकर भी मीरजाफ़र को उसके अपराधों को क्षमा करके महल में बुला भेजा। लोगों ने उसे गिरफ्तार करने की भी सलाह दी थी परन्तु नवाब ने समझा—अलीवर्दी के नाम और इस्लाम-धर्म को ख्याल कराकर समझाने-बुझाने से वह सीधे मार्ग पर आ जायगा। पर मीरजाफ़र डरकर राजमहल में नहीं गया। अन्त में आत्माभिमान को छोड़कर नवाब स्वयँ पालकी में बैठकर मीरजाफ़र के घर पहुँचा। मीरजाफ़र को अब बाहर निकलना पड़ा। उसकी आँखों में शर्म आई। उसने अपने प्यारे मित्र सरदार के मुख से करुणाजनक धिक्कार सुनी। मीरजाफ़र ने नवाब के पैर छूकर सब स्वीकार किया। क़ुरान उठायी और उसे सिर से लगाकर ईश्वर और पैग़म्बर की क़सम खाकर, उसने अंगरेज़ों से सम्बन्ध तोड़कर—नवाब की सेवा धर्म-पूर्वक करने की प्रतिज्ञा की।

घर की इस फूट को प्रेमपूर्वक मिटाकर नवाब को सन्तोष हुआ। अब उसने सेना का आह्वान किया। पर बाग़ियों के बहकाने से सेना ने पहले बिना वेतन पाये, युद्ध-यात्रा से इनकार कर दिया। नवाब ने वह भी चुकाया। मीरजाफ़र प्रधान सेनापति बना। यारलतीफ़ख़ाँ— दुर्लभराय—मीर मदन-मोहनलाल—और फ्रैन्च सिनफ्रे एक-एक विभाग के सेनाध्यक्ष बने।

अंगरेज़ इतिहासकारों ने मीरजाफ़र को क्लाइव का गधा लिखा है। उस क्लाइव के गधे ने क्लाइव को, नवाब के साथ जो क़सम-धर्म हुआ, था—सब लिख भेजा। साथ ही यह भी लिख दिया—"बढ़े चले आओ मैं अपने वचनों का वैसा ही पक्का हूँ।"

पर क्लाइव को आगे बढ़ने का साहस न हुआ। वह पाटुली में छावनी डालकर पड़ गया। सामने कोठाया का क़िला था। यह निश्चय हो चुका था कि सेनाध्यक्ष कुछ देर बनावटी युद्ध करके पराजय स्वीकार कर कर लेगा। क्लाइव ने पहले इसी क़ी सचाई जाननी चाही। मेजर कूट २०० गोरे और ३०० काले सिपाही लेकर क़िले पर चढ़ा। मराठों के समय में गहरी-गहरी लड़ाइयों के कारण भागीरथी और अजम के संगम का यह क़िला वीरों की लीला-भूमि प्रसिद्ध हो चुका था। परन्तु इस बार फाटक पर युद्ध नहीं हुआ। कुछ देर नवाबी सेना नाटक-सा खेलकर जगह-जगह

अपने ही हाथों से आग लगाकर भाग गई। क्लाइव ने विजय-गर्वित की तरह क़िले पर अधिकार किया। नगर-निवासी प्राण लेकर भागे—अंगरेज़ों ने उनका सर्वस्व लूट लिया। केवल चावल ही इतना मिल गया था—जो १० हजार सिपाहियों को १ वर्ष तक के लिये काफ़ी था। फिर भी क्लाइव विश्वास और अविश्वास के बीच में झकझोरे ले रहा था। हाउस ऑफ़ कॉमन्स में इस समय की बात का जिक्र करती बार उसने कहा था—

"मैं बड़ा ही भयभीत था। यदि कहीं हार जाता तो हार का समाचार ले जाने के लिये भी एक आदमी को जिन्दा वापस जाने का मौक़ा नहीं मिलता।" निदान, उसने नवाब के विरोधी वर्तमान महाराज को लिख भेजा—"आपके सवार चाहे १ हजार से अधिक न हों, तो भी आप फ़ौरन् आ मिलिये।" २२ जून को गंगा पार करके मीरजाफ़र के बनाये संकेतों पर वह आगे बढ़ा, और रात्रि के दो बजे पलासी के लक्खीबाग़ में मोर्चे जमाये।

नवाब का पड़ाव उसके नजदीक ही तेजनगरवाले विस्तृत मैदान में था। परन्तु उसकी सेना का प्रत्येक सिपाही, मानों उसका सिपाही न था। वह रात-भर अपने ख़ेमे में चिन्तित बैठा रहा।

रात बीती। प्रसिद्ध प्रभात आया। अग्रेजों ने बाग़ के उत्तर को ओर एक खुली जगह में व्यूह-रचना की। नवाब की सेना मीरजाफ़र, दुर्लभराय, यारलतीफ़ख़ाँ—इन तीन नमकहरामों की अध्यक्षता में अर्द्ध चन्द्राकार व्यूह रचना करके बाग़ को घेरने के लिये बढ़ी।

अंगरेज़ क्षण-भर को घबराये। क्लाइव ने सोचा कि यदि यह चन्द्र-व्यूह तोपों में आग लगादे, तो सर्वनाश है। पर जब उसने उस सेना के नायकों को देखा तो धैर्य हुआ। क्लाइव की गोरी पल्टन चार दलों में विभक्त हुई, जिसके नायक क्लिप्यािट्रक, ग्राण्टक्रट और कप्तान गप थे। बीच में गोरे, दाएँ-बाएँ काले सिपाही थे। नवाब की सेना के एक पार्श्व में फ्रेंच-सेनापति सिनफ्रे, एक में मोहनलाल और उनके बीच में मीरमदन। फ़ौजकशी का भार मीरमदन ने लिया। अंगरेज़ों ने देखा—नवाब का व्यूह दुर्भेद्य है।

८ बजे मीरमदन ने तोपों में आग लगाई। शीघ्र ही तोपों का दोनों

ओर से घटाटोप होगया। आधे घण्टे में १० गोरे और २० काले आदमी मर गये। क्लाइव की युद्ध-पिपासा इतने ही में मिट गई। उसने समझ लिया, इस प्रकार प्रत्येक मिनट में एक आदमी के मरने और अनेकों के ज़ख़्मी होने से यह ३०० सिपाही कितनी देर ठहरेंगे ? क्लाइव को पीछे हटना पड़ा। उसकी फ़ौज ने बाग के पेड़ों का आश्रम लिया। वे छिपकर गोले दाग़ने लगे। पर उनकी दो तोपें बाहर रह गई। चार तोपें बाग़ में थीं। नवाब की तोपों का मोर्चा चार हाथ ऊँचा था। अतएव मीरमदन की तोपों से तड़ातड़ गोले दग रहे थे।

यह देखकर क्लाइव घबरा गया। उस समय वह अमीचन्द पर बिगड़ा। उसका मजेदार हाल 'मुताख़रीन' में इस तरह लिखा है—

"क्लाइव ने अमीचन्द से बदगुमान होकर गुस्सा फ़र्माया और कहा—"ऐसा ही वायदा था कि ख़फ़ीफ़ लड़ाई में मुद्दआय-दिल हासिल हो जायगा ....और शाही फौज़ भी नवाब की मुनहरिफ़ है। ये सब तेरी बातें ख़िलाफ़ पाई जाती हैं।'

"अमीचन्द ने कहा—'सिर्फ मीरमदन और मोहनलाल ही लड़ रहे हैं। ये नवाब के सच्चे सहायक हैं। किसी तरह इन्हीं को हराइये। दूसरा कोई सेनापति हथियार न चलायेगा।"

मीरमदन वीरतापूर्वक गोले चला रहा था। उस समय मीरजाफर की सेना यदि आगे बढ़कर तोपों में आग लगा देती, तो अंगरेज़ों की समाप्ति थी। मगर वे तीनों पाजी खड़े तमाशा देखते रहे। क्लाइव ने १२ बजे पसीने से लथ-पथ सामरिक मीटिंग की। उसमें निश्चय किया कि दिन-भर बाग़ में छिपे रहकर किसी तरह रक्षा करनी चाहिये।

इतने ही में एकाएक मेंह बरसने लगा। मीरमदन की बहुत-सी बारूद भीग गई। फिर भी वह वीरतापूर्वक भागी हुई सेना का पीछा कर रहा था। इतने ही में एक गोले ने उसकी जाँघ तोड़ डाली। मोहनलाल युद्ध करने लगा। मीरमदन को लोग हाथों-हाथ उठाकर नवाब के पास ले गये। उसने ज्यादा कहने का अवसर न पाया। सिर्फ इतना कहा —"शत्रु बाग़ में भाग गये। फिर भी आपका कोई सरदार नहीं लड़ता, सब खड़े तमाशा देखते हैं।" इतना कहते-कहते ही उसने दम तोड़ दिया।

नवाब को इस वीर पर बहुत भरोसा था। इसकी मृत्यु से नवाब मर्माहत हुआ। उसने मीरजाफ़र को बुलाया। वह दल बाँधकर सावधानी से नवाब के डेरे में घुसा। उसके सामने आते ही नवाब ने अपना मुकुट उसके सामने रखकर कहा—"मीरजाफ़र? जो होगया, सो होगया। अलीवर्दी के इस मुकुट को तुम सच्चे मुसलमान की तरह बचाओ।" उसने यथोचित रीति से सम्मानपूर्वक मुकुट को अभिवादन करते हुए, छाती पर हाथ मारकर बड़े विश्वास से साथ कहा—"अवश्य ही शत्रु पर विजय प्राप्त करूँगा। पर अब शाम हो गई है, और फौजें थक गई हैं। सवेरे मैं क़यामत वर्षा कर दूँगा।"—नवाब ने कहा, "अँगरेजी फौज रात को आक्रमण करके क्या सर्वनाश न कर देगी?" उसने गर्व से कहा—"फिर हम किसलिये हैं?"

नवाब का भाग्य फूट गया। उसे मति-भ्रम हुआ। उसने फौजों को पड़ाव से लौटने की आज्ञा दे दी। तब महाराज मोहनलाल वीरतापूर्वक धावा कर रहे थे। उन्होंने सम्मानपूर्वक कहला भेजा—"बस; अब दो ही-चार घड़ी में लड़ाई का ख़ातमा होता है। यह समय लौटने का नहीं है। एक क़दम पीछे हटते ही सेना का छत्र-भंग हो जायगा। मैं लौटूँगा नहीं लड़ूँगा।"

मोहनलाल का यह जवाब सुन, क्लाइव का गधा थर्रा गया। उसने नवाब को पट्टी पढ़ाकर फिर आज्ञा भिजवाई। बेचारा मोहनलाल, साधारण सरदार था—क्या करता? क्रोध से लाल होकर कतारें बाँध, वह पड़ाव को लौट आया। गधे की इच्छा पूरी हुई। उसने क्लाइव को लिखा—"मीरमदन मर गया। अब छिपने का कोई काम नहीं। इच्छा हो, तो इसी समय, वरना रात के तीन बजे आक्रमण करो—सारा काम बन जायगा।"

बस, मोहनलाल को पीछे फिरता देख, और गधे का इशारा पा, क्लाइव ने स्वयं फौज़ की कमान ली, और बाग़ से बाहर निकल, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। यह रंग-ढंग देख बहुत-से नवाबी सिपाही भागने लगे पर मोहनलाल और सिनफ्रे फिर घूमकर खड़े हो गये।

इधर बेईमान दुर्लभराय ने नवाब को खबर दी कि आपकी फौज़

भाग रही है। आप भागकर प्राण बचाइये। नवाब का प्रारब्ध टूट चुका था। सभी हरामी, शत्रु और दगाबाज़ थे। उसने देखा—मेरे पक्ष के आदमी बहुत ही कम हैं। राजवल्लभ ने उसे राजधानी की रक्षा करने की सलाह दी। अतः नवाब ने २००० सवारों के साथ हाथी पर सवार हो, रक्ष-क्षेत्र त्यागा। तीसरे पहर तक मोहनलाल और फ्रेंच सिनफ्रे लड़े। परन्तु विश्वासघातियों से खीझकर अन्त में उन्होंने भी रण-भूमि छोड़ी। नवाब के सूने खेमे पर विजयी क्लाइव और उसके गधे ने अधिकार कर लिया।

जिस सेना ने इस महायुद्ध में ऐसी वीर-विजय पाई थी—उसके झण्डे पर सम्मानार्थ 'पलासी' लिख दिया गया है और उस बाग़ के आम की लकड़ी का एक सन्दूक बनाकर किसी साहब बहादुर ने महारानी विक्टोरिया को भेंट किया था। आज भी उस स्थान पर एक जय-स्तम्भ खड़ा; अंगरेज़ों की वीरता की कहानी कह रहा है!

राजधानी में नवाब के पहुँचने से पहले ही नवाब के हारने की ख़बर सर्वत्र फैल गई। चारों ओर भाग-दौड़ मच गई। अंगरेज़ों की लूट के डर से लोग इधर-उधर भागने लगे। नवाब ने सरदारों को बुलाकर दरबार करना चाहा। मगर औरतें तथा स्वयं उसके श्वसुर मुहम्मद रहीमखाँ ही उधर ध्यान न दे, भाग खड़े हुए। देखा-देखी सभी भाग गये।

अब सिराज ने स्वयं सैन्य-संग्रह के लिये गुप्त ख़जाना खोला। सुबह से शाम तक और शाम से रात-भर सिपाहियों को प्रसन्न करने को खूब इनाम बाँटा गया। शरीर-रक्षक सिपाहियों ने खुला ख़जाना पाकर खूब गहरा हाथ मारा, और यह धर्म-प्रतिज्ञा करके कि प्राण-पण से सिंहासन की रक्षा करेंगे—एक-एक ने भागना शुरू किया। धीरे-धीरे ख़ास महल के सिपाही भी भागने लगे। एकाएक रात्रि के सन्नाटे में मीरजाफ़र को विकराल तोपों का गर्जन सुन प्रड़ा। अभागा सज्जन और एय्याश नवाब अन्त में गौरवान्वित सिंहासन को छोड़कर अकेला चला। पीछे-पीछे पुराना द्वारपाल और प्यारी बेगम लुत्फुन्निसा छाया की तरह हो लिये।

प्रातः मीरजाफ़र ने शीघ्र ही सूने राजमन्दिर में अधिकार जमाकर नवाब की खोज में सिपाही दौड़ाये। नवाब की सब हितू-बन्धु-स्त्रियाँ क़ैद

करली गईं। वीरवर मोहनलाल भी ज़ख्मी ही क़ैद किया गया, और नीच दुर्लभराय ने उसे मार डाला। फिर भी गधे को सिंहासन पर बैठने का साहस न हुआ। वह क्लाइव का इन्तज़ार करने लगा। पर क्लाइव का कई दिनों तक नगर में आने का साहस न हुआ। २९ जून को २०० गोरे ५०० काले सिपाहियों के साथ क्लाइव ने राजधानी में प्रवेश किया। क्लाइव लिखता है —

"शाही सड़क पर उस दिन इतने आदमी जमा थे कि यदि वे अंगरेजों के विरोध का संकल्प करते तो, केवल लाठी, सोटों, पत्थरों ही से सब काम हो जाता।"

अन्त में राजमहल में आकर क्लाइव ने मीरजाफ़र को नवाब बनाकर सबसे पहले कम्पनी के प्रतिनिधि-स्वरूप नज़र पेश करके बंगाल और उड़ीसे का नवाब कहकर अभिवादन किया।

इसके बाद बाँट-चूँट, जो होना था कर लिया गया। शाहपुर के पास सिराजुद्दौला को मार्ग में मीरक़ासिम ने पकड़ लिया। उसकी असहाय बेगम लुत्फ़ुन्निसा के गहने लूट लिये और बाँधकर राजधानी को लाया गया। मुर्शिदाबाद में हलचल मच गई। बग़ावत के डर से नये नवाब ने अपने पुत्र मीरन के हाथ से उसी रात को सिराज को मरवा डाला। उस समय का भीषण वर्णन एक इतिहासकार ने इस प्रकार किया है—

"यह काम मुहम्मद के सुपुर्द हुआ। यह नमकहराम भी जाफ़र और मीरन की तरह सिराज के टुकड़ों पर पला था। मुहम्मदखाँ हाथ में एक बहुत तेज़ तलवार ले, सिराज की कोठरी में जा दाखिल हुआ। उसे इस तरह सामने देख, सिराज ने घबड़ाकर कहा—'क्या तुम मुझे मारने आये हो?'

उत्तर मिला—'हाँ'

"अन्तिम समय निकट आया समझ, सिराज़ ने ईश्वर-प्रार्थना के लिये हाथ-पैरों की जंजीर खोलने की प्रार्थना की। पर वह नामंजूर हुई। डर के मारे उसका गला चिपक गया था। उसने पानी माँगा, पर पानी भी न दिया गया। लाचार हो, जमीन पर माथा रगड़कर सिराज बार-बार ईश्वर का नाम लेकर अपने अपराधों की क्षमा माँगने लगा। इसके बाद

लपटती ज़बान और टूटे स्वर से उसने नमकहराम, टुकड़खोर लालख़ाँ से कहा—'तब, वे लोग मुझे तिल-भर जगह भी न देंगे। टुकड़ा खाने को भी न देंगे। इस पर भी वे राजी नहीं हैं?' यह कहकर सिराज कुछ देर के लिये चुप होगया।

"फिर, कुछ देर में बोला—'नहीं, इस पर भी वे राजी नहीं हैं। मुझे मरना ही पड़ेगा।'

"आगे बोलने का उसे अवसर न मिला। देखते-ही-देखते नर पिशाच की तेज तलवार उसकी गर्दन पर पड़ी। खून का फव्वारा बह निकला, और देखते-ही-देखते, बंगाल, बिहार और उड़ीसा का युवक नवाब ठण्डा होगया। हत्यारे लालख़ाँ ने उसके जिस्म के टुकड़े-टुकड़े करके, उन्हें एक हाथी पर लदवाकर शहर में घुमाने का हुक्म दिया।

"क्लाइव से अगले दिन मीरज़ाफर ने इतका जिक्र करके क्षमा माँगी तो, क्लाइव ने मुस्कराकर कहा—'इसके लिये, यदि माफी न माँगी जाती, तो कुछ हर्ज न था।"

: २० :

## मीरजाफर और मीरकासिम

मीरजाफर नवाब हुआ—और धूर्त स्क्वेफन उसका एजेण्ट बनकर दरबार में विराजा। प्रख्यात वारेन हेस्टिंग्स उसका सहायक बनाया गया। थोड़े दिन बाद स्क्वेफन कौंसिल में सभ्य नियत हुआ—तब, उक्त गौरव का पद वारेन हेस्टिंग्स को मिला। यह पद बड़ी जिम्मेदारी का था। एजेण्ट को दो बातों की कठिन जिम्मेदारियाँ थीं—एक तो यह कि कम्पनी की आय और उसके स्वार्थ में विघ्न न पड़े। दूसरे, नवाब कहीं सिर उठाकर सबल न हो जाय। नवाब यदि वेश्याओं और शराब में अधिकाधिक गहराई में लिप्त हो, तो एजेण्ट को कुछ चिन्ता न थी। उनकी चिन्ता का विषय सिर्फ

यह था कि कहीं नवाब सैन्य को तो पुष्ट नहीं कर रहा है? राज्य-रक्षा की तरफ तो उसका ध्यान नहीं है?

इन सबके सिवा जाफर ने नक़द रुपया न होने पर सन्धि के अनुसार अंगरेज़ों को कुछ जागीरें दी थी। उनकी मालगुजारी वसूली का भी उसी पर भार था। साथ ही, फ्रांसीसियों की छूत से नवाब को सर्वदा बचना भी आवश्यक था। हेस्टिंग्स ने बड़ी मुठमर्दी से उक्त पद के योग्य अपनी योग्यता प्रमाणित की।

पर मीरजाफर देर तक नवाब न रह सका। लोगों से वह घमण्ड-पूर्ण व्यवहार और झगड़े करने लगा। मुसलमान-हिन्दू, सब उससे घृणा करते थे। उधर अंगरेजों ने रुपये के लिए दस्तक भेज-भेजकर उसका नाकोंदम कर दिया। मीरज़ाफर को प्रतिक्षण अपनी हत्या का भय बना रहता था। निदान, तीन ही वर्ष के भीतर मीरजाफर का जी नवाबी से ऊब गया, और अन्त में अँगरेजों ने उसे अयोग्य कहकर गद्दी से उतार, कलकत्ते में नज़रबन्द कर दिया। उसका दामाद मीरक़ासिम बंगाल का नवाब बना। जाफर की पेन्शन नियत की गई।

एक प्रश्न उठता है कि मीरक़ासिम क्यों गद्दी पर बैठाया गया? अधिकार तो मीरन का था—जो जाफर का पुत्र था। पर वहाँ अधिकार की बात ही न थी। वहाँ तो गद्दी नीलाम की गई थी। अंगरेज बनियों की पैसे की प्यास भयङ्कर थी। कासिम ने उसे बुझाया। क़ासिम को जिस भाव नवाबी मिली थी, उसका दिग्दर्शन हंटर साहब ने अपने इतिहास में लिखा है—

"............अंगरेजों का अमित धन की माँगों को पूरा कर के लिए नवाबी खज़ाने में रुपया नहीं था। इसलिये उन्हें अपनी पहले की शर्तों की रक़म में से आधा ही लेकर सन्तोष करना पड़ा। इस रक़म की भी एक-तिहाई रकम नवाब के सोने-चाँदी के बर्तन बेचकर संग्रह की गई, और इस भुगतान के बाद नवाबी ख़जाने में फूटी कौड़ी भी न बची थी।"

क़ासिम के नवाब होने पर हेस्टिंग्स कौंसिल का मेम्बर होकर कलकत्ते आगया, और उसकी जगह पर एलिस साहब एजेण्ट बने। इनके विषय में कप्तान ट्रॉवर लिखते हैं—"एलिस साहब कलह-प्रिय एवं बहुत

ही बुरे आदमी थे, और वे जिस पद पर नियुक्त किये गये थे, उसके योग्य न थे।"

नवाब और एजेण्ट की न बनी। बात-बात पर दोनों में झंझट चलने लगी। आख़िर तंग आकर नवाब ने कलकत्ते की कौंसिल को लिखा—

"अंगरेज गुमाश्ते हमारे अधिकार की अवमानना करके प्रत्येक नगर और देहात में पट्टेदारी, फ़ौजदारी, माल और दीवानी अदालतों की जरा भी परवा नहीं करते; बल्कि सरकारी अहलकारों के काम में बाधा डालते हैं! ये लोग प्राइवेट व्यापार पर भी महसूल नहीं देते, और जिनके पास कम्पनी का पास है, वे तो अपने को कर्त्ता-धर्ता ही समझते हैं। सरकारी और अंगरेज कर्मचारियों की परस्पर की अनबन का कड़ुआ फल प्रजा को चखना पड़ रहा है, और उस पर असह्य निष्ठुर अत्याचार हो रहे हैं।"

मैकॉले साहब उस समय के अंगरेज़ों का चित्र खींचते हुए लिखते हैं—

"उस समय के कम्पनी से कर्मचारियों का केवल यही काम था, कि किसी देशी से सौ-दो-सौ पाउण्ड वसूल करके जितना शीघ्र हो सके, यहाँ की गर्मी से पीड़ित होने के पूर्व ही विलायत लौट जायें, और वहां किसी कुलीन धनी की कन्या के साथ विवाह कर, कॉर्नवाल में छोटे-मोटे एक दो गाँव खरीदकर और सेण्ट-जेम्स-स्क्वेयर में आनन्दपूर्वक मुजरा देखा करें।"

हेस्टिंग्स साहब जब एक बार पटने गये, तो क्या देखते हैं—नगर रो रहा है। एक ओर पाश्चात्य सभ्यता का दया-हीन झण्डा फहरा रहा है, दूसरी ओर सैकड़ों वर्ष से विदेशियों के अत्याचारों को सहते-सहते प्रजा उस भेड़ के समान हो गई है, जिसका ऊन मूड़ने के बहाने लोग उसका चमड़ा तक उधेड़ रहे हैं। नगर शून्य था। दूकानें बन्द थीं। प्रत्येक को लूट का भय था। लोग इधर-उधर भाग रहे थे।

मीरक़ासिम अपने श्वसुर की तरह नीच, स्वार्थी तथा द्रोही न था। वह सब रंग-ढंग देख चुका था। उसने नवाबी मोल ली थी, फिर भी वह नवाब ही बनना चाहता था, और अंगरेज़ों से प्रजा की तरह व्यवहार

करना पसन्द करता था। साथ ही अंगरेज़ों के अत्याचार से प्रजा की रक्षा करने की सदा चेष्टा करता था।

जब उसने देखा कि अंगरेज़ बिना महसूल अन्धाधुन्ध व्यापार करके देश को चौपट कर रहे हैं, किसी तरह नहीं मानते, तो उसने अपनी लाखों की हानि की परवा न करके महसूल का महकमा ही उठा दिया; प्रत्येक को बिना महसूल व्यापार करने का अधिकार दे दिया। अंगरेज़ों ने नवाब के इस न्याय और उदार कार्य का तीव्र विरोध किया। पर क़ासिम ने उसकी कुछ परवा न की।

अंगरेज़ क़ासिम को भी गद्दी से उतारने का प्रबन्ध करने लगे, पर मीरजाफ़र की तरह क़ासिम अंगरेजों का गधा न था। उसने सन्धि की शर्तों का पालन न होते देखकर अपनी तैयारी शुरू करदी। पहिले तो वह अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से उठाकर मुँगेर ले गया, और सेना को सज्जित करने लगा—साथ-ही अवध के नवाब शुजाउदौला से सहायता के लिए पत्र-व्यवहार करने लगा।

इतने ही में अंगरेज़ों ने चुपचाप पटने पर धावा कर दिया। पहले तो नवाबी सेना एकाएक हमले से घबराकर भाग गई, पीछे उसने आक्रमण कर नगर को वापिस ले लिया। बहुत-से अंगरेज़ कैद होगये। बदमाश एलिस भी कैद हुआ। नवाब ने जब पटने पर एकाएक आक्रमण होनें के समाचार सुने, तो उसने अंगरेज़ों की सब कोठियों पर अधिकार करके, वहाँ के अंगरेजों को कैद करके मुँगेर भेजने का हुक्म दे दिया।

अंगरेज़ों ने चिढ़कर कलकत्ते में आप-ही-आप मीरजाफ़र को फिर नवाब बना दिया। इसके पीछे मुर्शिदाबाद सेना भेज दी गई। मुर्शिदाबाद को यद्यपि मीरक़ासिम नें काफ़ी सुरक्षित कर रखा था, फिर भी विश्वासघाती, नीच और स्वार्थी सेनापतियों के कारण नवाबी सेना की हार हुई। नवाब के दो-चार वीर सेनापति अन्त तक लड़कर धराशायी हुए। अन्त में उदयालन का मुख्य युद्ध हुआ। पलासी में गधा मीरजाफ़र था। यहाँ यिश्वासघाती गुरगन सेनापति था। नवाब की ५० हजार की सेना यहाँ उसके आधीन थी। उस पर अंगरेज़ों के सिर्फ़ ५ हजार सैनिकों ने ही विजय प्राप्त करली! धीरे-धीरे नवाब के सभी नगरों पर अंगरेज़ों का अधिकार

हो गया। पटना और मुँगेर का भी पतन हुआ। क़ासिम भाग कर अवध के नवाब शुजाउद्दौला की शरण गया। एक बार अवध के नवाब की सहायता से पटना और बक्सर में फिर युद्ध हुआ। परन्तु विश्वासघात और घूस की घोर ज्वाला ने मुसलमानी तख़्त का विध्वंस किया। इस पर प्रयाग तक मीरक़ासिम खदेड़ा गया। फल यह हुआ कि प्रयाग भी अंगरेज़ों के हाथ आगया।

मीरक़ासिम का क्या हाल हुआ? कुछ पक्की ख़बर नहीं। लोग कहते थे कि दिल्ली की सड़क पर एक दिन एक लाश देखी गई थी—जो एक बहुमूल्य शाल से ढकी हुई थी। उसके एक कोने पर लिखा था—मीर-क़ासिम।

मीरजाफ़र फिर नवाब बन गया। अंगरेज़ों ने क़ासिम की लड़ाई का सब ख़र्चा और हर्ज़ाना मीरजाफ़र से वसूल किया। सबको भेंट भी यथा-योग्य दी गई। बंगभूमि के भाग्य फूट गये। उसके माथे का सिन्दूर पोंछ लिया गया।

मराठों ने प्रथम ही बंगाल को छिन्न-भिन्न कर दिया था। अब इस राज-विप्लव के पश्चात् मानो बंगाल का कोई कर्ता-धर्ता ही न रहा। मीर-जाफ़र फिर गद्दी से उतारकर कलकत्ते भेज दिया गया। इस बार किसी को नवाब बनाने को ज़रूरत न रही। ईस्ट इण्डिया कम्पनी बहादुर ही बंगाल की मालिक बन गई।

सन् १७३८ के दिन थे। देश-भर अराजक, अरक्षित और दलित था। किसान घर-बार छोड़, जहाँ-तहाँ भाग गये थे। नगर उजाड़ होरहे थे। वर्षा भी न हुई थी। खेती बहुत कम बोई गई थी। बीज तक लोगों के पास न था। ऐसी दशा में भयङ्कर दुर्भिक्ष बंगाल की छाती पर सवार हुआ। परन्तु तिस पर भी कौड़ी-कौड़ी मालगुज़ारी वसूल की गई।

उस समय भी कुछ लोग धनी थे। जगतसेठ, मानिकचन्द नष्ट हो चुके थे—पर कुछ धनी बच रहे थे। पर, क्या किसान, क्या धनी—अन्न बँगाल में किसी के पास न था। अशर्फ़ियाँ थीं—मगर कोई अन्न बेचने वाला न था।

अंगरेजों ने बहुत-सा चावल कलकत्ते में सेना के लिये भर रखा

था। यह सुनकर चारों ओर से पुर्निया, दीनापुर, बाँकुड़ा, वर्द्धमान आदि से हज़ारों नर-नारी कलकत्ते को चल दिये। गृहस्थों की कुल-कामिनियों ने प्राणाधिक बच्चों को कन्धे पर चढ़ाकर विकट-यात्रा में पैर धरा। जिन कुल-वधुओं को कभी घर की देहली उलाँघने का अवसर नहीं आया था, वे भिखारिन के वेश में कलकत्ते की तरफ़ जा रही थीं। बहुमूल्य आभूषण और अशर्फ़ियाँ उनके अंचल में बँधे थे, और वे उनके बदले एक मुट्ठी अन्न चाहती थीं।

पर इनमें कितनी कलकत्ते पहुँचीं? सैकड़ों स्त्री-पुरुष मार्ग में ही भूखे-प्यासे मर गये, कितनों के बच्चे माता का सूखा स्तन चूसते-चूसते अन्त में माता की छाती पर ही ठण्डे होगये। कितनी कुल-वधुओं ने भूख प्यास से उन्मत्त हो, आत्मघात किया।

बाबू चण्डीचरण सेन ने उस भीषण घटना का इस प्रकार वर्णन किया है—

"घोर दुर्भिक्ष समुपस्थित है। सूखे नर-कङ्कालों से मार्ग भरे पड़े हैं। ............सहस्रों नर-नारी मर-मरकर मार्ग में गिर रहे हैं। भगवती गङ्गा अपने तीव्र-प्रवाह में भूखे मुर्दों को गङ्गासागर की ओर बहाये लिए जा रही हैं। अपने अधमरे बच्चों को छाती से लगाये, सैकड़ों स्त्रियाँ अधमरी अवस्था में गंगा के किनारे सिसक रही हैं। पापी प्राण नहीं निकले हैं। कभी-कभी डोम अन्य मुर्दों के साथ उन्हें भी टाँग पकड़कर गंगा में फेंक रहे हैं। जहाँ-तहाँ आदमियों का समूह हिताहित शून्य हो, वृक्षों के पत्तों को खा रहा है। गङ्गा-किनारे वृक्षों में पत्ते नहीं रहे हैं।"......

"कलकत्ता नगर के भीतर एक रमणी—एक मुट्ठी नाज के लिये अपनी गोद के प्यारे बच्चे को बेचने के लिये इधर-उधर घूम रही है।"

उक्त बाबू साहब एक स्थान पर इन अभागे बंगालियों को सम्बोधन करके लिखते हैं—"हे बङ्गदेश के नरनारीगण! तुम झूठी आशा के ही सहारे व्यर्थ कलकत्ते जा रहे हो! कलकत्ते में जो चावल रक्खे हैं, वे तुम्हारे भाग्य में नहीं बदे। तुम्हारे जीने-मरने में किसी को कुछ लाभ नहीं।...... वह अन्न तो उनके सैनिकों के लिये है। तुम्हारी अपेक्षा उनके सैनिक कहीं भूखे मर गये तो मानवीय स्वतन्त्रता के मूल पर कुठाराघात कौन करेगा?"

इसी समय के कुछ दिन प्रथम क्लाइव को एक-ही गाँव की लूट में इतना चावल मिला था, कि जिससे एक वर्ष तक दस हजार सिपाहियों का गुज़ारा चल सकता था। आश्चर्य है, कि देखते-ही-देखते बङ्गाल इस दशा को पहुँच गया!

---

## : २१ :
## दक्षिण के मुस्लिम-राज्य

दक्षिण के प्राचीन राज्य चेरा, चौल, पाण्ड्य, नष्ट हो गये थे। परन्तु मुहम्मद तुग़लक़ के कुशासन से लाभ उठाकर एक हिन्दू-राज्य विजयनगर पठानों के काल में बन गया था, जो २०० वर्ष तक रहा। इसी काल में बहमनी-राज्य हसन नामक एक वीर और साहसी मनुष्य ने स्थापित किया था। यह व्यक्ति समय के प्रभाव से गंगू नामक एक ब्राह्मण की सेवा में कुछ दिन रह चुका था—अतः उसके प्रति कृतज्ञता-प्रकाश करने को, उसने अपना नाम—'सुलतान अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनी' रखा, और अपने राज्य का नाम 'बहमनी'-राज्य रक्खा। राजा होने पर गंगू आजीवन इसका मंत्री रहा। गोलकुण्डा के पश्चिम में इसकी राजधानी गुलबर्गा थी, और उसका राज्य बरार से लेकर दक्षिण में कृष्णा नदी तक फैला हुआ था।

विजयनगर की सेना में ७ लाख योद्धा थे, और उसका शौर्य बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसका राज्य खम्भात की खाड़ी से आरम्भ होकर पूर्व-दिशा में जगन्नाथ के निकट बंगाल को खाड़ी तक और दक्षिण में कन्या-कुमारी तक फैला हुआ था।

इस हिन्दू-राजा के पास गुर्जिस्तान के ३ ग़ुलाम थे, जिनको वह हर प्रकार सुखी, प्रसन्न और सन्तुष्ट रखता था। यहाँ तक कि उसने उनको दो बड़े-बड़े प्रान्तों का अधिकारी बना दिया था—एक को बीजापुर, पुरन्दर

और सूरत से लेकर नर्मदा तक फैला हुआ प्रान्त दिया गया। इसकी राजधानी दौलताबाद थी दूसरे को बीजापुर का प्रान्त दिया गया था, और तीसरे को गोलकुण्डा का। ये तीनों गुलाम बहुत शीघ्र धन-शक्ति-सम्पन्न हो गये। और चूँकि वे शिया थे, इसलिये ईरानियों से उन्हें बहुत-कम सुभीते मिलते गये। पीछे इन तीनों ने मिलकर विजयनगर के प्रति विद्रोह किया, और तालीकोट के मैदान में विजयनगर का गौरव सदा के लिये धूल में मिला दिया।

इसके बाद इन तीनों में परस्पर फूट फैल गयी, ओर १६ वीं सदी के अन्त में अहमदनगर के बादशाह ने बराड पर आक्रमण कर अपने राज्य में मिला लिया। पीछे, जब दिल्ली पर अकबर का राज्य जम गया, तो उसने अपने पुत्र मुरार को अहमदनगर पर आक्रमण करने भेजा। उस समय चाँदबीबी अहमदनगर की सुलताना थी। उसने बड़ी वीरता से युद्ध किया। अन्त में परस्पर की फूट से वह मारी गई और मुग़लों का अहमदनगर पर अधिकार होगया। कुछ दिन बाद खामदेश भी मुग़लों के हाथ आ ग़या। परन्तु मलिक अम्बर नामक एक वीर ने किरकी में एक नई राजधानी बना ली थी, और मुग़ल-सेना को तीन बार परास्त किया था। अब जहाँगीर ने उस पर शाहज़ादा खुर्रम को भेजा, जिसने मलिक अम्बर को मार भगाया। इसके बाद शाहजहाँ के काल में दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ ने मलिक अम्बर के बेटों से मिलकर विद्रोह का झगड़ा खड़ा किया। अन्त में ५ वर्ष युद्ध करके फिर शाही अमल में अहमदनगर आगया। इस मुहिम में बीजापुर ने अहमदनगर की सहायता की थी इसलिये इस पर भी आक्रमण किया गया, पर इस अवसर पर बीजापुर से सन्धि हो ग़ई, और बीजापुर राज्य दिल्ली के बादशाह को कर देने लगा।

औरंगज़ेब ने, जब वह दक्षिण का सूबेदार था, तब एक बार मीर जुमला के साथ गोलकुण्डा पर चढ़ाई की थी, पर सन्धि होगई थी। तब से गोलकुण्डा की शक्ति ढीली पड़ी थी—और वह औरंगज़ेब के लगभग बिलकुल आधीन हो गया था। बीजापुर के विरुद्ध बराबर मुग़ल-सेना; समय-समय पर जाती रही। उधर दक्षिण में शिवाजी ने एक शक्तिशाली राज्य

की स्थापना करली थी। वह भी बीजापुर को तंग कर रहा था। उसने उसके ज़बरदस्त सरदार अफ़जलखाँ को मार डाला था।

अन्त में औरंगज़ेब ने स्वयं ही दक्षिण विजय की यात्रा की, और वह २२ वर्ष तक वहीं लड़ता रहा। फिर अन्त में वहीं मरा भी। इसने गोलकुण्डा और बीजापुर दोनों राज्यों को मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया।

---

: २२ :

# हैदरअली और टीपू

हैदरअली के दादा वलीमुहम्मद एक मामूली फ़क़ीर थे, जो गुलबर्गा में दक्षिण के प्रसिद्ध साधु हज़रत बन्दानेवाज गेसूदराज की दरगाह में रहा करते थे। इनके ख़र्च के लिये दरगाह से छोटी-सी रक़म बँधी हुई थी। इनका एक पुत्र था, जिसका नाम मोहम्मदअली था। उसे शेख़अली भी कहते थे। उसे भी लोग पहुँचा हुआ फ़क़ीर मानते थे।

वह कुछ दिन बीजापुर में रहा, पीछे कर्नाटक के कोलार नामक स्थान में आकर ठहरा। कोलार का हाकिम शाह मुहम्मद दक्षिणी शेख़अली का बड़ा भक्त था। शेख़अली के ४ बेटे थे। उन्होंने बाप से नौकरी की इजाज़त माँगी। पर उसने समझाया—हम साधुओं को दुनियाँ के धंधों में फँसना ठीक नहीं। निदान, वे पिता की मृत्यु तक उसके पास रहे। पिता की मृत्यु पर बड़ा तो पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ, और सबसे छोटा अरकाट के नवाब के यहाँ फौज में जमादार हो गया, और तंजोर के फ़क़ीर पीरजादा कुरहानुद्दीन की लड़की से शादी कर ली। इससे उसे दो पुत्र हुए—जिनमें छोटे का नाम हैदरअली था। इस समय उसका पिता सिरा के नवाब के यहाँ बालाँपुर कलाँ का क़िलेदार था। जब हैदरअली ३ वर्ष का था, तब उसका पिता किसी युद्ध में मारा गया। उनका सब सामान ज़ब्त कर लिया गया, और हैदरअली को भाई-सहित नक्क़ारे में बन्द कराकर नक्क़ारे पर चोटें लगवानी शुरू करा दी गईं। इस अवसर पर उसके चचा ने धन भेजकर उसका उद्धार किया, और अपने पास रक्खा। वहाँ उसने युद्ध-विद्या सीखी, और समय आने पर दोनों भाई मैसूर की सेना में भर्ती हो गये।

मैसूर रियासत मरहठों को चौथ देती थी। इस समय निज़ाम और मैसूर-राज्य का मिलकर अंगरेज़ों से युद्ध हुआ। इस युद्ध में हैदरअली एक साधारण सवार की भाँति लड़ा।

इस युद्ध में हैदर ने जो कौशल दिखाया, उस पर मैसूर के दीवान की दृष्टि पड़ी, और उसने हैदर को डिण्डीनल का फौजदार नियत कर दिया। वहाँ उसने अपनी सेना को फ्रान्सीसी रीति से युद्ध करने की शिक्षा दी और तोपख़ाने में भी फ्रान्सीसी कारीगर नियुक्त किये।

धीरे-धीरे उसका बल बढ़ता गया, और वह प्रधान सेनापति हो गया। शीघ्र ही वह मैसूर का प्रधान-मन्त्री हो गया। उस समय प्रधान-मन्त्री ही राज-काज के कर्त्ता-धर्त्ता थे। महाराज तो साल में एकाध बार प्रजा को दर्शन देते थे। हैदरअली ने शीघ्र ही मैसूर की सम्पूर्ण सत्ता अधिकार में कर ली, और प्रधान-मन्त्री की पदवी उसकी ख़ानदानी पदवी हो गई। दिल्ली के सम्राट् ने भी उसे सीरा-प्रान्त का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

अब हैदरअली ने राज्य की व्यवस्था की ओर ध्यान दिया और शीघ्र ही प्रबन्ध उत्तमता से होने लगा। इसके बाद उसने आस-पास के प्रान्त में विजय प्राप्त कर, रियासत को बढ़ाना प्रारम्भ किया।

यह वह समय था, जब मराठे बढ़ रहे थे। मराठों का मैसूर पर चार बार आक्रमण हुआ, पर अन्त में उन्हें हैदरअली से सन्धि करनी पड़ी।

इस समय अंगरेज़ी कम्पनी की शक्ति भी किसी शक्ति की वृद्धि सहन न कर सकती थी। उन्होंने छेड़-छाड़ की और हैदरअली के मित्र कर्नाटक के नवाब को भड़काकर फोड़ लिया। हैदर ने यह देख, निज़ाम से सन्धि की, और दोनों ने मिलकर कर्नाटक और अंगरेज़ी इलाक़े पर हमला कर दिया। निज़ाम की ओर से ५० हजार सेना सहायतार्थ आई थी। इतनी ही अंगरेज़ी सेना जनरल स्मिथ की आधीनता में मद्रास से बढ़ी। हैदर के पास २ लाख सेना थी। इसमें से ५० हजार सेना लेकर उसने अंगरेज़ी सेना की गति रोकी। परन्तु निजाम को भी अंगरेज़ों ने फोड़ने की चेष्टा की। यह देख, हैदर ने सन्धि की चेष्टा की—पर, अंगरेज़ों ने उसके दूत को अपमानित करके निकाल दिया। यह देख, हैदर युद्ध को सन्नद्ध

होगया, और शीघ्र ही समस्त छिना हुआ देश लौटा लिया, तथा अंगरेज़ सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया।

इस समय हैदर के पुत्र टीपू की आयु १८ वर्ष की थी, और वह पिता के साथ युद्ध के मैदान में था। हैदर ने उसे ५००० सेना देकर दूसरे रास्ते मद्रास भेज दिया। वह इतना शीघ्र मद्रास पहुँचा, कि उसकी सेना को सिर पर देख, अंगरेज़ गवर्नर घबरा गया, और वे लोग भाग खड़े हुए। टीपू ने सेण्ट टॉमस नामक पहाड़ी पर क़ब्जा किया, और आस-पास के अंगरेज़ी इलाक़े भी क़ब्जे में कर लिये।

उधर त्रिचनापल्ली में हैदर और जनरल स्मिथ का मुक़ाबिला हुआ। ऐन मौके पर अपनी तमाम सेना को निजाम के अफ़सर ने इस बुरी तरह पीछे हटाया कि हैदर की तमाम फ़ौज में खलबली मच गई। यह विश्वास-घात देख हैदर ने अपनी सेना कुछ पीछे हटाई।

उधर अंगरेज़ों ने उड़ा दिया कि हैदर हार गया, और टीपू को भी समाचार भेज दिया। टीपू उस समय मद्रास से १ मील दूर था। वह अंगरेजों के भर्रे में आ गया, और मद्रास को छोड़कर पिता से मिलने को चल दिया।

इधर हैदर, बेनियमबाड़ी के क़िले की ओर बढ़ा, और उसे फ़तह करके आम्बूर की ओर गया। वहाँ उसे बहुत-सा हथियार और गोला-बारूद हाथ लगा। जनरल स्मिथ हार-पर-हार खाकर पीछे हटता गया। तब उसकी सहायता के लिये कर्नल कुड एक नई सेना लेकर बंगाल से चला।

इस बीच में अंगरेज़ों ने पादरियों द्वारा हैदर के योरोपियन अफसरों को फोड़ने की पूरी-पूरी कोशिश की और सफलता भी प्राप्त की। पर अन्त में हैदर ने अपना तमाम इलाक़ा अंगरेज़ों से छीन लिया। उधर अंगरेजों ने बंगलौर को हथिया लिया था—उसे टीपू ने छीना। इस युद्ध में अनेक अंगरेज़ अफसर सेनापति सहित गिरफ्तार किये गये। अन्त में हैदर वीरपुत्र सहित सेना को खदेड़ते हुए मद्रास तक जा पहुँचा। अंगरेज़ों ने कप्तान ब्रुक को सुलह की बात-चीत करने भेजा। हैदर ने जवाब दिया—"मैं मद्रास के फाटक पर आ रहा हूँ। गवर्नर और उसकी कौन्सिल को जो कुछ कहना होगा—वहीं आकर सुनूँगा।" वह साढ़े तीन दिन के अन्दर १३० मील

का फ़ासला तयकरके अचानक मद्रास जा धमका, और क़िले से १० मील दूर छावनी डाल दी। अंगरेज़ काँप उठे। हैदर और अंगरेज़ी सेना के बीच में 'सेण्ट-टॉमस' की पहाड़ी थी। अंगरेज़ों ने देखा कि यदि हैदर इस पर अधिकार कर लेगा—तो ख़ैर नहीं। वे जल्दी-जल्दी वहाँ तोपें जमा रहे थे। पर हैदर एक चक्कर काटकर मद्रास क़िले के दूसरे फाटक पर आ पहुँचा। अंगरेज़ी सेना क़िले के दूसरी ओर फ़सील से दो–तीन मील के फासले पर थी। अंगरेज़ों के भय का ठिकाना न था। पर हैदर ने पूर्व-वचन के अनुसार गवर्नर को कहला भेजा—"कहो, क्या कहना चाहते हो?"—गवर्नर ने तुरन्त डुग्रे और वैशियर को सुलह की बात-चीत करने को भेजा। डुग्रे भविष्य के लिये गवर्नर नियुक्त हो चुका था। वैशियर उस समय के गवर्नर का सगा भाई था।

अन्त में सन्धि हुई। इसमें कम्पनी का किसी प्रकार का राजनैतिक अधिकार नहीं माना गया। सन्धि-पत्र हैदर ने जैसा चाहा, वैसा ही इंगलिस्तान के बादशाह के नाम से लिखा गया। इस सन्धि के आधार पर हैदरअली और इंगलैण्ड के राजा में मित्रता क़ायम रही। दोनों ने अपने प्रान्त वापस लिये, और हैदर ने एक मोटी रकम युद्ध के ख़र्च के लिए ली। दूसरी सन्धि के आधार पर अरकाट का नवाब मैसूर का सूबेदार समझा गया, और बतौर ख़िराज के ६ लाख सालाना का देनदार बना। इसके सिवा एक नया युद्ध का जहाज, जिस पर उम्दा ५० तोपें थीं, हैदरअली को अंगरेज़ों ने भेंट किया।

इस सन्धि का यह असर हुआ कि इंगलैण्ड में इसकी ख़बर पहुँचते ही ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हिस्सों की दर ४० फ़ीसदी गिर गई।

कुछ दिन बाद मरहठों ने मैसूर पर आक्रमण किया। हैदर ने अंगरेज़ों से मदद माँगी। पर उन्होंने इन्कार कर दिया। हैदर अंगरेज़ों की चाल समझ गया। उसने टीपू को मरहठों पर सेना लेकर भेजा, और ६ वर्ष तक दोनों में सन्धि होगई। जब हैदर को यह निश्चय होगया कि अंगरेज़ सन्धि को तोड़ रहे हैं, तो उसने अंगरेज़ों पर चढ़ाई करने की तैयारी कर दी, और निज़ाम से मदद माँगी। पर निज़ाम इस बार भी ऐन मौक़े पर दगा कर गया।

इसी बीच में नाना फड़नवीस ने हैदर से सन्धि करली। अंगरेज़ों ने फिर सन्धि की बहुत चेष्टा की, पर हैदर ने स्वीकार न किया। कर्नाटक का नवाब मुहम्मदअली अंगरेज़ों का मित्र था। हैदर ने पहले उसी की ओर रुख किया, और सेना के कई भाग कर, तमाम प्रान्त में फैला दिये। अंगरेजी और नवाब की सेनाएँ हार-पर-हार खाने लगीं। अन्त में तमाम प्रान्त को हैदर ने अपने कब्जे में कर लिया। नवाब भागकर मद्रास चला गया। हैदर की सेनायें भी मद्रास जा धमकीं। अँगरेज़ों की दो सेनाएँ उसके मुक़ाबले को उठीं। घनघोर युद्ध हुआ और हैदर ने अँगरेज़ी सैन्य को बिलकुल नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अरकाट के क़िले और नगर पर भी अधिकार हो गया। वहाँ उसने एक हाक़िम नियत किया, और शासन-प्रबन्ध ठीक किया।

उस समय वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर-जनरल थे। यह समाचार सुन, वह घबरा गये। बंगाल की हालत भयानक हो गई थी। भयानक दुर्भिक्ष था। पर, फिर भी ५ लाख रुपया नक़द और एक भारी सेना उसने मद्रास के लिये भेजी। मद्रास पहुँचकर इस सेना के सेनापति ने सात लाख रुपये मुहम्मदअली से और वसूल किये और सैन्य-संग्रह कर, हैदरअली के मुक़ाबले को बढ़ा। कई बार मुठभेड़ हुई, और अंगरेज़ों को भारी हानि उठाकर पीछे हटना पड़ा। अन्त में सेनापति सर कूट बंगाल लौट गये। हैदर ने लगभग समस्त अंगरेज़ी इलाका फ़तह कर लिया था। पर अचानक उसकी मृत्यु अरकाट के किले में होगई। हैदरअली की पीठ में अदीठ (कारबंकल) फोड़ा हो गया था। उसी से उसकी मृत्यु हुई। मृत्यु के समय वह साठ वर्ष का था।

मृत्यु के समय उस तमाम इलाके को छोड़कर, जो उसने हाल के युद्ध में अपने शत्रुओं से विजय किया था—शेष का क्षेत्रफल ८० हजार वर्ग वर्ग मील था, जिसकी सालाना बचत, तमाम ख़र्चा निकालकर, ३ करोड़ रुपयों से अधिक थी। उसकी स्थायी सेना ३ लाख २४ हजार थी। खजाने में नकदी और जवाहरात मिलाकर सब ८० करोड़ से ऊपर था। उसकी पशुशाला में—७०० हाथी, ६००० ऊँट, ११००० घोड़े, ४००००० गाय और बैल, १००००० भैंसें, ६०००० भेड़ें थीं। शस्त्रागार में ६ लाख बन्दूकें, २ लाख तलवारें और २२ हजार तोपें थीं।

यह पहला ही हिन्दुस्तानी राजा था, जिसने अपने समुद्र-तट की रक्षा के लिये एक जहाजी बेड़ा—जो तोपों से सज्जित था, रखा हुआ था। यह जल सेना बहुत जबर्दस्त थी, और उसके जल-सेनापति अली रज़ा ने मल-द्वीप के १२ हजार छोटे-छोटे टापुओं को हैदर के राज्य में मिला लिया था।

वह पढ़ा-लिखा न था। बड़ी कठिनता से वह अपने नाम का पहला अक्षर 'है' लिखना सीख पाया था। पर, इसे भी वह उलटा-सीधा लिख पाता था। फिर भी उसने योरोप के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों के दाँत खट्टे कर दिये थे। उसकी स्मरण शक्ति ऐसी अलौकिक थी, कि वह एक-साथ कई काम किया करता था। एक-साथ वह तीस-चालीस मुंशियों से काम लेता था।

उसकी मृत्यु के बाद उसके पुत्र टीपू ने युद्ध उसी भाँति जारी रखा। अंगरेज़ों ने लल्लो-चप्पो करके सन्धि की। वह वीर था—पर अनुभव-शून्य था ! उसने अंगरेज़ों से मित्रता की सन्धि स्थापित की, और जीता हुआ प्रान्त उन्हें लौटा दिया। कम्पनी ने उसे मैसूर का अधिकारी स्वीकार कर लिया था।

कुछ दिन तो चला। पीछे जब लॉर्ड कार्नवालिस गवर्नर होकर आया तो उन्होंने देखा कि टीपू ने निज़ाम और मराठों से बिगाड़ कर लिया है। कॉर्नवालिस ने झट निजाम के साथ टीपू के विरुद्ध एक समझौता किया। इसके बाद उसने टीपू और मराठों में होती हुई सुलह में विघ्न डालकर मराठों से भी एक समझौता कर लिया। तीन बार उसने इंगलैण्ड से कुछ गोरी फ़ौज तथा ५ लाख पौण्ड कर्ज भी मँगवाये।

अब त्रावनकोर के राजा से भी युद्ध छिड़वा दिया गया, और अंगरेज़ उसकी मदद पर रहे। मुठभेड़ होने पर फिर टीपू ने अंगरेज़ी सेना को हार-पर-हार देनी आरम्भ की। अन्त में स्वयं कार्नवालिस ने सेना की बागडोर हाथ में ली। निजाम और मराठे उसकी सहायता को सेनाएँ ले-लेकर उससे मिल गये। ठीक युद्ध के समय तमाम योरोपियन अफसर और सिपाही शत्रु से मिल गये। टीपू के कुछ सेनापति और सरदार भी घूस से फोड़ लिये गये।

यद्यपि टीपू की कठिनाइयाँ असाधारण थीं, पर उसने वीरता और दृढ़ता से कई महीने लोहा लिया। अन्त में बंगलौर अंगरेज़ों के हाथ में आगया—टीपू को पीछे हटना पड़ा।

अब कार्नवालिस ने मैसूर की राजधानी श्री रङ्गपट्टन पर चढ़ाई की। टीपू ने युद्ध किया, और सुलह की भी पूरी चेष्टा की। अंगरेज़ों ने लालबाग़ में हैदरअली की सुन्दर समाधि पर अधिकार कर लिया, और उसे लगभग नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। अन्त में दोनों दलों में सन्धि हुई, और टीपू का आधा राज्य लेकर कम्पनी, निज़ाम और मराठों ने बाँट लिया। इसके सिवा टीपू को ३ क़िस्तों में ३ करोड़ ३० हजार रुपया दण्ड देने का भी वचन देना पड़ा; और इस दण्ड की अदायगी तक अपने दो बेटों को—जिनमें एक की आयु १० वर्ष और दूसरे की ८ वर्ष की थी—बतौर बन्धक अंगरेज़ों के हवाले करना पड़ा।

इस पराजय से टीपू का दिल टूट गया, और उसने पलंग-बिस्तर छोड़कर टाट पर सोना शुरू कर दिया, और मृत्यु तक उसने ऐसा ही किया।

अस्तु! टीपू ने ठीक समय पर दण्ड का रुपया दे दिया, और बड़ी मुस्तैदी से वह अपने राज्य, राज्य-कोष और प्रबन्ध को ठीक करने लगा। युद्ध के कारण जो मुल्क की बर्बादी हुई थी, उसे ठीक करने में उसने अपनी सारी शक्ति लगादी। सेना में भी नई भर्ती करना और उसे शिक्षा देना उसने आरम्भ किया। इस प्रकार शीघ्र-ही उसने अपनी क्षति-पूर्ति करली।

उधर अंगरेज़ सरकार भी बेख़बर न थी। उधर भी सैन्य-संग्रह हो रहा था। निज़ाम सबसीडीयरी सेना के जाल में फँस गया था, और पेशवा के पीछे सिन्धिया को लगा दिया था। पर प्रकट में दोनों ओर से मित्रता और प्रेम के पत्रों का भुगतान हो रहा था। अन्त में सन् १७९९ की ९ जनवरी को हठात् टीपू को वेलेजली का एक पत्र मिला, उसमें लिखा था—"अपने समुद्र-तट के समस्त नगर अंगरेज़ों के हवाले कर दो, और २४ घण्टे के अन्दर जवाब दो।"

३ फ़रवरी को अंगरेज़ी फ़ौजें टीपू की ओर बढ़ने लगीं। टीपू युद्ध को तैयार न था। उसने सन्धि की बहुत चेष्टा की, पर वेलेज़ली ने कुछ भी ध्यान न दिया। जल और थल दोनों ओर से टीपू को घेर लिया गया था।

गुप्त साजिशों से बहुत से सरदार फोड़े जा चुके थे। अंगरेज़ों के पास कुल तीस हजार सेना थी।

प्रारम्भ में टीपू ने अपने विश्वस्त सेनापति पुर्णियाँ को मुकाबले में भेजा। पर वह विश्वासघाती था। वह अंगरेज़ी फ़ौज के इधर-उधर चक्कर लगाता रहा और अंगरेजी आगे बढ़ती चली आई। यह देख, टीपू ने स्वयं आगे बढ़ने का इरादा किया। पर विश्वासघातियों ने उसे धोखा दिया, और उसकी सेना को किसी और ही मार्ग पर ले गये। उधर अंगरेजी सेना दूसरे ही मार्ग से रंगपट्टन आ रही थी। पता लगते ही टीपू ने पलटकर गुलशनबाद के पास अंगरेज़ी सेना को रोका। कुछ देर घमासान युद्ध हुआ। सम्भव था, अंगरेज़ी सेना भाग खड़ी होती—पर उसके सेनापति कमरुद्दीनख़ाँ ने दगा दी, और उलटकर टीपू की ही सेना पर टूट पड़ा। इस भाँति अंगरेज़ विजयी हुए।

इसी बीच में टीपू ने सुना कि एक भारी सेना बम्बई की तरफ़ से चली आ रही है। टीपू वहाँ कुछ सेना छोड़, उधर दौड़ा, और बीच में ही उस पर टूटकर उसे भगा दिया। परन्तु उसके मुख़बिर और सेनापति सभी विश्वासघाती थे। टीपू को वे बराबर गलत सूचना देते थे। ज्योंही टीपू लौटकर रंगपट्टन आया कि अंगरेज़ी सेना ने शहर घेरकर आग बरसाना शुरू कर दिया।

टीपू ने सेनायें भेजीं। पर सेनापतियों ने युद्ध के स्थान पर चारों ओर चक्कर लगाना शुरू कर दिया। अंगरेज़ फ़तह कर रहे थे और टीपू को ग़लत खबरें मिल रही थीं। क्रोध में आकर टीपू ने तमाम नमकहरामों की सूची बनाकर एक विश्वस्त कर्मचारी को दी, और कहा—"इन्हें रात को ही क़त्ल करदो।" पर एक फ़र्राश की नमकहरामी से भण्डाफोड़ हो गया। उसी दिन टीपू घोड़े पर चढ़कर क़िले की फ़सीलों का निरीक्षण करने निकला, और एक फ़सील पर अपना खेमा लगवाया। कहते हैं ज्योतिषियों ने उससे कहा था—"आज का दिन दोपहर के ७ घड़ी तक आपके लिये शुभ नहीं।" उसने ज्योतिषियों की सलाह से स्नान किया, हवन-जप भी किया, और दो हाथी—जिन पर काली झूलें पड़ी थीं—और जिनके चारों कोनों में सोना, चाँदी, हीरा, मोती बँधे थे ब्राह्मण को दान दिये,

गरीबों को भी अटूट धन दिया। इसके बाद वह भोजन करने बैठा ही था, कि सूचना मिली—क़िले के प्रधान संरक्षक अब्दुलग़फ्फ़ारख़ाँ को क़त्ल कर डाला गया है। टीपू तत्काल उठ खड़ा हुआ, और घोड़े पर सवार हो, स्वयं उसका चार्ज लेने क़िले में घुस गया। कुछ ख़ास-ख़ास सरदार साथ में थे।

उधर विश्वासघातियों ने सैयद ग़फ्फ़ार को ख़त्म करते ही सफ़ेद रूमाल हिलाकर अंगरेज़ी सेना को संकेत कर दिया। यह देख, टीपू के सावधान होने से प्रथम-ही दीवार के टूटे हिस्से से शत्रु के सैनिक क़िले में घुस गये।

एक नमकहराम सेनापति मीरसादिक़ यह ख़बर पा, सुल्तान के पीछे गया और जिस दरवाज़े से टीपू क़िले में गया था, उसे मजबूती से बन्द करवाकर दूसरे दरवाजे से मदद लेने के बहाने निकल गया। वहाँ वह पहरेदारों को यह समझा ही रहा था कि, मेरे जाते ही दरवाजा बन्द कर लेना और हरगिज न खोलना, कि एक वीर ने, जो उसकी नमक-हरामी को जानता था, कहा—"कम्बख़्त मलऊन ! सुलतान को दुश्मनों के हवाले करके यों जान बचाना चाहता है। ले, यह तेरे पापों की सज़ा है।" कहकर खट् से उसके दो टुकड़े कर दिये।

पर टीपू अब फँस चुका था। जब वह लौटकर दरवाजे पर गया, तो उसी के बेईमान सिपाही ने दरवाजा खोलने से इन्कार कर दिया। अंगरेज़ी सेना टूटे हिस्से से क़िले में घुस चुकी थी। हताश हो, वह शत्रुओं पर टूट पड़ा। पर कुछ ही देर में एक गोली उसकी छाती में लगी। फिर भी वह अपनी बन्दूक से गोलियाँ छोड़ता ही रहा। पर, फिर और एक गोली उसकी छाती में आकर लगी। घोड़ा भी घायल होकर गिर पड़ा। उसकी पगड़ी भी जमीन पर गिर गई। अब उसने पैदल खड़े होकर तल-वार हाथ में ली। कुछ सैनिकों ने उसे पालकी में लिटा दिया। कुछ लोगों ने सलाह दी, कि अब आप अपने आपको अंगरेज़ों के सुपुर्द करदें। पर उसने अस्वीकार कर दिया। अंगरेज़ सिपाही नजदीक आगये थे। एक ने उसकी जड़ाऊ क़मर-पेटी उतारनी चाही, टीपू के हाथ में अब तक तलवार

थी—उसने उसका भरपूर हाथ मारा, और सिपाही के दो टूक हो दूर जा पड़ा। इतने में एक गोली उसकी कनपटी को पार करती निकल गई।

रात को जब उसकी लाश मुर्दों में से निकाली गई, तो तलवार अब भी उसकी मुट्ठी में कसी हुई थी। इस समय उसकी आयु ५० वर्ष की थी।

इस समय उसका बेटा फ़तह हैदर कागी घाटी पर युद्ध कर रहा था। पिता की मृत्यु की खबर सुनते-ही वह उधर दौड़ा। पर नमकहराम सलाहकारों ने उसे लड़ाई बन्द करने की सलाह दी। साथ ही जनरल हैरिस स्वयं कुछ अफसरों के साथ उससे भेट करने आये, और कहा कि यदि आप लड़ाई बन्द करदें, तो आपको आपके पिता के तख्त पर बैठा दिया जायगा। इस पर विश्वास कर, फ़तह हैदर ने युद्ध बन्द कर दिया। पर यह सिर्फ़ बहाना था। अंगरेज़ी सेना ने क़िले पर क़ब्जा कर लिया, और रङ्गपट्टन में अंगरेजी सेना ने भारी लूट-खसोट और रक्त-पात जारी कर दिया।

अब अंगरेजी सेना महल से घुसी। टीपू को शेर पालने का शौक था। बाहरी सहन में अनगिनत शेर खुले फिरा करते थे। अंगरेजी फ़ौज ने भीतर घुसते ही इन्हें गोली से उड़ा दिया। महल में टीपू का ख़जाना, धन, रत्न और जवाहरात से ठसाठस था। इस सब माल, हाथी, ऊँट और भाँति-भाँति के असबाब पर अँगरेज-सेना ने क़ब्जा कर लिया। सुलतान का ठोस सोने का तख्त तोड़ डाला गया, और हीरे-जवाहरात व मोतियों की माला और जेवरों के पिटारे नीलाम कर दिये गये। सिर्फ़ महल के जवाहरात की लूट का अन्दाजा १२ करोड़ रुपया था। उसका मूल्यवान पुस्तकालय और अन्य मूल्यवान पदार्थ रङ्गपट्टन से उठाकर लन्दन भेज दिये गये। इसके बाद टीपू के भाई करीम साहब, टीपू के १२ बेटों और उसकी बेगमों को क़ैद करके रायविल्लूर के क़िले में भेज दिया गया।

राज्य के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। एक टुकड़ा निजाम के हाथ आया। बड़ा भाग अंगरेज़ी राज्य में मिला लिया गया। शेष भाग—मैसूर के हिन्दू राजकुल के एक ५ वर्ष के बालक को दे दिया गया, और विश्वासघाती पुर्णिया को उसका दीवान बना दिया गया।

अब अंगरेज़ों की कृपा से मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाब बना। इसके बदले में उसने १६ लाख की आय का इलाक़ा अंगरेजों को दिया। प्रारम्भ में मुहम्मदअली की अंगरेजों में बड़ी प्रतिष्ठा थी। पर, वह शीघ्र ही बंगाल के नवाबों की भाँति दुरदुराया जाने लगा। उससे नित नई माँगें पूरी कराई जाती थीं, और नवाब को प्रत्येक नये गवर्नर को लगभग डेढ़ लाख रुपये नजर करने पड़ने थे। अन्त में इस पर इतने ख़र्चे बढ़ गये, कि वह तङ्ग हो गया, और अंगरेज़ों से जान बचाने का उपाय सोचने लगा। इस समय अंगरेज़ व्यापारियों के कर्जे से वह बेतरह दबा हुआ था।

लार्ड कॉर्नवालिस ने नवाब से एक सन्धि की, जिसके कारण नवाब की तमाम सेना का प्रबन्ध अंगरेज़ों के हाथ में आ गया। इसके ख़र्च के लिये नवाब से कुछ जिले रहन रखा लिये गये। इनकी आमदनी ३० लाख रुपया सालाना थी।

सन् १७६५ में मुहम्मदअली की मृत्यु हुई, और उसका बेटा नवाब उमदतुलउमरा गद्दी पर बैठा। इस पर गवर्नर ने जोर दिया कि रहन रखे जिले और कुछ क़िले वह कम्पनी को दे दे। पर उसने साफ़ इनकार कर दिया। परन्तु इसी बीच में अंगरेज़ों ने प्रतापी टीपू को हरा डाला था, और रंगपट्टन का अटूट खजाना उनके हाथ लगा था। उसमें गवर्नर को कुछ ऐसे प्रमाण भी मिले थे, कि जिनमें कर्नाटक नवाब का टीपू के साथ षड्यन्त्र पाया जाता था। परन्तु नवाब के जीते-जी यह बात यों-ही चलती रही। ज्योंही, नवाब मृत्यु-शय्या पर पड़ा, कम्पनी को सेना ने महल को घेर लिया, और यह कारण बताया कि नवाब की मृत्यु पर बदअमनी का भय है। नवाब बहुत गिड़गिड़ाया, पर अंगरेज़ों ने उसे हर समय घेरे रखा, और बराबर अपनी मित्रता का विश्वास दिलाते रहे। उस समय नवाब का बेटा शाहजादा अलीहुसैन उसी महल में था। ज्योंही नवाब के प्राण निकले कि शहजादे को जबरदस्ती महल से बाहर लेजाकर अंगरेज़ों ने कहा—"चूँकि तुम्हारे दादा और बाप ने अंगरेज़ों के खिलाफ़ गुप्त पत्र-व्यवहार किया है, इसलिए गवर्नर-जनरल का यह फैसला है, कि तुम बजाय अपने बाप की गद्दी पर बैठने के मामूली रिआया की भाँति जिन्दगी बिताओ, और इस सन्धि-पत्र पर दस्तखत कर दो।" जहाँ यह बातें हो रही थीं—वहाँ अंगरेजी

सिपाही नंगी तलवारें लिये फिर रहे थे। परन्तु अलीहुसैन ने मंजूर न किया। तब नवाब के दूर के रिश्तेदार आजमुद्दौला से अंगरेजों ने बातचीत की। उसने सन्धि की शर्तें स्वीकार कर लीं। तब इसे मसनद पर बैठा दिया गया। इस सन्धि के अनुसार तमाम कर्नाटक-प्रान्त कम्पनी के हाथ आगया, और आजमुद्दौला केवल राजधानी अरकार और चिपोक के महलों का स्वामी रह गया। नवाब को चिपोक के महल में रखा गया, और उसी में शाहजादा अलीहुसेन और उसकी विधवा माँ को क़ैद कर दिया गया। कुछ दिन बाद वह वहीं मर गया। सन्देह किया जाता है कि उसे जहर दिया गया।

---

: २४ :

## सूरत की नवाबी

मुग़ल-साम्राज्य में सूरत एक सम्पन्न बन्दरगाह और सूबा था। बहुत दिन तक वहाँ बादशाह का सूबेदार रहता था। जब साम्राज्य की शक्ति ढीली पड़ी, तब वहाँ का हाकिम स्वतन्त्र नवाब बन बैठा। पीछे जब योरोप की जातियों ने भारत में पैर फैलाये, और अंगरेजों की शक्ति बढ़ने लगी, तब सूरत के नवाब से भी अंगरेज़ों ने सन्धि कर ली। धीरे-धीरे नवाब अंगरेज़ों के हाथ की कठपुतली हो गया। चार नवाबों के जमाने में यही होता रहा। वेलेजली ने अपनी नीति के आधार पर नवाब को भी सेना-भंग करने और कम्पनी की सेना रखने की सलाह दी। नवाब ने बहुत नाँ-नूँ की, मगर अन्त में एक लाख रुपया वार्षिक और ३० हज़ार रुपये सालाना की और रियायतें करनी ही पड़ीं। इसी समय नवाब मर गया। इसके बाद इसका चचा नसीरुद्दीन गद्दी पर बैठा। इसने शीघ्र ही सब दीवानी और फ़ौजदारी अधिकार अंगरेज़ों को दे दिये, और स्वयं बे-मुल्क नवाब बन बैठा, जो कुछ दिन बाद समाप्त होगये।

: २५ :

# निज़ाम

दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के वज़ीर आसफ़जाह ने वज़ारत से इस्तीफ़ा देकर दक्षिण में जा, हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाकर एक नया राज्य स्थापित किया, और १० वर्ष तक मराठों से लड़कर अपने राज्य को दृढ़ कर लिया। धीरे-धीरे दक्षिण में तीन शक्तियाँ प्रबल होगईं। एक निज़ाम, दूसरी पेशवा और तीसरी हैदरअली।

अंगरेज़ी-शक्ति ने इन तीनों को न मिलने देने में ही कुशल समझी। पाठक, हैदरअली के विवरण में पढ़ चुके हैं कि किस भाँति निज़ाम ने अंग्रेज़ी-शक्ति के आधीन होकर बारम्बार हैदरअली से विश्वासघात किया। ज्यों-ही टीपू की समाप्ति हुई, अंग्रेज़ी शक्ति निज़ाम के पीछे लगी। पहले गुण्डर का इलाक़ा उससे ले लिया गया।

इसके बाद एक गहरी चाल यह खेली गई कि वज़ीर से लेकर छोटे-छोटे अमीरों तक को रिश्वतें देकर इस बात पर राजी कर लिया गया, कि नवाब की सब सेना, जो फ्रान्सीसियों के आधीन थी, टुकड़े-टुकड़े करके बर्खास्त कर दी जाय, और कम्पनी की सबसीडियरी सेना चुपके-से हैदराबाद आकर उसका स्थान ग्रहण कर ले। इसकी नवाब को कानों-कान ख़बर नहीं हो।

वज़ीर यद्यपि सहमत हो गया था, घूस भी खा चुका था, परन्तु ऐसा भयानक काम करते झिझकता था। किन्तु अंगरेज़ों ने सेना के भीतर ही जाल फैला दिये थे। फलतः निज़ाम की सेनाएँ विद्रोह कर बैठीं; क्योंकि उन्हें कई मास का वेतन नहीं मिला था।

इसी मौक़े पर कम्पनी की सेना ने हैदराबाद को जा घेरा, और वज़ीर से कहा कि फ़ौरन अपनी सेना को बर्ख़ास्त करके कम्पनी की सेना को स्थान दो। पर वज़ीर ने इनकार कर दिया। अन्त में उसे कम्पनी की इच्छा पूर्ण करनी पड़ी—निज़ाम ने भी स्वीकृति दे दी, और एक सन्धि द्वारा निज़ाम हैदराबाद की स्वाधीनता का सदा के लिये ख़ात्मा होगया।

---

: २६ :

## मुस्लिम-संस्कृति का भारत पर प्रभाव

सब से प्रथम—अब हम यहाँ इस बात पर ख़ास तौर से प्रकाश डालना चाहते हैं कि वास्तव में जब मुस्लिम-राज्य स्थापित हो गया—तब, उस शासन में हिन्दुओं के साथ मुसलमानों के कैसे व्यवहार रहे। यह हम बता आये हैं कि बादशाहों में ऐसे कई आदमी हुए—जिन्होंने धर्मान्धता के लिये—निर्दयतापूर्वक—तलवार का सहारा लिया था। पर यदि हम अत्यन्त गहराई से देखें, तो हम समझ जायेंगे कि अन्त में उन्हें हिन्दू जन-बल से झुकना ही पड़ता रहा। यह बात थोड़े-ही विचार करने से समझ में आ सकती है, कि महमूद और तैमूर-जैसा लुटेरा—चाहे जितना भी उत्पात या मारकाट करे, नगरों का विध्वंस करे, और बेतोल-सम्पदा लूटकर ले जाय, परन्तु एक बादशाह के लिये—जिसे सेना, कर तथा अन्य सुव्यवस्थाओं के लिये हिन्दू-प्रजा से निरन्तर काम लेना पड़ता है—अत्याचार और लूट-मार कितनी घातक है! सब से मार्के की बात तो यह है, कि मुसलमानी राज्य-काल के मध्य-भाग में जितने युद्ध हुए हैं, उनमें बहुत-ही कम ऐसे मिलेंगे, जिनको विशुद्ध हिन्दू-मुस्लिम युद्ध का रूप दिया जा सके। तराचली के युद्ध में पृथ्वीराज की आधीनता में अफ़ग़ान सैनिकों का एक दल लड़ा था। पानीपत की तीसरी लड़ाई में मुसलमान शासक मर-

हठों के साथ थे । अन्यत्र मुसलमान-शासक जहाँ हिन्दू राजाओं से लड़ते थे —वहाँ, यह युद्ध हिन्दू-मुसलमानों में होता था । पर, मुसलमान शासक मुसलमान राजाओं से भी उसी भाँति लड़ते थे । उधर हिन्दू राजपूत राजा स्वयं भी आपस में ख़ूब लड़ते थे । वह समय ही मानो योद्धाओं का था, और योद्धाओं की दो श्रेणियाँ थीं—एक हिन्दू, जो अधिक थे—पर संगठित न थे ; दूसरी मुसलमान, जो कम थे—पर संगठित थे । जहाँगीर और शाहजहाँ मानो मुस्लिम-साम्राज्य में एक शान्त, स्थिर और कला-कौशल को उन्नत करनेवाले बादशाह थे ।

अलबत्ता एक बात तो थी ही ; वह यह कि पठानों के राज्य-काल में बादशाह अपनी प्रजा में जितने सहनशील थे, उतने पराये राज्य के हिन्दुओं के लिये नहीं । मलिक काफ़ूर का दक्षिण-विध्वंस ऐसा ही है;—यद्यपि उस सेना में हिन्दू-योद्धा भी थे । सच्ची बात तो यह है कि मन्दिर-विध्वंस केवल धन-लिप्सा के लिये था—बुतशिकनी का बहाना तो एक मीठा छल था ! मध्य-युग के मुसलमान बादशाहों का अपने राज्य के बाहर के हिन्दुओं पर आक्रमण करना और नगरों का लूटना एक आमदनी का ज़रिया था । भारत में अति प्राचीन-काल के व्यवहार-शिल्प और अध्यवसाय से बहुत धन एकत्र होगया था, अगणित जवाहरात एकत्र होगये थे, और ब्राह्मणों के दुर्घर्ष प्रभाव से खिचकर धर्म-मन्दिरों में सञ्चित हो गये थे, जो उस काल में एक-मात्र धर्म-स्थान थें । यही कारण है कि आक्रमणकारियों की दृष्टि मन्दिरों के धन-कोष पर ही रहती थी ।

यह बात तो हमें माननी पड़ेगी कि मुस्लिम-साम्राज्य का वास्तविक प्रारम्भ अलाउद्दीन की क्रूर और प्रचण्ड नीति से हुआ । ग़ुलाम-वंश के सुलतान तो थोथे मुसलमान थे । उसके बाद ही मुस्लिम-जाति भारत में एक संगठित जाति के समान बनती चली गई । यह एक नैतिक पुष्टि थी— जो अलाउद्दीन से अकबर तक स्थित होती चली आई, और इसी ने उनके साम्राज्य को स्थिर बनाया !

मुसलमानों से प्रथम यूनानियों, शकों और हूणों ने भारत पर बड़े-बड़े धावे किये । पर उससे न भारत की राजनीति पर प्रभाव पड़ा—न, समाज-शृंखला में ही गड़बड़ी हुई । सामरिक प्रभाव भी इनको सीमा-

प्रान्तों तक सीमित रहा। यदि मुसलमान भारत में न आये होते, तो भारतवासी सुखी, समृद्ध और शान्त भारतवर्ष में रहते होते। उनकी कृषि, व्यापार, शिल्प ठीक अवस्था में था। रहन-सहन साधारण और कम ख़र्चीला था। सम्पत्ति अटूट थी। सामाजिक जीवन में धार्मिक विश्वासों और ब्राह्मणों का अशान्त प्रभुत्व था, परन्तु ईसाइयों और मुसलमानों की अपेक्षा फिर भी उनमें सहनशीलता थी। मुसलमान भी कदापि इतने विजयी न हुए होते, यदि उनमें जहाद का प्रबल जोश और लूट की प्रबल लालसा न होती। पाठक देखते हैं कि योरोप और मध्य-एशिया की भाँति भारत में भी उनका विरोध ढीले हाथों से किया गया था, और समय का प्रभाव था कि मध्य एशिया तो उनके चरणों में लोट गया, और योरोप अ़छूता बच गया तथा भारत मध्य में ही भ्रष्ट होगया। बिनक़ासिम से बहादुरशाह ज़फर तक मुसलमानों का लगभग ११०० वर्ष तक काल रहा, और आज उनकी भाषा, सभ्यता, संस्कृति, शिक्षा-नीति और जीवन भारत में एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्याप्त है। ७ करोड़ मुसलमान अब भी देश के निवासी हैं, और देश पर उनके वही अधिकार हैं, जो किसी भी देश-वासी के अपनी मातृ-भूमि पर होने चाहिये। इनमें दरिद्र, अमीर, शिक्षित, मूर्ख, रईस, राजा, नवाब सभी तरह के आदमी हैं।

यह हम कह चुके हैं कि भारत में आज से पूर्व मुसलमानों की विजयिनी सेना ने हिन्दुकुश के पश्चिम में समस्त एशिया और अफ्रीका तथा दक्षिणी-योरोप को रौंद डाला था। पंजाब में घुसने से पूर्व वे स्पेन और फ्रान्स को दलित कर चुके थे। कुस्तुनतुनियाँ का प्रताप लूटकर वे साहसी हो गये थे। फिर भीं वे इससे पूर्व भारत में घुसने का साहस न कर सके। इसका कारण भारतीय-राजाओं का सैनिक प्रबन्ध था। उन्हें विदेशियों की टक्कर लग चुकी थी, और तातारों और हूणों से वे लोहा ले चुके थे। वे खूब कट्टर योद्धा यौर मुस्तैद सिपाही थे। दुःख था, तो यही कि वे परस्पर संगठित और मित्र न थे, और न वे अच्छे सेनापति व रण-नीति कुशल थे। अपनी शक्तियों को परस्पर दलित करने में लगाये ही रहते थे।

इस समय विन्ध्याचल के उत्तर में तीन ज़बर्दस्त राजा बड़ी-बड़ी नदियों की घाटियों में शासन कर रहे थे। सिन्धु-सिंचित मैदानों और

यमुना के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में राजपूतों का आधिपत्य था। मध्य-देश कई शक्ति सम्पन्न राजाओं के अधीन विभक्त था, जिनका अधीश्वर कन्नौज-पति था। गंगा के नीचे की घाटियों में पालवंशी बौद्ध राजे थे। उत्तर और दक्षिण भारत के बीच विन्ध्याचल के पश्चिम में मालवा का हिन्दू-राज्य और दक्षिण में चेरा, चौल, पाण्ड्य राज्य फैले हुए थे।

यद्यपि वे राज्य बिखरे हुए थे, पर विदेशियों के आक्रमण की झोंक के लिये यथेष्ट थे। यदि किसी बड़े मण्डलेश्वर की अधीनता में यह संयुक्त सेनाएँ एकत्र होती थीं, तो वे अजेय समझी जाती थीं। फिर जीता हुआ राज्य विद्रोह का झण्डा खड़ा करता था। यही कारण था कि क़ासिम से मुहम्मद गौरी के गत छः हमलों तक भारत पर मुस्लिम आक्रमणों का वह प्रभाव नहीं पड़ा जो एशिया माइनर के ऊपर पड़ा था। मुहम्मद ग़ौरी का प्रभुत्व भी सफल होना सम्भव न था, यदि परस्पर की कलह और निरन्तर युद्धों से शक्ति का सर्वथा क्षय न हो गया होता। परन्तु यवन-साम्राज्य की नींव तो अकबर के ही काल में प्रौढ़ हुई, जबकि हिन्दू-सरदारों और हिन्दू-नीति पर राज्य-विस्तार किया। अकबर के समय तक तो प्रबल-से-प्रबल आक्रमण प्रजा के सहने पर भी हिन्दू-शक्तियाँ बराबर उसे चैलेंज देती ही रहीं, और अकबर को मृत्यु के २०० वर्ष बाद ही प्रतापी और अद्भुत मुग़ल साम्राज्य हवा होगया, तथा उसके उत्तराधिकारी को मराठों के हाथ में क़ैद होना पड़ा।

दक्षिण में तालीकोट के मैदान में एक बार हिन्दू-शक्ति गिरी। पर एक सौ वर्ष में ही शिवाजी के रूप में वह फिर उठी, और उसने बड़े बाँकपन से पानीपत के मैदान में ढाई लाख मरहठे ला-खड़े किये।

अकबर जैसे प्रतापी शत्रु के सामने भी, प्रताप जैसों ने २५ वर्ष तलवार चलाई, और औरंगजेब ने अपने शासन के ५० वर्ष चिन्ता और तलवार की धार पर काटे।

यह इस बात का प्रमाण है कि, भारत में कभी भी हिन्दू-शक्ति नष्ट नहीं हुई। पृथ्वी-भर के इतिहास में ११०० वर्ष तक अराजकता में रहकर, अरक्षित जीकर, इतने आक्रमण, क़त्ल और लूट-मार सहकर, तथा ७०० वर्ष विदेशी धर्म-शत्रुओं के शासन में रहकर और किस जाति ने अपने

जीवन को अक्षुण्ण बनाये रक्खा है ? हिन्दुओं के मुकाबिले की और कौन-सी जाति है ?

हाँ, हम यह कह सकते हैं कि भारत में एक क्षण के लिये भी मुसलमानों का शासन हिमालय से लेकर कन्या राजकुमारी तक और अटक से लेकर कटक तक अबाध नहीं रहा। सिर्फ़ डेढ़ शताब्दी तक मुसलमानों का शासन इतना रहा कि कुछ हिन्दू-राजा उसे कर देते और अपना प्रतिनिधि भेजते रहे। बस, मुसलमानी साम्राज्य का सर्वाधिक वैभव यहीं पर समाप्त हो जाता है, पर इस डेढ़ शताब्दी की समाप्ति के पूर्व ही हिन्दुओं ने फिर अपनी विजय प्रारम्भ कर दी थी। दक्षिण-पूर्व से राजपूत, पश्चिमोत्तर से सिख, और दक्षिण से मरहठे दिल्ली के मुग़ल तख़्त को ध्वंस करने को बढ़े चले आ रहे थे। इस काल में दक्षिण के ब्राह्मणों की राजनीति-सत्ता और शूद्रों की सैनिक-योग्यता का मिश्रण एक अपूर्व घटना थी। इस समय सिर्फ़ अंगरेजी शक्ति ने ही बीच में पड़कर मुसलमानों के साम्राज्य को हिन्दू हाथों में जाने से रोका।

अलबत्ता दो-चार ऐसे अवसर थे, जो हिन्दुओं ने खो दिये; और यदि वे न खो दिये होते, तो आज दिल्ली में हिन्दू-साम्राज्य होता। एक अवसर यह था, राणा साँगा ने अपने प्रबल-प्रताप से बारम्बार दिल्ली के बादशाहों को फ़तह किया था। उनकी शक्ति जर्जर थी—और बाबर इधर-उधर भटक रहा था। राणा साँगा के वंशधर उस समय अनायास ही भारत के चक्रवर्ती सम्राट् हो सकते थे। दूसरा अवसर वह था, जब पृथ्वीराज के पतन के बाद मुहम्मद ग़ोरी लौट गया था। तब यदि चाहते, तो जयचन्द के वंशधर दिल्ली को धर दबा सकते थे। तीसरा अवसर वह था—जब प्रताप के पास, काबुल-विजय कर, मानसिंह मिलने गये थे। अकबर से उनका भीतरी-द्वेष चल रहा था। मुग़ल-सैन्य उनके हाथ में थी। मन में न-जाने क्या भाव आये थे। यदि प्रताप घमण्ड न करके मानसिंह को छाती से लगा लेते, तो अकबर ही मुस्लिम-साम्राज्य का अन्तिम बादशाह होता; और दुर्बल, ऐयाश और शराबी जहाँगीर को वह गद्दी नसीब न होकर सीसोदियों को मिलती। चौथा वह अवसर था, जब मरहठों ने दिल्ली

को रौंद लिया था, बादशाह को क़ैद कर लिया था, और विशाल भारत वर्ष चिरकाल तक लावारिस माल पड़ा हुआ था !

इन सुअवसरों से हिन्दुओं ने लाभ नहीं उठाया, इसका कारण यह था, कि साम्राज्यवाद और विजय दोनों ही के महत्व को वे नहीं जानते थे। उनमें एकदेशीयता न थी। वे अपने प्रान्तों को स्वदेश, अपनी जाति को जाति और अपने घर को घर समझते थे। समस्त भारत और उसके निवासियों के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व होते हैं, यह उन्होंने सोचा भी नहीं। अन्ततः इस लावारिस माल को सँभालकर रखने का कष्ट करना पड़ा—एक विदेशी गोरी जाति को !!

---

: २७ :

# भारतवर्ष की देशीय एकता

अधिक विदेशी विद्वान् भारतवर्ष को एक महाद्वीप मान बैठे हैं, जो कई देशों का समूह है। भारतवर्ष में एक-देशीय भौगोलिकता में सन्देह करने का कारण उसका इतना बड़ा विस्तार ही है। भारत का विस्तार उत्तर से दक्षिण तक २००० मील से अधिक और पश्चिम से पूर्व कोई १९०० मील के लगभग है। पृथ्वी के इतने बड़े टुकड़े को सहसा एक देश मानने को बुद्धि तैयार नहीं होती। भारत का क्षेत्रफल सारे योरोप के क्षेत्रफल के तिहाई के बराबर है। हमारा भारत ग्रेट-ब्रिटेन से १४ गुना और फ्रांस या जर्मनी से ६ गुना बड़ा है। (यह पुस्तक के लेखन काल का विवरण है।) इसी विस्तार के कारण लोग भारतवर्ष को अनेक देशों का समूह मानते हैं। सतह भी इसकी सम नहीं;—कहीं गगन-भेदी पर्वत, कहीं समुद्र-तल और कहीं ऊँची-नीची भूमि। यही दशा जलवायु की भी है। कहीं शीत की अधिकता है, कहीं गर्मी की। जल वृष्टि का भी यही हाल है। यदि चेरा-पूँजी में ४६० इञ्च वृष्टि हो, तो ऊपरी सिंध में पानी का कहीं नाम-निशान भी नहीं। धरातल में विषमता और जलवायु में समानता न होने से पशु-पक्षी भी भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। रंग-बिरंगे पक्षी, जैसे यहाँ देखने में आते हैं—वैसे, और देशों में बहुत कम दिखाई देते हैं। इन सब बातों का प्रभाव भारतवर्ष की बानस्पतिक उपज पर भी पड़ा है, जिसका फल यह हुआ कि मनुष्य के लिये जो पदार्थ आवश्यक हैं, वे सभी यहाँ होते हैं। सबसे बढ़कर भिन्नता भारतवर्ष के मनुष्यों में है। संसार की जन-संख्या का पाँचवाँ भाग भारत में पाया जाता है। इस जन-समुदाय में न-जाने कितनी

भाषाएँ और न-जाने कितनी रस्म-रिवाजें प्रचलित हैं। शरीर की आकृति के विचार से भी भारतवर्ष में सात प्रकार के मनुष्य रहते हैं। बोली की भिन्नता का तो कहना ही क्या है! यदि मतों की तरफ दृष्टि डाली जाय, तो यही जान पड़ता है कि संसार-भर के मतों और धर्मों का बाज़ार भारतवर्ष है।

इस दशा में यदि किसी को भारतवर्ष की एक देशीयता में सन्देह हो, तो आश्चर्य ही क्या है।

इतना होने पर भी मिस्टर यूसुफअली, ई० एगेट तथा वीसेण्ट ए० स्मिथ आदि इतिहासज्ञों का मत है कि भारतवर्ष एक ही देश है। प्राचीन विद्वानों ने भी भारतवर्ष को एक देश माना था। प्रथम तो 'भारतवर्ष' नाम ही से इस देश की एकता का अनुभव होता है। भारत में सिंधुनद होने के कारण ईरानियों ने इसका नाम—'सिंधुस्थान' या 'हिन्दुस्तान' रख लिया था। ग्रीस-निवासियों ने इण्डस (Indus) से इण्डिया बनाया। इन सब नामों में 'भारतवर्ष' नाम में एक ख़ास महत्व है। जब कोई भिन्न-भिन्न वस्तुओं के समूह का एकत्र वर्गीकरण करता है, तब वह उन्हें भेद होने पर किसी एक प्रधान सूत्र से अवश्य बाँधता है। तत्कालीन विद्वानों ने भी सम्राट् 'भरत' के नाम पर 'भारतवर्ष' नाम रक्खा; जैसे रोमुलस (Romulas) राजा के नाम पर रोम का नाम निर्देश हुआ। यह वह समय था, जब किरात हूण, यवन आदि देशों पर भारत का अधिकार था।

अब ऋग्वेद के एक मन्त्र को पढ़ियेगा—

**इमं मे गंगे-यमुने-सरस्वती-**
**शुतुद्रि-स्तोम सचता परुष्ण्या।**
**असि कन्या मरुद्धृधेवित स्तयार्जी कीये**
**श्रृणुह्या सुषोमया।"**

क्या इस मन्त्र में भारतवर्ष-व्यापिनी नदियों का पाठ करने से समग्र भारतवर्ष का चित्र आँखों में व्याप्त नहीं हो जाता? क्या मातृ-भूमि की एक स्निग्ध विस्तृत मूर्ति मन में नहीं भासित होने लगती? ऋग्वेद के समय का भारत इतना ही भारत था, कि उत्तर में हिमालय पश्चिम में

सुलेमान पर्वत; दक्षिण में समुद्र, पूर्व में गङ्गा। यह आजकल के भूगोल से उत्तर-भारत है। यही आर्यवर्त्त था। मनु ने भी आर्यवर्त्त की यही भौगोलिकता लिखी है—

**आसमुद्रास्तु वै पूर्वांया समुद्रास्तु पश्चिमात्।**
**तयोरेवान्तरं गिर्य्यो शर्य्या वर्त्तं विहुबुधाः ॥**

अमर-कोष में भी ऐसी परिभाषा है—

**आर्यवर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्य हिमालयोः।**

महाभारत में लिखा है कि सहदेव ने पाण्ड्य, द्रविड़, उड्र, केरल, आन्ध्र आदि देशों को विजय किया था। भीष्म-पर्व में दो सौ नदियों की सूची दी हुई है। उनमें दक्षिण की प्रायः सभी नदियों का ज़िक्र है। वन-पर्व में जिन वनों का वर्णन है, उनमें दक्षिण के प्रायः सभी वनों का ज़िक्र आ गया है, जिनमें अगस्त्य, वरुण, ताम्रवर्णी, कावेरी और कन्या-तीर्थों का वर्णन है। यह कन्या-तीर्थ अवश्य कन्या-कुमारी होगा। भीष्म-पर्व में एक और महत्वपूर्ण बात लिखी है। वहाँ देश का आकार सम-त्रिकोण-सदृश लिखा है। यह सम-त्रिकोण चार छोटे-छोटे सम-त्रिकोणों में विभक्त किया है। इस सम-त्रिकोण की शिखा कन्या-कुमारी से और आधार हिमालय पर्वत माना है। कनिंघम साहब लिखते हैं कि यदि पश्चिमोत्तर दिशा में भारत का विस्तार ग़ज़नी तक माना जाय, और इस त्रिकोण का एक बिन्दु कन्या कुमारी और दूसरा आसाम समझा जाय तो भीष्म-पर्व का भारत का त्रिकोण बन जाय।

पुराणों में वर्णित नवखण्ड और वृहत् संहिता में बाराह मिहिर के लिखे हुए देश के और नौ विभागों से भी प्रतीत होता है कि अत्यन्त प्राचीन-काल में देश का सम्पूर्ण ज्ञान मनुष्यों को था। कालिदास ने मेघदूत में राम-गिरि से अल्कापुरी तक अत्यन्त सुन्दर भौगोलिक वर्णन किया है।

धीरे-धीरे आर्यवर्त्त में दक्षिणापथ भी पौराणिक काल में शामिल हो गया। देखिए—

**गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !**
**नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन सन्निधं कुरु।**

यह श्लोक पुण्यः—हिन्दू स्नान करती बार पढ़ा करते हैं। इस श्लोक में मानों समस्त देश लिपटा हुआ है। एक और महत्वपूर्ण श्लोक मिलता है, जिसमें देश को सात कुलपर्वतों का देश माना गया है—

**महेन्द्रो मलयः सह्य शुक्ति मानक्ष पर्वतः।**
**बिन्ध्यश्च पारिपत्रश्च सप्तेते कुल पर्वताः ।।**

एक श्लोक में सर्व भारतवर्ष के तीर्थों के जिक्र हैं:—

**अयोध्या, मथुरा, माया काशी, काञ्ची अवन्तिका।**
**पुरी, द्वारावती चैव, सत्पैता मोक्षदायिकाः ।।"**

यह भारत के सात प्रधान नगरों की सूची है। इन स्थानों की यात्रा करना हिन्दुओं का धर्म कहा गया है, और इनकी यात्रा करना मानो समस्त भारत का भ्रमण करना है।

श्री शंकराचार्य के चारों मठ भारत के चारों कोनों पर प्रतिष्ठित हैं। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इससे कैसी सार्वदेशिक एकता उत्पन्न होती है। पुराणों के और श्लोक सुनिये—

**सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्री शैले मल्लिकार्जुनम्।**
**उज्जयिन्यां महाकालं ओंकारं अमरेश्वरे ।।**
**केदारं हिनवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीम शंकरम्।**
**वाराणस्याञ्च विश्वेशंत्र्यम्बक गौतमी तटे ।।**
**वैद्यनाथं चिताभूमो नाकेशं द्वारिका बने।**
**सेतु-बन्धे च रामेशं छुश्मे शञ्च शिवालये ।।**
**एतानि ज्योति लिङ्गानि सायं-प्रातः पशेतरः।**
**सप्त जन्म कृतं पापं स्मरणे त विनश्यति ।।**

इन श्लोकों से सहसा मन में यह बात पैदा होती है, कि आजकल जगह-जगह के मुहानों पर मोर्चे बाँधकर जैसे क़िले बनाये गये, हैं उसी तरह प्राचीन विद्वानों ने इस तरह मन्दिर और तीर्थों की प्रतिष्ठा करके विस्तृत देश का महान् एकीकरण किया था। प्राचीन साहित्य में देश-प्रेम और देश-भक्ति के कैसे ज्वलन्त भाव हैं। सुनिये।

तं देव निर्मित देशं ब्रह्मवर्त्तं प्रचक्षते ।

... ... ... ...

गायन्ति देवाः किल गीत कानि ।
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे ।
स्वर्गापि वर्गास्पद मार्ग भूते ।
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ।
जामीय नैतत क्र वयं विलीने ।
स्वर्ग प्रदे कर्म्मणि देह बन्धम् ।
प्राप्स्याम् धन्याः खलु ते मनुष्या ।
ये भारते नेन्द्रिय विप्र हीनाः ।

.... ... ... ...

जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी ।

इन तीर्थ-यात्राओं से भौगोलिक ज्ञान बढ़ता था । तीर्थ-दर्शनों से भिन्न-भिन्न स्थानों की कला-कुशलता का ज्ञान प्राप्त होता था । सत्संग से ज्ञान-वृद्धि होती थी । केदारनाथ जाते हुए हिमालय के स्वर्गीय पुष्पों का आनन्द आता था । जगन्नाथ जी पहुँचने पर समुद्र की तरंगों का स्वाद मिलता था । प्रयाग में गंगा-यमुना का संगम दृष्टिगोचर होता था । भारत का एक भी सौन्दर्य-पूर्ण स्थान ऐसा नहीं बचा, जहाँ कोई तीर्थ या देव-मन्दिर न हो । भारत का नैसर्गिक सौन्दर्य भोग-विलास के लिये नहीं, मन और आत्मा को उच्च बनाने के लिये है । यदि निआगरा जल-प्रपात कहीं भारत के अन्तर्गत होता, तो वहाँ फैशनेबल हवाखोरी की जगह धार्मिक यात्री दिखाई देते, पार्कों की जगह आश्रम और होटलों की जगह देव-मन्दिर दिखाई देते ।

महाभारत में दी हुई तीर्थ-सूची देश भर के अनेक प्रसिद्ध नगरों की सूची है । पौराणिक काल में जो अभिप्राय तीर्थों से सिद्ध होता था—बौद्ध-काल में वही अभिप्राय चैत्य, स्तूप और विहारों से सिद्ध हुआ । पौरा-णिक प्राचीन मन्दिरों की तरह यह स्थान भी तत्कालीन शिल्प-निर्माण-कला

के साक्षी हैं। चीन, लंका और यूनान तक के यात्री इन्हें देखने भारतवर्ष में आते थे।

कात्यायन ने चोल, पाण्ड्य और महिष्मती नामक दक्षिणी राज्यों का वर्णन किया है। ऐतिहासिक विद्वानों का मत है, कि कात्यायन नन्द-वंशीय राजाओं के समय में हुए हैं—जिनका काल ईसा से ४००० वर्ष पूर्व अनुमान किया जाता है। यूनानियों के प्रसिद्ध विजयी एलग्ज़ैण्डर ने भारत के भौगोलिक विद्वानों से देश का नक़शा तैयार कराया था, और देश का वर्णन लिखवाया था। वह लेख—एलेग्जैण्डर की मृत्यु पर सिल्यूकस के समय में पैट्रोक्लिस के हाथ पड़ा, और स्ट्रावों ने उसी के आधार पर देशों की माप की थी।

आर्य चाणक्य ने अपने प्रख्यात अर्थशास्त्र में उत्तरापथ और दक्षिणा-पथ का विवरण दिया है। उससे उस समय के भारत की आर्थिक दशा, कला-कौशल और व्यापार का पता लगाता है। अशोक के शिला-लेखों में भी चोल, पाण्ड्य, केरल, आन्ध्र आदि राज्यों का उल्लेख है। राजकुमार महेन्द्र का लंका जाना और कुछ बौद्ध यात्रियों का चीन और मिस्र जाना भी इसका प्रमाण है। पातञ्जलि के महाभाष्य में वैदर्भ, काञ्जीपुर, केरल या मालाबार का जिक्र है!

यह हुई भौगोलिक और धार्मिक दृष्टि से एकता की बात। अब राजनैतिक दृष्टि से इस बात को देखिए। यह बात कहने की ज़रूरत नहीं है कि राजनैतिक एकता का कितना महत्व भौगोलिक एकदेशीयता पर पड़ता है; क्योंकि उदहारण के लिये अंगरेजी साम्राज्य का भारत में विस्तार का परिणाम सम्मुख है। प्राचीनकाल में भी ऐसे बड़े-बड़े साम्राज्य क़ायम किये गये थे। ईसवी सन् से पूर्व अशोक का राज्य अफ़गानिस्तान से मैसोर तक फैला हुआ था। चौथी शताब्दी में समुद्रगुप्त और उससे प्रथम चन्द्र-गुप्त का राज्य-विस्तार भी समस्त भारत को एकता के सूत्र में बाँधे हुए था। इसके बाद सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन, ग्यारहवीं में पृथ्वीराज और १६ वीं में अकबर और औरङ्गजेब ऐसे ही सम्राट हुए हैं। वैदिक साहित्य में भी सम्राट, अधिराज, राजधिराज आदि नाम देखने को मिलते हैं। शुक्र-नीति में सामन्त, माण्डलिक, राजा, महाराजा, सम्राट, विराट और

सर्वभौम आदि शब्द अपने-अपने पद के सूचक मिलते हैं। अथर्ववेद में राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य, वैराज्य और आधिपत्य शब्द मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से भारत में विस्तृत साम्राज्य पद्धति रही है।

वैदिक यज्ञों के प्रकरण में बताया गया है कि राजसूय और वाजपेय-यज्ञ राजनैतिक उद्द्श्यों से होते हैं। राजसूय से वाजपेय का महत्व अधिक था। यज्ञ की समाप्ति पर राजसूय से राजा का पद मिलता था, परन्तु वाजपेय से सम्राट का पद मिलता था, सिंहासनारूढ़ होने पर 'सम्राज्य-मस्तै'—'सम्राज्यमस्तै, की घोषणा होती थी, और फिर सम्राट् से निवेदन किया जाता था—

"इयं ते राडिति राज्य मेवास्मिन्ने तद दधान्यथैन मासा दयति यन्तासी यमन इति यन्तार मेधन में तद यमन मासां प्रजानां करोति ध्रुवोऽसि अरुण इति ध्रुव से वैनमेतद् अरुणयस्मिल्लोके करोति कृत्यैत्वाक्षमाय त्वा प्यों पोषाय त्वेति साधवे त्वेत्येवतेदाह।"

अर्थात्—यह आपका राज्य है। आप इसके स्वामी हैं। आप दृढ़ और स्थिर-वृत्ति हैं। कृषि, धन, धान्य, प्रजा का पालन और रक्षा करने के लिये आपको समर्पण किया जाता है।

ऐसे सम्राटों की सूची बनाई जा सकती है, जिनका जिक्र वेद, पुराण और महाभारत में मिलता है। चाणक्य आर्य ने अपने अर्थशास्त्र में भी चक्रवर्तियों की एक सूची दी है, जिन्होंने राजनैतिक दृष्टियों से समस्त भारत को एक किया था, और चन्द्रगुप्त के विषय में तो उसने लिखा है—"हिमे वत् समुद्रान्तरं—चक्रवर्ति क्षेत्रम्।"

---

: २८ :

# हिन्दू-धर्म और समाज पर इस्लाम का प्रभाव

अब हम इस बात पर विचार करते हैं कि जिस समय भारत में इस्लाम का प्रवेश हो रहा था, उस समय हिन्दू-समाज की क्या दशा थी।

७वीं शताब्दी के मध्य में सम्राट हर्षवर्धन की सत्ता समाप्त हुई, और शीघ्र-ही सारे भारत की शक्ति छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखर गई। पश्चिम से आगे बढ़कर राजपूतों ने उत्तर-पूर्व और मध्य-भारत में छोटी-छोटी अनेक रियासतें पैदा करलीं। कुछ मिश्रित जातियों ने भी अपने को राजपूत कहना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार मुसलमानों के आक्रमण से प्रथम पञ्जाब से दक्षिण और बंगाल से अरब सागर तक लगभग समस्त प्रदेशों पर राजपूतों का अधिकार था। ये तमाम छोटी-छोटी रियासतें आपस में लड़ती-झगड़ती रहती थीं। परस्पर कोई मेल न था। न इनके ऊपर कोई एक बड़ी सत्ता थी। मगध, पाटलिपुत्र आदि के साम्राज्य-चिह्न खण्डहर होगये थे। वैशाली, कुशीनगर, कपिलवस्तु, आवस्ति आदि प्रसिद्ध बौद्ध-नगर उजड़ गये थे। राजनीति और धार्मिक-जीवन के साथ उस काल के हिन्दुओं का धार्मिक-जीवन भी छिन्न-भिन्न होगया था। यही कारण था, कि बुद्ध की मृत्यु के लगभग ढाई-सौ वर्ष के अन्दर बौद्ध-धर्म ने उस जीर्ण-शीर्ण हिन्दू-धर्म को निकाल कर बाहर कर दिया, और यद्यपि बौद्धों और हिन्दुओं में बड़े भारी युद्ध और विरोध हुए, पर दोनों धर्मों की दोनों धर्मों पर छाप पड़ी थी। हिन्दू-कर्म-काण्ड और बौद्ध-धर्म में आदि बौद्धों का-सा तत्व हिन्दुओं में घुसकर बैठ गया था। उत्तरी भारत में महा-यान सम्प्रदाय स्थापित हो चुका था, और बुद्ध के सिवा अनेक बोधिस्वत्वों

की और विशेषकर अमिताय की पूजा होने लगी थी। बौद्ध-मन्दिरों का कर्म-काण्ड हिन्दू-मन्दिरों की पद्धति पर होने लगा था। बौद्ध-धर्म ने संस्कृत का माध्यम नष्ट कर पाली भाषा को अपने धर्म का माध्यम बनाया था, वह महायान सम्प्रदाय में फिर से संस्कृत को प्राप्त हो गया था। ज्ञान का मार्ग कर्म-काण्ड और भक्ति ने ग्रहण कर लिया था। धीरे-धीरे वैष्णव, शैव और तन्त्र-सम्प्रदायों ने संगठन किया, और बौद्ध-मत को प्रबल धक्के से भारत से निकाल कर बाहर कर दिया। इस घटना के बाद हिन्दू-धर्म फिर से भारत में स्थापित हुआ—पर वह बहुत ही अपूर्ण और भ्रामक था। कुछ थोड़े से उच्च-श्रेणी के लोग उपनिषद् और दर्शन-शास्त्र के ज्ञाता बच रहे थे। पर अधिकांश पौराणिक गपोड़े और ढकोसलों की भरमार थी। जाति-भेद खूब ज़ोर से बढ़ रहा था। ब्राह्मण अत्यन्त प्रबल हो गये थे। शूद्र दुखित हो रहे थे, और इस प्रकार भारत के सामूहिक जीवन का विकास असम्भव हो गया था। पण्डों और पुरोहितों के असाधारण अधिकार थे। असंख्य देवी, देवता, मूर्ति, शक्ति, काली, भैरव, रुद्र, शिव की पूजा—जप-तप, यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ, ब्राह्मणों का दान, तीर्थ-यात्रा, मन्त्र-जन्त्र और आडम्बरमय कर्मकाण्ड को धर्म माना जा रहा था। जनता में अन्ध-विश्वास फैला था। छुआछूत का भूत सब के सिर पर सवार था। पाँचवीं शताब्दी के चीनी यात्री फ़ाहियान ने काबुल से मथुरा तक महायान-सम्प्रदाय में देखा था। शेष भारत से भी बौद्ध-धर्म मिट चला था। इसके २०० वर्ष बाद ह्वेनसाँग ने उत्तर-भारत में महायान सम्प्रदाय ज़ोर से फैला हुआ देखा था। उस समय उसने समस्त भारत में शिव की पूजा खूब विस्तार से देखी थी। अयोध्या के निकट उसने दुर्गा के सामने नर-बलि होती देखी थी। बंगाल के प्रसिद्ध सम्राट् अशोक ने—जो शैव था, बौद्धों समस्त विहारों को तोड़-फोड़कर उनके स्थान पर शिव-मूर्ति की स्थापना की थी, और बौद्धों को या तो क़त्ल करा दिया जाता था, या अत्यन्त कष्ट और यातनाएँ देकर अपने राज्य से निकाल दिया जाता था। ह्वेन-सांग ने नरमुण्ड-माल गले में पहिने कापलिक भी देखे थे।"उसने शैव और बौद्ध ईरान, अफ़गानिस्तान और मध्य-एशिया में सर्वत्र देखे थे। इसके सिवा अरब के प्रसिद्ध यात्री सुलेमान सौदागर मोहम्मद इब्ने इसहाक़ अलहीम, अलशहर-

स्तानी इत्यादि के ग्रन्थों से भी उपयुक्त बातों का समर्थन होता है। यह परिस्थिति थी, जब हिन्दू-धर्म में अधिक विचारशील पुरुष पैदा हुए। शङ्कर, रामानुज, निम्बादित्य, बल्लभाचार्य आदि सन्तों ने दक्षिण-भारत में जन्म लिया, और हिन्दू-धर्म के संशोधित रूप का सन्देश जनता को सुनाना प्रारम्भ कर दिया। यह बात खास तौर पर ध्यान देने योग्य है, कि आरम्भ से ईसा की ८ वीं शताब्दी तक समस्त धार्मिक और सामाजिक सुधार उत्तर-भारत में ही आरम्भ हुए। पर आठवीं शताब्दी के बाद यह स्थान दक्षिण को मिला, और यह बात १५ वीं शताब्दी तक क़ायम रही। रामानुज, शङ्कर, निम्बादित्य आदि सभी दक्षिणवासी थे।

इन सभी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय शास्त्रों ही के आधार पर जनता की ज्ञान-पिपासा शान्त की, और उन्हें सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा की। शंकर को ही ले लीजिये।—उन्होंने अनेक सम्प्रदायों को अपने सिद्धान्तवाद के भीतर ले लिया, और सब की संगठित शक्ति को बौद्धों के विरुद्ध खड़ा कर दिया। इनकी भित्ति दार्शनिक थी—और इसी कारण इन्होंने बौद्धों पर विजय प्राप्त की। तब बौद्धों को दार्शनिक ग्रन्थ रचने पड़े। उन्होंने सब वर्णों के लोकों को संन्यास-दीक्षा का अधिकारी घोषित किया। उन्होंने साफ़ कहा—"सच्चा तत्वदर्शी मेरा गुरु है—भले ही वह चाण्डाल हो।" वैष्णवों और शैव-आचार्यों ने शंकर की प्रखर प्रतिभा, तीव्र प्रवचन-शैली, और प्रकाण्ड दार्शनिक-जान ने सब के छक्के छुड़ा दिये।

रामानुज के भक्ति-मार्ग को दक्षिण से उत्तर भारत में लाने का श्रेय रामानन्द स्वामी को है। रामानन्द ने विष्णु का स्थान राम को दिया, और प्रत्येक जाति के लोगों को अपने सम्प्रदाय में सम्मिलित किया। तुलसीदास और कबीर उनके शिष्य थे। तुलसीदास ने राम का नाम घर-घर अमिट कर दिया।

अलबेरूनी लिखता है कि शैव और वैष्णव-सम्प्रदायों के सिवा शनि, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, स्कंध, गणेश, यम, कुबेर-आदि की मूर्तियाँ भी भारत में पूजी जाती हैं। बौद्ध और जैनों ने मांस और मद्य का प्रचार बिल्कुल बन्द कर दिया है। परन्तु कापालियों और शाक्तों ने इन चीजों को धर्म का प्रधान अङ्ग बना दिया है।

ऐसा समय था, जब भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ। यह हम बता चुके हैं कि अरब से योरप का सम्बन्ध इस्लाम के जन्म से पूर्व का है, और इस्लाम-धर्म के जन्म के बाद भी वह सम्बन्ध वैसा ही बना रहा—हम यह भी कह चुके हैं। उस समय बिना ही बल-प्रयोग इस्लाम के साधुओं ने लाखों हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया था। पाठक अब यह भली-भाँति समझ गये होंगे कि इतनी आसानी से मुसलमान साधुओं ने जो हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया इसके दो प्रधान कारण थे—एक यह कि उस समय भारत की सामाजिक और धार्मिक स्थिति अत्यन्त छिन्न-भिन्न और कमज़ोर थी; अपढ़ और दलित लोगों के लिये स्थान ही न था। दूसरे—इस्लाम के साधुओं के रहन-सहन और विचारों पर बौद्धों और हिन्दू-दार्शनिकों का प्रभाव पड़ा था, और वे तत्कालीन हिन्दू-दलितों के लिये अति अनुकूल और प्रिय थे। यही कारण था कि समस्त भारत में इस्लाम का प्रचार बेरोक फैल गया था, और लाखों मनुष्य मुसलमान हो गये थे, जिनमें अधिक संख्या उन छोटी जातिवालों की थी—जो, वर्ण-व्यवस्था और जात-पाँत से कारण अत्यन्त तिरस्कृत थे।

हम बता चुके हैं कि ब्राह्मणों के अधिकार और शक्तियाँ बेतोल थीं। भारत की सम्पत्ति मन्दिरों में झुकी पड़ी थी, और वे जिस भाँति अछूतों से घृणा करते थे, उसी भाँति नव-मुसलिमों से भी। इन घमण्डी ब्राह्मणों और उच्च जाति के हिन्दुओं पर तब क़हर पड़ा—जब इस्लाम नंगी तलवार लेकर बल-पूर्वक भारत में घुसा। मन्दिर तोड़े गये, मूर्तियाँ भ्रष्ट की गईं, खज़ाने लूट लिये गये, और लाखों कुलीन ब्राह्मण दास बनाकर ग़ज़नी में ले जाकर बेच दिये गये। इस प्रकार १३वीं शताब्दी के अन्त से १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत में तलवार का राज्य रहा।

परन्तु ज्यों ही इस्लाम के साम्राज्य स्थापित हो गये, बादशाहों ने दिल्ली और आगरे में राजधानियाँ बनाईं। तब समाज में एक भीतरी क्रान्ति प्रारम्भ हुई। भारत के शिल्प, वाणिज्य, कला-कौशल, चित्रकला विज्ञान, वस्तु-शास्त्र आदि पर इस्लाम के इन अनुयायियों की गहरी छाप पड़ी।

सिन्ध पर ८वीं शताब्बी में मुहम्मद-बिन-कक़ासिम ने आक्रमण

किया। इसके ३०० वर्ष बाद महमूद ग़ज़नवी के आक्रमण हुए। इन हमलों का कोई स्थायी प्रभाव भारत पर न था। १०० वर्ष बाद मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर आक्रमण किया, और उसके आक्रमणों का प्रभाव पंजाब में स्थाई होने लगा। उस समय तक भारत की राजनैतिक अवस्था हद दर्जे तक पहुँची हुई थी। अन्त में १३वीं शताब्दी में उत्तर-भारत पर मुसलमानों का राज्य स्थिर हो गया। इसके सौ वर्ष के अन्दर मैसूर तक अधिकांश भारत पर मुसलमानों का अधिकार फैल गया।

इससे, इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत की जातीयता को भारी धक्का लगा। पर मुसलमान भारत में बस गये, और पहले लोगों के परिश्रम से उन्हें इस काम में अधिक कठिनाई न उठानी पड़ी। वे एक ही पीढ़ी में भारतीय बन गये, और उनकी संस्कृति का प्रवेश भारतीय संस्कृति पर भी होने लगा।

सच्चे सम्राट् की भाँति मुग़लों ने भारत में राज्य किया। मुग़लों की राज्य-श्री बहुत बड़ी-चढ़ी रही। यदि यह कहा जाय, कि उस समय पृथ्वी-भर में कोई सम्राट् मुग़लों से अधिक प्रतापी न था, तो अत्युक्ति नहीं।

ईसा की आठवीं-शताब्दी तक भारत की स्थापत्य-कला पर बौद्धों की संस्कृति थी। ८वीं से १३ वीं शताब्दी तक इस कला में हिन्दुओं के आदर्शों की प्रधानता रही। फिर भी बौद्ध-मत का प्रभाव इस पर स्पष्ट दीख पड़ता रहा। यह बात निर्विवाद है कि प्रत्येक देश की स्थापत्य-कला पर उस देश की भौगोलिक स्थिति का प्रभाव पड़ता रहता है। भारत अभेद्य जंगलों, प्रचण्ड ऋतुओं, बड़ी-बड़ी नदियों, पहाड़ों और धनी उपज का देश है। इसी कारण सदा से भारतीय स्थापत्य कला की स्थूलता और विस्तार पर अधिक जोर डाला जाता रहा है। भारतीय जंगलों में विविध वनस्पति देखने को मिलती हैं। इसीलिए प्राचीन शिल्प-कला में लतागुल्म के विविध कढ़ाव आपको देखने को मिलेंगे।

अरब, भारत की प्राकृतिक परिस्थिति के बिलकुल ही विपरीत देश है। वहाँ जङ्गल, रेगिस्तान और उजाड़ मैदानों की भरमार है। तेज गर्मी, इने-गिने खाद्य-सामान, और रेन के भयानक पर्वत, इसी का प्रभाव मुसल-

मानों की प्रारम्भिक स्थापत्य-कला पर पड़ा है। साफ़-सादी दीवारें, ऊँची मीनारें, बड़े-बड़े गुम्बद, बड़े-बड़े चौक उसी का प्रभाव है। उनका एकैश्वरवाद और मूर्ति-विरोध भी उनके इस निर्माण में सहायक हुआ है।

परन्तु विज्ञ पाठक देखेंगे, कि भारत में मुसलमानों के बसते ही दोनों आदर्श मिल गये, और इस कला में एक तीसरी नवीनता, जो बहुत सुन्दर थी—पैदा होगई। आगरे का ताज इसी मिश्रित सौन्दर्य का फल है, जिस पर भारत को अभिमान है, और संसार-भर के यात्री जिसे देखकर आश्चर्य चकित होते हैं। खोज करने से पता चलता है कि १३ वीं शताब्दी के प्रथम की भारतीय शिल्प-संस्कृति पृथक-पृथक थी। परन्तु इसके बाद दोनों में ऐसा मेल होगया कि वह एक नवीन ही वस्तु बन गई, और मिश्र, श्याम, ईरान, तुर्किस्तान-आदि की शिल्प संस्कृति उनके मुक़ाबले में कुछ भी न रह गई। सोलहवीं सदी के बने हुए मथुरा और वृन्दावन के कुछ मन्दिर, सोनागिरी के जैन-मन्दिर, विजयनगर की इमारतें और सत्रहवीं शताब्दी का बना हुआ मदुरा का तिरुमलाई नायक का प्रसिद्ध महल भी इसी मिश्रित शिल्प का प्रसाद है। सोलहवीं शताब्दी के लगभग राजपूतों ने छतरियाँ या समाधियाँ बनाने की परिपाटी चलाई, जो वास्तव में मुसलमानों से सीखी गई थी। इमारतों में महराव का उपयोग, गोल डाट की छतें मुस्लिम शिल्प-संस्कृति हैं। मुग़लों ने बाग़ लगाने की कला में भी विस्तार किया। काश्मीर का शालामार बाग़ मुग़ल-उद्यान-अभिरुचि का एक ज्वलन्त नमूना है।

चित्रकला में मुग़ल-बादशाहों ने भारी उन्नति की। सभी मुग़ल-बादशाहों ने हिन्दू, ईरानी, चीनी चित्रकार बड़ी-बड़ी तनख्वाहों पर रखे, और उन्होंने एक-दूसरे की सहायता से अपनी कला को बहुत ही उन्नत किया। मुग़ल-काल की फ़ारसी लिपियों में जयपुर, ग्वालियर, गुजरात, काश्मीर-आदि देशों के अनेक चित्रकारों के चित्र हैं। उस समय दिल्ली और आगरे से उन्नत होकर चित्र-कला जयपुर, चम्बू, चम्बा, काँगड़ा, लाहौर, अमृतसर और दक्षिण में तञ्जौर तक फैलती दिखाई देती थी। प्रो० जदुनाथ सरकार का कहना है—कि भारत में मुग़ल-काल में चित्र-कला की जो

उन्नति हुई, वह असाधारण थी राजपूताना और अन्य हिन्दू-राजदरबारों में बादशाहों की अभिरुचि की नक़ल की जाती थी।

हम इस बात पर प्रकाश डालेंगे कि भारतीय संस्कृति पर मुसलमानों का नैतिक प्रभाव क्या पड़ा? सम्राट् हर्षवर्धन के बाद ७ वीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक लगभग ६०० वर्ष के समय में भारत में कोई प्रधान शक्ति नहीं थी। समस्त देश छोटे-छोटे टुकड़ों में छिन्न-भिन्न था। यह हम पीछे कहीं कह भी आये हैं, वह समय भारत की अतिशय राजनैतिक दुर्वलता का था। इसी कमी को मुग़लों ने १६ वीं सदी में सम्पूर्ण किया, और १८ वीं शताब्दी तक एक महान् साम्राज्य क़ायम कर दिया। यह मुग़ल-साम्राज्य रानीतिक, सामाजिक व्यवस्था, उद्योग-धन्धे, कला-कौशल, समृद्धि, शिक्षा, और शासन—सभी दृष्टि से गौरवान्वित था। मुगल साम्राज्य से प्रथम सम्राट् अशोक और समुद्रगुप्त के राज्य-विस्तार भी असाधारण रहे। पर मुग़ल साम्राज्य में इनसे यह विशेषता रही, कि देश में एकछत्रता उत्पन्न होगई। प्रो० जदुनाथ सरकार लिखते हैं—

"......अकबर के सिंहासन पर बैठने के समय से मुहम्मदशाह की मृत्यु तक (१५५६—१७४६) मुग़ल-शासन के २०० वर्षों में समस्त उत्तरीय भारत और अधिकांश दक्षिण को भी एक सरकारी भाषा, एक शासन-पद्धति, एक-समानसिक्के, और हिन्दू-पुरोहितों और ग्रामीणों को छोड़कर जन-साधारण को एक भाषा प्रदान की। जिन प्रान्तों पर मुग़ल-दर्बार का दूर का प्रभाव था—अर्थात् जो मुग़ल दरबार से नियुक्त सूबेदार के आधीन था—चाहे वह हिन्दू राज्य हो या मुस्लिम,—कम-अधिक मुग़लों को शासन प्रणाली, सरकारी परिभाषाओं, दर्बारी शिष्टाचार, और उनके सिक्कों का अनुकरण करते थे।"

एक विद्वान ने लिखा है—

"मुग़ल-साम्राज्य के अन्तर्गत २० सूबे थे, जिन पर एक-ही प्रणाली से शासन किया जाता था, और विविध सरकारी ओहदों के नाम तथा उपाधियाँ सब एक-समान थीं। तमाम सरकारी मिसलों, फ़रमानों, सनदों, माफ़ियों, राहदारी के परवानों, पत्रों और रसीदों में एक फ़ारसी भाषा का

उपयोग किया जाता था। साम्राज्य-भर में एक-समान वज़न, एक-से मूल्य, एक-से नाम, और एक-सी धातु के सिक्के प्रचलित थे।"

मुग़ल-बादशाहों की प्रारम्भिक भाषा ईरानी थी। पर उन्होंने शीघ्र ही उर्दू-ज़बान को जन्म दिया, और उसे ज़बाने-हिन्दवी कहा। यह भाषा ख़ूब उन्नत हुई, और मुसलमानों की मातृ-भाषा बन गई। सिर्फ़ सरकारी काग़ज़ों में फ़ारसी का प्रयोग होता था। १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उर्दू साहित्य की दृष्टि से भी एक जबरदस्त भाषा बन गई। इस भाषा के अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें एक अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह भी थे।

उर्दू-भाषा की उत्पत्ति भी मुग़लों के काल में हुई। यदि आप हलवाई से मिठाइयाँ लें, तो गुलामजामुन, बालूशाही, हलुआ, क़लाकन्द, नानख़ताई, बरफ़ी, आदि अधिकांश नाम उर्दू दीख पड़ेंगे। वास्तव में इनका आविष्कार भी मुग़ल-काल में हुआ था।

उर्दू का अर्थ लश्कर है। बादशाही सेनाओं में, जहाँ अर्बी, तुर्क, ईरानी और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की एक अजीब खिचड़ी पक रही थी—तब, उनके मुख से जो-जो अपनी भाषाएँ निकलती थीं, वे सब भी परस्पर मिल-मिलाकर एक खिचड़ी-भाषा होगईं। इस भाषा का नाम उर्दू पड़ा। क्योंकि यह उर्दू (लश्कर) की भाषा थी। राजा टोडरमल ने इसे फारसी' लिपि में लिपि-बद्ध किया; क्योंकि वह लिपि मुसलमान बादशाह को प्रिय थी, और शाही भाषा की लिपि थी, साथ ही जल्दी और कम स्थान में लिखी जाती थी, और सब राज-कर्मचारी, जो मुसलमान थे—उससे परिचित थे।

परन्तु यह फ़ारसी-लिपि हिन्तोस्तानी भाषा को ठीक-ठीक व्यक्त करने में असमर्थ थी। क्योंकि उसमें १४ ध्वनियों का अभाव था, जैसे—भ, छ, थ, ध, झ, ख, ढ़, ध, फ, घ, ढ़—आदि। इन ध्वनियों के लिए शब्द अरबी में न थे। पर जब ईरान में अरबी-लिपि आई, और ईरानियों ने उसे अपनी लिपि बनाया, तब उन्होंने बिन्दु चढ़ाकर चार नये संकेतों का क़ाम चला दिया। उन्होंने अरबी के काम, जीभ, बे अक्षरों में दो-दो बिन्दियाँ और नून की टेढ़ी रेखा कर, एक और टेढ़ी रेखा बढ़ाकर गाफ, नून, चे चार अक्षरों की सृष्टि करली है। बे सेग़ैन तक ऐसे कई अक्षर हैं, जिनके भेद का

ज्ञान नुक़्तों की न्यूनाधिक संख्या से होता है। अरबी वर्णमाला की रचना करती बार अरबों ने इस नियम पर भी ध्यान रक्खा, कि किसी एक ध्वनि का उच्चारण-स्थान खोज निकालने पर, उस ध्वनि के निकटवर्ती, स्थानों से उच्चारित न होने वाली ध्वनियों के लिये नये-नये स्वतंत्र चिन्हों की सृष्टि न करके उसी ध्वनि के उच्चारण-चिन्ह में थोड़ा फेर-फार कर दिया जाय। यह ठीक भी था, क्योंकि उच्चारण-स्थानों की निकटता के अनुसार उच्चारण-चिन्हों के स्वरूप में भी विशेष भिन्नता न रहना उचित है।

जब यह लिपि ईरान से भारतवर्ष में आई, तब वहाँ वालों ने देखा कि ईरानियो के संशोधन करने पर भी इस लिपि में १५ ध्वनियों की कमी है। उन्होंने १४ ध्वनियाँ और जोड़ दीं। परन्तु जैसे ईरानियों ने एक-एक नुक़ते की जगह दो-दो चार-चार नुक़ते लगाकर, काम चलाया—वैसा न करके ज़ोय से काम लिया। शेष ११ ध्वनियों को उन्होंने द्विमात्रिक बना लिया। अर्थात् इन ग्यारह चिन्हों में जो प्रथम से मौजूद थे, एक और जोड़ दिया। पर पीछे-से ये ध्वनियाँ एक-मात्रिक ही मानी गईं; जैसाकि उर्दू-कविता से स्पष्ट होता है।

फिर भी जैसा चाहिये था, वैसा काम न चला। जिन्हें भ, फ़, ढ़ आदि के बोलने का अभ्यास था, वे ही इसका ठीक-ठीक उच्चारण कर सकते थे। परन्तु अरब और ईरानी लोगों ने, जिन्हें इन अक्षरों का अभ्यास न था, उसका अपने ढंग का एक विलक्षण ही उच्चारण शुरू कर दिया। उस परिभाषिक ध्वनि का उन्होंने एक नियम भी बना लिया। उसी के अनुसार बनाये गये अरबी शब्दों के नाम अरबों ने अरब, और ईसाइयों ने मुफ़र्रस रख दिया। इस तरह अरबों ने ईरानियों और हिन्दुस्तानियों की और ईरानियों ने हिन्दुस्तानियों की विशेष ध्वनियों को अपने-अपने ढंग पर उच्चारण करना शुरू कर दिया।

इस संघर्षण का प्रभाव संस्कृत और हिन्दी-लिपि पर भी पड़ा। कुछ अरबी ध्वनियों का हिन्दी-लिपि में अभाव था। पर हिन्दी ने ईरानियों की तरह बिन्दी लगाकर ख़, ग़, ज़, फ़, क़, अ़ बना लिये, अर मज़े में काम चलाया फिर भी फ़ारसी-लिपि ही उर्दू की लिपि रही। किन्तु उसमें जो हिन्दुस्तानी ध्वनियों का अभाव था—अब तक है। ऋ, ॠ, लृ, लॄ, क्ष, त

ज, ये अक्षर लिखने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अलबेरूनी नें एक जगह लिखा है—"हमने हिन्दुओं के किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण निर्धारित करने के लिये अनेक बार बड़ी सावधानी से लिखा—परन्तु जब उनके सन्मुख फिर उन्हें पढ़ा, तो वे उसे बड़ी मुश्किल-से पहचान सके।"

पाठक देखें, कि १८ ध्वनियों का अभाव जिसमें है, उस लिपि में कैसे संस्कृत-जैसी भाषा के शब्द लिखे जा सकते थे। जबकि आजकल भी, जब अरबी-लिपि को भारत में आये ८०० वर्ष होगये हैं...क्षात्रिय की 'कश्तरिय' और क्षेम को 'कशेम' तथा सुश्रुत को—'सुकश्रुत लिखा जाता है। साधारण लेख भी बहुधा भ्रान्तिपूर्ण लिखे जाते हैं। एक चिट्ठी में लिखा गया—"सेठजी अजमेर गये, बड़ी वही को भेज दो।" लिखा गया—"सेठजी आज मर गये, बड़ी बहू को भेज देना।" लिखा गया—"छुरी मारी थी।" पढ़ा गया—"छड़ी मारी थी।" लिखा गया—"साहब आते हैं, दो किश्ती तैयार रखना।" पढ़ा गया—"साहब आते हैं, तो कस्बी (वेश्या) तैयार रखना।"—इत्यादि प्रसिद्ध बातें हैं, और दस्तावेजों-आदि की बेईमानी तो सब जानते हैं।

मुग़लों ही के ज़माने में तुलसी और सूर ने, भूषण और गंग ने बिहारी और मतिराम ने अमर हिन्दी की रचनाएँ की थीं। वैष्णव लेखकों ने इसी काल में बंग साहित्य में अमर ग्रन्थ लिखे। बंगाल के प्रसिद्ध लेखक दिनेशचन्द्र सेन लिखते हैं—

"बंगला-भाषा को साहित्य के पद तक पहुँचाने में कई प्रभावों ने काम किया है। इसमें निस्सन्देह सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बंगाल-विजय है। यदि हिन्दू-राजा स्वाधीन बने रहते, तो बंगला-भाषा राजदरबारों तक शायद ही पहुँचती।" बंगाल के नवाबों ने रामायण व महाभारत का संस्कृत से बंगला से अनुवाद कराया था। बंगाल के नवाब नसीरशाह ने १४ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बँगला में महाभारत का अनुवाद कराया था। मैथिल कवि विद्यापति ने गयासुद्दीन और नसीरशाह की इस काम के लिये बहुत प्रशंसा की है। इसी बादशाह ने मलधर वसु को बहुत-सा रुपया देकर और गुनराजखाँ ख़िताब देकर भागवत का बँगला में अनुवाद करवाया था। राजा कंस के उत्तराधिकारी मुसलमान

हो गये थे—उन्होंने कृत्तिवास को पूरी सहायता देकर रामायण का अनुवाद बँगला में कराया था। हुसेनशाह के सेनापति परंगलखाँ ने कवीन्द्र परमेश्वर से महाभारत का एक और अनुवाद कराया था। एक मुसलमान नवाब ने मालिक ने मुहश्मद जायसी की पद्मावत का बँगला में अनुवाद कराया था। दिनेशचन्द्र लिखते हैं—"मुसलमान बादशाहों और नवाबों ने बहुत-से संस्कृत और फ़ारसी के ग्रन्थों का अपनी ओर से बँगला में अनुवाद कराया। × × × इसका अनुवाद हिन्दू-राजाओं ने किया, और अपने दरबार में बंगाली कवियों की नियुक्ति की।"

दक्षिण में बहमनी बादशाहों ने ऐसा ही किया। आदिलशाही दफ़्तरों में मराठी भाषा का खूब उपयोग होता था, तब मराठों को भरपूर बड़े-बड़े पद दिये जाते थे। कुतुबशाह मराठी का उत्कृष्ट कबि और पण्डित था। फलतः मराठों भाषा में फ़ारसी और हिन्दी-शब्दों की काफ़ी भरमार होगई, इसी प्रकार पंजाबी और सिन्धी भाषाओं में भी जीवन पड़ा। यदि देखा जाय, तो अनेक मुसलमान हिन्दी के उच्च कोटि के कवि और अनेक हिन्दू उर्दू के उच्च कोटि के कवि इसी मिश्रण से हुए, और हिन्दी, उर्दू, मराठी, पंजाबी, गुजराती, बँगला,-आदि देशी भाषाओं में फ़ारसी, तुर्की-शब्दों और मुहाविरों की भरमार ही इसका कारण है।

अकबर ने फ़ैजी की सहायता से अनेक महत्वपूर्ण संस्कृत-ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद कराया था, और दारा ने अनेक उपनिषदों और हिन्दू धर्म ग्रन्थों को फ़ारसी में अनुवादित कराया।

वैद्यक, ज्योतिष और गणित ने भी मुग़ल-राज्य में खूब उन्नति की। १८ वीं शताब्दी में जयसिंह महाराज ने हिन्दू-पंचाङ्गों का सुधार करने के लिये जयपुर, मथुरा, दिल्ली और काशी में ज्योतिष-यन्त्रालय बनवाये और अरबी के आलमजस्ती का संस्कृत में अनुवाद कराया। कीमियागिरी के बहुत-से नुस्खे, तेजाब, रसायन, क़ाग़ज बनाना, क़लई करना, चीनी मिट्टी का उपयोग मुसलमानों से भारत में प्रचलित हुए।

अभिप्राय यह कि शताब्दियों तक भारत में अराजकता रहने के बाद मुग़लों के काल में शिल्प, वाणिज्य, कला-कौशल बढ़े और यह बात यहीं तक न रही, प्रत्युत हिन्दुओं के कट्टर-धर्म में भी भारी परिवर्तन हुए।

सम्राट् अकबर ने दीनेंइलाही, अथवा सार्वजनिक धर्म की नींव रखी। उसने सहस्त्रों वर्ष की पुरानी प्रथा को, जिसके अनुसार प्रत्येक विजेता युद्ध-क़ैदियों को गुलाम बना लेता था, बन्द कर दिया, अनिच्छित वैधव्य, बाल-विवाह, सती-प्रथा को रोकने की भारी चेष्टा की। पर उसने इस काम के लिये तलवार न उठाई। वह बे-अन्दाज धन दान करता और तीर्थ-यात्राएँ करता था। उसने हिन्दू-मुस्लिम विवाहों की मर्यादा डाली। अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ ने भी इस मार्ग पर पद बढ़ाया, और शाहजहाँ का काल मुग़ल-साम्राज्य का उन्नतकाल था।

इन सम्राटों के जीवन-काल में बहुत-से सेसे साधु-सन्त हुए—जिन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को धार्मिक रूप दिया। इनमें एक कबीर थे। सुना जाता है, वे किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, और एक मुसलमान जुलाहे ने उन्हें पाला था। ये रामानन्द स्वामी के शिष्य थे। उन्होंने बनारस में अपना सतसंग शुरू किया, और हज़ारों शिष्य पैदा किये; जो, नीच-ऊँच, हिन्दू-मुसलमान दोनों थे। वे जन्म-भर जुलाहे का काम करते रहे। कबीर जात-पाँत के विरोधी, वेदों-शास्त्रों और कुरान सभी को गौण माननेवाले—सूफ़ी साधु के समान भक्ति के संत थे। उन्होंने अपनी रमैनी (साखी) के ज़रिये हिन्दू-मुसलमान दोनों को समान धर्मोपदेश दिया, और निर्भय ही दोनों मतों की रूढ़ियों का खण्डन किया,—तथा प्राणिमात्र में प्रेम, भक्ति, और एक-ईश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। कबीर का मत इस पद्य में सुनिये—

**हिन्दु कहूं तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाँहि।**
**पाँच तत्व का पूतला, ग़ैबी खेले माँहि॥**

कबीर के विचारों की छाप अकबर पर क़ाफ़ी पड़ी थी, और अकबर के दीने-इलाही मत चलाने की भित्ति कबीर के ही सिद्धान्त हैं। कबीर के भी विचार उनके शिष्यों-द्वारा उत्तर से दक्षिण तक फैल गये।

यहाँ स्मरण रखने योग्य बात है कि १५ वीं शताब्दी में समस्त पंजाब के नगर और ग्राम मुसलमान सूफ़ियों और फ़क़ीरों से भरे हुए थे। पानीपत, सरहिन्द, पाकपट्टन, मुलतान और कच्छ में प्रसिद्ध सूफ़ी शेखों

की खूब भरमार थी। १५ वीं शताब्दी के मध्य में नानक का जन्म हुआ, और उन्हें फ़ारसी तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में शिक्षा दी गई। ३० वर्ष की आयु में वे साधु हुए, और अपने मुससमान शिष्य मदीन को लेकर भारत, लङ्का, ईरान, अरब आदि देशों में भ्रमण करने गये उन्होंने पानी-पत के शेख़ शरफ़ मुसलमान के मीर बाबा फरीद के शित्य शेख़ इब्राहीम के साथ बहुत काम तक विचार-विनिमय किया। अन्त में उन्होंने एक नये धर्म को जन्म दिया, जो आजकल सिख धर्म कहता है। यह धर्म एकता और प्रेम का धर्म था, जो हिन्दू मुसलमान दोनों के लिए खुला था। नानक का कथन है—

**बन्दे एक खुदाय दे, हिन्दु मुसलमान।**
**दावा राम-रमूल कर, लड़दे वेईमान॥**

× × ×

**ना हम हिन्दु ना मुसलमान।**
**दोनों बीच बसे शैतान॥**
**एकै, एकी, एक सुभान॥**
**गुरुजी कहिया सुन अब्दुर रहमान॥**
**दावा-भूलो नाँ इक्क पिछाणा॥**

नानक ने गंगा-स्नान, पूजा, जप, तप पाठ सभी व्यर्थ बताए हैं, वेद-पुराणों को निरर्थक कहा है अवतार और प्रतिमा-खण्डन किया है, जाति-भेद का बिरोध किया है।

अपने एक पद में वे कहते हैं—

"दया की मस्जिद बना, सचाई को मुल्ला बना, इन्साफ़ को कुर्आन् बना, विनय को ख़तना समझ, सुजनता का रोज़ा रख, तब तू सच्चा मुसल-मान होगा।"

मुग़ल-साम्राज्य की अन्तिम परिस्थिति में नानक के सम्प्रदाय बहुत उलट-पलट गये। इनके अतिरिक्त धन्ना-जाट, पीया, सेना नाई और रैदास चमार-आदि सन्तों ने भी बड़ी प्रसिद्ध प्राप्त की। इन सब के सिद्धान्त भी इसी भाँति के थे। दादू कबीर के शिष्य थे। इन्होंने भी अपने धर्म का प्रचार किया। वह कहता है—

"दादू का शरीर उसकी मस्जिद है। जमात के पञ्च उसके मन के अन्दर हैं। यहीं पर उनका मुल्ला इमाम है। अलक ईश्वर को सामने खड़ी करके वहीं पर वह सिजदा करता है, और सलाम करता है।"

मलूकदास भी १६ वीं शताब्दी के अन्त में हुए, और १०८ वर्ष की आयु में मरे। नैपाल और काबुल तक में उन्होंने मठ स्थापित किये। इनका मत भी उपर्युक्त सन्तों के समान था—जो, हिन्दू-मुस्लिम दोनों की कट्टरता का विरोधी था। इनका कहना है—

**माला कहाँ औ कहाँ तसबीह,**
**अपचेत इनहिं कर, टेक न टेकें।**
**काफ़िर कौन मलेच्छ कहावत,**
**सन्ध्या-निमाज़ समय करि पेखें।**
**है जमराज कहाँ जमरील है,**
**काज़ी है आप हिसाब के लेखें॥**
**पाप और पुण्य जमाकर बूझता,**
**देत हिसाब कहाँ धरि फेंकें।**
**दास मलूक कहा भरमों तुम,**
**राम-रहीम कहावत एकें॥**

सत्तनामी सम्प्रदायों के गुरु वीरभानु दादू के समकालीन थे, और उनका मत भी वैसा ही है।

इन सभी सम्प्रदायों और साधुओं का जन्म हिन्दू-मुस्लिम-एकता के संघर्ष से हुआ, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। ऊपर जिन सन्तों का ज़िक्र हम कर चुके हैं—उनके सिवा बाबालाल, प्राणनाथ, धरनीदास, जगजीवन-दास, कुल्लासाहेब, केशव, चरनदास, सहजो, दयाबाई, ग़रीबदास, शिव-नारायण, रामचरण आदि के उपदेश भी इसी भाँति के हैं।

स्वामी नारायण के मज़हब को मुगल-बादशाह मुहम्मदशाह ने स्वीकार किया था। बादशाह का दस्तख़ती परवाना अभी तक इस सम्प्रदाय के मुख्य मठ (बलिया, ज़िले) में मौजूद है। अठारहवीं सदी के अन्त में

सहजानन्द, हुलनदास, भीखा, पलटूदास-आदि सन्तों के नाम और उनके सिद्धान्त वैसे ही हैं।

बङ्गाल, महाराष्ट्र भी इस धार्मिक क्रान्ति का प्रभाव पाया जाता है। बारहवीं शताब्दी में ही बंगाल में मुसलमानों की दरगाहों पर मीठा चढ़ाना, कुरान पढ़ना, और मुसलमानों के त्यौहार मनाना—इसी प्रकार मुसलमानों के हिन्दू-त्यौहारों का मनाना भी शुरू हो गया था। और एक नए देवता—सत्यपीर—की पूजा भी शुरू हो गई थी, जिसकी स्थापना गौड़-सम्राट् हुसैनशाह ने की थी। १५ वीं शताब्दी के अन्त में चैतन्यप्रभु का जन्म हुआ। उस समय की बङ्गाल की सामाजिक दशा का वर्णन दिनेशचन्द्र सेन ने इस भाँति किया है—

"ब्राह्मणों का प्रभुत्व अति कष्टकर हो गया था। कुलीनता के दृढ़ होने साथ-ही जाति-भेद अधिकाधिक बड़ा होता गया। ब्रह्माण लोग कहने के लिये अपने धर्मों में उच्चादर्शों का प्रतिपादन करते थे किन्तु जाति-बंधन के कारण मनुष्य में अन्तर बढ़ता जा रहा था। नीची जातियों के लोग ऊँची जाति के लोगों के स्वेच्छाचार ने नीचे आहें भर रहे थे। इन ऊँची जाति के लोगों ने नीची जातिवालों के लिये विद्या के द्वार बन्द कर रक्खे थे। उन्हें उच्च जीदन में प्रवेश करने की मनाही थी, और नये पौराणिक-धर्म पर ब्राह्मणों का ठेका हो गया था—मानो वह कोई बाज़ारू चीज़ थी।"

चैतन्य ने इस पर गम्भीर विचार किया। उन्होंने मुसलमान-साधुओं से एकेश्वरवाद के तत्व समझे और गुरु-भक्ति और सेवा के उपदेश दिये। सब कर्म-काण्डों को उसने त्याज्य बताया, और हिन्दु-मुसलमान, नीच-ऊँच सभी को दीक्षा दी।

चैतन्य के शिष्यों में कार्तबाबा-नामक एक मुसलमान-साधु ने कार्तभज नानक सम्प्रदाय चलाया। इनके २२ शिष्य 'बाईस फ़क़ीर' नाम से प्रसिद्ध थे, जिनका मुखिया रामादुलाल था। इस मत के लोग एक ईश्वर को मानते थे, गुरु को ईश्वर का अवतार समझते थे, दिन में ५ बार गुरु-मन्त्र का जप करते थे, मद्य-माँस से परहेज करते थे, जात-पाँत, ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान-ईसाई का उनमें भेद न था। सम्प्रदाय के सब लोग साथ मिलकर भोजन करते थे।

बौद्धों के अन्तिम दिनों में, जब बौद्धों के ऊपर शैवों के अत्याचार मुसलमान होते थे—तब बौद्धों को मुसलमानों से बहुत सहायता मिली थी। तत्कालीन बङ्गला-बौद्ध-ग्रन्थों में ब्राह्मणों के प्रति तिरस्कार और मुसलमानों के प्रति सम्मान के भाव से भरे पड़े हैं।

महाराष्ट्र की तत्कालीन समाज-पद्धति पर प्रसिद्ध महाराष्ट्र-विद्वान् महादेव गोविन्द रानाडे इस भाँति प्रकाश डालते हैं—

"इस्लाम का कठोर एकैश्वरवाद कबीर, नानक-आदि साधुओं के चित्तों में घर कर गया। हिन्दू-त्रिमूर्ति-दत्तात्रेय के उपासक उनकी मूर्ति को मुसलमान फ़क़ीर के-से कपड़े पहनाते थे। यही प्रभाव महाराष्ट्र की जनता के चित्तों पर और भी अधिक ज़ोरों से काम कर रहा था। वहाँ पर ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों के प्रचारक लोगों को उपदेश दे रहे थे कि—राम और रहीम को एक समझो, कर्मकाण्ड और ज़ाति-भेद के बन्धनौ को तोड़ दो, ईश्वर में विश्वास और सनुष्य-मात्र के साथ प्रेम से मिलकर सब अपना एक धर्म बनाओ।"

इस प्रकार के उपदेश देने वाला महाराष्ट्र में पहला साधु-नामदेव हुआ। नामदेव का गुरु खेचर था। उसका कहना था—"पत्थर का देवता कभी नहीं बोलता तो वह हमारे ऐहिक दुःखों को कैसे दूर क़र सकता है? पत्थर की मूर्ति को लोग ईश्वर समझ बैठते हैं। किन्तु सच्चा ईश्वर बिलकुल दूसरा ही है। यदि पत्थर का देवता हमारी इच्छा-पूर्ति कर सकता है-तो गिरने पर वह टूटता क्यों? जो लोग पत्थर के देवता की पूजा करते हैं, वे अपनी मूर्खता से सब कुछ खो बैठते हैं।"

नामदेव के शिष्यों में मुसलमान, अहीर, कुरमी, स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण, मराठा, दरजी, कुम्हार, भंगी, चमार, ढेढ़ और वेश्याएँ तक थीं।

वाहिराम भट्ट, दो दफ़े हिन्दू से मुसलमान और मुसलमान से हिन्दू हुआ उसने कहा—"न मैं हिन्दू हूँ, और न मैं मुमलमान।

शेख़ मुहम्मद के अनुयायी मक्का और मण्डरपुर के मन्दिर दोनों की यात्रा करते, रोज़े और एकादशी-व्रत रख़ते थे। सन्त तुकाराम भी ऐसे ही साधु थे। उन सन्तों के नवीन विचारों से जो बौद्ध और मुसलमानो के सम्मिश्रण से पैदा हुए थे—मराठी साहित्य उत्पन्न हुआ। जाति-बन्धन

ढीला हुआ, स्त्रियों का पद ऊँचा हुआ। उदारता और दयालुता फैली। इस्लाम के साथ हिन्दू-मत का मेल हुआ। कर्मकाण्ड, तीर्थ-आदि का महत्व घटा, और सब भाँति से राष्ट्रीय क्षमता की वृद्धि हुई।

परन्तु दारा के पतन और औरङ्गजेब के उदय के साथ ही मुग़ल-साम्राज्य का सौभाग्य नष्ट हुआ। दारा अपने पिता का सच्चा प्रतिनिधि था। उसके विचार बहुत उत्तम थे। औरङ्गजेब ने धार्मिक संकीर्णता को अपनी राजनीति बनाया, जिससे चिढ़कर बहुत-से राजपूत, मराठे, सिख-राजे उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। सम्पूर्ण देश ही विरोधी शक्तियों में उठ खड़ा हुआ, और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की सम्भावना हवा होगई। औरङ्गजेब कठोर, संयमी और परिश्रमी व्यक्ति था। इसलिये उसके जीते-जी विद्रोह की आग न भड़कने पाई। उसका वह दमन करता रहा। इस बादशाह ने राज्य भी बहुत दिन तक किया, और एकता के विध्वंस होजाने तथा संकीर्णता के प्रबल होजाने के काफी अवसर मिले। उसके मरते-ही साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े होगये। देश के सभी उद्योग-धन्धे, समृद्धि, व्यापार छिन्न-भिन्न होने लगे।

औरंगजेब के उत्तराधिकरियों ने फिर अपने पूर्वजों की रीति का पालन करने की चेष्टा की। शाहआलम ने पूना के पेशवा को अपने राज्य का वकील बनाया, तथा माधोजी सिंधिया को देहली और आगरे का सूबेदार बनाया। शाहआलम के पुत्र अकबरशाह ने राजा राममोहन राय को राजा का ख़िताब देकर तथा अपना एलची बनाकर इंगलैंड भेजा। अन्तिम सम्राट् बहादुरशाह तो हिन्दू-मुसलमानों को एक-दृष्टि से देखते ही थे। बंगाल में पलासी-युद्ध के बाद तक बड़े-बड़े प्रान्तों की दीवानी बंगाल के हिन्दू-ज़मींदारों के हाथ में थी, और उनमें तथा मुसलमानों में किसी भाँति का भेद-भाव नवाब के दरबार में नहीं माना जाता था।

सिराजउद्दौला का सबसे अधिक विश्वस्त अनुचर राजा मोहनलाल था, जिसने पलासी युद्ध में नवाब के लिये प्राण दिये। महाराजा नन्दकुमार भी उनके एक दीवान थे। पंजाब में महाराज रणजीतसिंह के कई मन्त्री मुसलमान होते थे। होलकर और सिंधिया के दीवान और उच्चाधिकारी

बहुधा मुसलमान होते थे। हैदरअली और टीपू सुलतान के प्रधानमन्त्री हिन्दू थे। नाना फड़नवीस हैदरअली को बहुत मानते थे।

परन्तु शोक की बात तो यह थी कि दिल्ली की केन्द्रीय शक्ति छिन्न-भिन्न हो चली थी, और देश की राजनीति राष्ट्रीयता से रहित थी। इसी का फ़ल यह हुआ कि अंगरेज़-सत्ता ने आसानी से, केवल जादू के ज़ोर पर, औरंगजेब की मृत्यु के पचास वर्ष बाद ही—पलासी के मैदान में ऐसी विजय प्राप्त की, जिसे पढ़-सुनकर संसार के राजनीतिज्ञ चिरकाल तक आश्चर्य करेंगे।

युद्ध-विद्या और क़िले-बन्दी के कामों में भी मुग़लों ने बहुत उन्नति की। बन्दूकों और तोपों का रिवाज अधिकतर मुग़लों ही के समय में फैला। फ़ौज की, मालगुज़ारी की, बन्दोबस्त की, हिसाब-खाते की, जो व्यवस्था मुग़लों ने की—वह अत्यन्त प्रशंसनीय थी।

तिथि-वार ठीक-ठीक रोज़नामचा या इतिहास लिखना हिन्दुओं ने मुसलमानों ही से सीखा था। बौद्धों के ह्रास होने के बाद से भारतीय व्यापार बहुत गिर चला था। वह मुग़लों के काल में फिर से उन्नत हुआ। मुग़ल-राज्य के लगभग अन्त तक अफ़ग़ानिस्तान, दिल्ली के बादशाह के आधीन था, और अफगानिस्तान के ज़रिये बुख़ारा, समरकन्द, बलख़, ख़ुरासान, ख़्वारज़िम और ईरान के हज़ारों व्यापारी तथा यात्री भारत में आते थे। जहाँगीर के काल में प्रति-वर्ष सिर्फ बोलन दर्रे से १४ हज़ार ऊँट माल से लदे आते थे। इसी प्रकार पश्चिम में ठट्ठा, भड़ौंच, सूरत, चाल, राजापुर, गोआ, कारवार और पूर्व में मछलीपट्टन तथा अन्य बन्दरगाहों से हज़ारों जहाज़ प्रति-वर्ष अरब, ईरान, तुर्क, मिश्र अफ्रीका, लंका, सुमात्रा, जावा, स्याम और चीन से आते-जाते रहते थे।

बर्नियर कहता है—

"यह बात भी कम ध्यान के योग्य नहीं है, कि संसार में घूम-घामकर सोना-चाँदी जब भारतवर्ष में पहुँचता है, तो यहीं खप जाता है। अमेरिका से जो रुपया योरुप के देशों में फैलता है, उसमें से कुछ तो उन वस्तुओं के बदले में, जो टर्की (रूस) से आती हैं, अनेक द्वारों से टर्की में चला जाता है, और कुछ समरनोक बन्दरगाह के मार्ग से ईरान में पहुँच जाता है।

वहाँ रेशम योरुप में आता है, टर्की की यह दशा है कि वहाँ के लोग उस सामान के बिना, जो यमन से आता है, रह ही नहीं सकते, और टर्की, यमन तथा ईरान को भारतवर्ष की वस्तुओं की आवश्यकता बनी रहती है। इस प्रकार मुखाबन्दर में, जो लाल समुद्र के किनारे पर स्थित है, और बसरे में, जो फ़ारस की खाड़ी के सिरे पर है, तथा अब्बास-बन्दर में, जो सुमात्रा टापू के पास है—इन देशों से रुपया आता है, और वहाँ से उन जहाज़ों पर लादकर जो अच्छी ऋतुओं में भारतवर्ष का माल लेकर इन प्रसिद्ध बन्दर-गाहों में आते हैं—भारतवर्ष में पहुँच जाता है। यह भी विदित हो, कि हिन्दुस्तानियों, डचों, अंगरेज़ों और पुर्तगीज़ों के सब जहाज़, जो हर-साल हिन्दुस्तान का माल पेगू, तेनासरम, सिलोन, अचीन, मगसर, मलयद्वीप, मात्राम्बिक-आदि स्थानों में ले जाते हैं, वे भी उसके बदले में चाँदी-सोना ही लाते हैं, और यह भी उस रुपये की तरह—जो मुखाबन्दर, बसरा, और अब्बास-बन्दर से आता है, यहीं रह जाता है। जो सोना-चाँदी डच लोग जापान की खानों से निकालते हैं, उसमें भी थोड़ा-बहुत किसी-न-किसी समय यहाँ आता रहता है, और जो रुपया सीधे मार्ग से फ्रान्स और पुर्तगाल से आता है, वह भी कदाचित ही यहाँ से लौटकर बाहर जाता है।

"यद्यपि मैं ज़ानता हूं कि लोग यह कहेंगे, कि भारतवर्ष को ताँबा, लौंग, जायफल, दालचीनी-इत्यादि चीजों की आवश्यकता रहती है, जिनको डच, इंगलैण्ड, जापान, मलाका और सिलोन से लाते हैं, और सीसा भी (शीशा नहीं) बाहर से आता है, जिसमें से थोड़ा-सा इंगलैण्ड से अंगरेज भेजते हैं। इसके अतिरिक्त यद्यपि फ्रांस से बानात और अन्यान्य चीजें आती हैं, और दूसरे देशों के घोड़ों की भी आवश्यकता भारत में रहा करती हैं, जो, प्रति-वर्ष २५ सहस्र से अधिक उज़बके देश (तुर्किस्तान) से और बहुत-से कन्धार होकर ईरान से और मुखा-बन्दर, बसरा और अब्बास-बन्दर होकर रगर्थओपिया (हब्श) अरब और फ़ारस से आते हैं। उसी प्रकार यद्यपि बहुत-से तर और सूखे मेवे समरकन्द, वनरख, बुख़ारा और ईरान से आते हैं, जैसे-सरदे, मेवे, नाशपाती, अंगूर, जो अधिकता से देहली में खर्च होता है, आर ज़ाड़ों-भर बिकता रहता है, तथा बादाम, पिस्ते, पीपल, आलूखुबानी, किशमिश-इत्यादि, जो बारह महीने बिकते

रहते हैं। उसी तरह कौड़ियाँ मलय-द्वीप से आती हैं, जो पैसे-धेले आदि के बदले में कम मूल्य पर मिलती हैं। अम्बर ईरान, मलय-द्वीप और मोज़ाम्बिक से आता है। गैंडे के सींग, हाथी-दाँत और गुलाम एथिओनिया से आते हैं। मुश्क और चीनी के बर्तन चीन से आते हैं। मोती, समुद्रों और टूटीकोरन से, जो लंका-टापू के निकट है, आता है;—तोभी इन चीज़ों के बदले में भारतवर्ष से चाँदी-सोना बाहर नहीं जाता। क्योंकि जो व्यापारी ये चीज़ें लाते हैं—वे इसमें अधिक लाभ समझते हैं। उनके बदले में वे यहाँ की वस्तुएँ ही अपने देशों को यहाँ से ले जाते हैं, सो यद्यपि हिन्दुस्तान में बाहरी देशों से प्राकृतिक या बनावटी चीजें आती हैं, तथापि वे संसार-भर के, सोने या चाँदी के एक बड़े भाग के यहीं रह जाने में (जिनका अनेक द्वारों से यहाँ आगमन होता है) रुकावट नहीं डालतीं, और जो चाँदी-सोना एक बार यहाँ आता है, वह कठिनता से पुनः यहाँ से बाहर जाता है।"

बर्नियर औरङ्गजेब के समय की गिरती हुई दशा का इस प्रकार वर्णन करता है—

"जब कोई दरबारी या पदाधिकारी, चाहे वह कितना ही योग्य और बड़ा हो—आता है, तो उसकी सम्पत्ति बादशाही खजाने में चली जाती है। उससे बढ़कर यह बात है, कि हिन्दुस्तान की सब ज़मीन, बाग़ों और मकानों को छोड़कर, जिनके बेचने-इत्यादि की अनुमति प्रायः सर्व-साधारण को दे दी जाती है, बादशाह की सम्पत्ति है। मैं अनुमान करता हूँ कि इन बातों से मैंने प्रमाणित किया कि यद्यपि सोने-चाँदी की खानें यहाँ नहीं हैं, तो भी चाँदी-सोना यहाँ अधिकता से है; और यह कि मुग़ल बादशाह, जो इस देश के बड़े भाग का स्वामी है उसकी आमदनी बहुत-ही अधिक है और वह बड़ा ही धनाढ्य है।"

शाहजहाँ, जो बहुत कम खर्च करनेवाला था, जो किसी बड़ी लड़ाई में फँसे तथा उलझे बिना चालीस वर्ष से अधिक समय तक राज्य करता रहा, कभी ६ करोड़ से अधिक रुपया इकट्ठा न कर सका। परन्तु इस धन में मैंने उन अगणित सोने-चाँदी की तरह-तरह की चीज़ों को, जिन पर बहुत अच्छे काम बने हुए हैं; तथा बड़े-बड़े मूल्य के मोतियों और भाँति-भाँति के असंख्य रत्नों को सम्मिलित नही किया है। मुझे सन्देह है

कि इससे अधिक रत्न कदाचित् ही संसार के किसी बादशाह के पास हों। केवल एक तख़्त ही—यदि मैं भूलता न होऊँ—तो, तीन करोड़ के मूल्य का है। ये सब जवाहरात और बहुमूल्य वस्तुएँ राजपूतों के प्राचीन राजवंशों, पठान बादशाहों और अमीरों से लूटी तथा एक लम्बी मुद्दत में इकट्ठी की हुई हैं। प्रत्येक बादशाह के समय राज्य के अमीरों की मामूली वार्षिक नजरों के रुपये, जो उनको अवश्य ही देने पड़ते हैं, उसकी भी संख्या बढ़ती गई है। यह सब खजाना तख़्त का माल समझा जाता है, और इनको उपयोग में लाना अनुचित है। यहाँ तक कि स्वयं बादशाह भी—चाहे कैसी ही आवश्यकता क्यों न हो—इसमें से थोड़ा-सा रुपया भी बड़ी कठिनता से प्राप्त कर पाता है।

यद्यपि चाँदी-सोना और देशों से घूम-घामकर अन्त में भारतवर्ष में ही आजाता है, तो भी और देशों की अपेक्षा यहाँ अधिक दिखाई नहीं देता, और भारतवासी, दूसरे देशों के निवासियों के समान सन्तुष्ट प्रतीत नहीं होते। इसका कारण यह है, कि प्रथम तो बहुत-सा माल बार-बार लगाये जाने, जैसे औरतों के हाथों की चूड़ियों, कड़ों, कानों की बालियों, नाक की नथों, हाथ की अँगूठियों-आदि के बनाने में, छीज जाता है। इससे भी अधिकांश ज़रदोज़ी, कारचोबी के काम के कपड़ों—इलायचों, पगड़ियों के तुर्रों, सुनहरे-रूपहरे कपड़ों, ओढ़नियों, पकटों, मन्दीलों और कमख्वाबों के बनाने में ख़र्च हो जाता है, जिस पर सुननेवालों को विश्वास नहीं होता। सेनाओं में अमीरों से लेकर सिपाहियों तक, कुछ-न-कुछ मुलम्मेदार और, सुनहरी-रूपहरी चीजें तड़क-भड़क के लिये पहनते हैं। एक अदना सिपाही चाहे कुटुम्ब भूखों मरता रहे—जो एक साधारण बात है—अपनी स्त्रियों के लिये गहने अवश्य गढ़वाएगा।

जागीरदारों, प्रान्तीय अधिकारियों और तहसीलदारों का घोर अत्याचार—जिसे, यदि बादशाह भी रोकना चाहें तो रोक नहीं सकता—विशेषतः उन प्रान्तों में जो राजधानी के निकट नहीं हैं, इतना बढ़ा हुआ है कि खेतिहरों और कारीगरों के पास—उनके जीवन-निर्वाह के लिये कुछ भी नहीं छोड़ता, और वे दीनता तथा दरिद्रता में मरा करते हैं। इसके अतिरिक्त इन्हीं अत्याचारों के फल-स्वरूप उन बेचारों के कोई सन्तान नहीं

होती। यदि, हुई भी तो असमय-ही क्षुदा से पीड़ित हो, संसार से चल बसती है। संक्षेप में यह कि इन उपद्रवों और अत्याचारों के कारण कृषक अपनी जन्म-भूमि छोड़कर, कुछ सुख मिलने की आशा से किसी पड़ौसी-राज्य में चले जाते हैं—या सेना में जाकर किसी के पास नौकर हो जाते हैं। कारण कि, भूमि-सम्बन्धी कार्य बड़ी कठिनता से होता है, और कोई भी व्यक्ति इसके योग्य नहीं पाया जाता; जो अपनी इच्छा से उन नहरों और उन नालियों की मरम्मत करे—जो सिंचाई के लिये बनी हुई हैं। भूमि का बड़ा भाग सूखा और ख़ाली पड़ा रहता है। बात भूमि तक ही नहीं है। बहुत-से घरों की भी ऐसी-ही दशा है। बहुत कम लोग ऐसे हैं, जो नये मकान बनवाते या मकानों की मरम्मत करवाते हैं। एक ओर तो तो कृषक अपने मन में यह सोचते हैं कि क्या हम इस वास्ते परिश्रम करें कि कोई अत्याचारी आवे, और हमारा सब-कुछ छीन ले जावे, और हमारे निर्वाह को भी एक दाना न छोड़े। दूसरी ओर जागीरदार सूबेदार और तहसीलदार यह सोचते हैं कि, हम क्यों सूखी और उजाड़ भूमि की चिन्ता करें? अपना रुपया और समय क्यों इसके उपयोगी बनाने में व्यय करें,—न मालूम, किस वक्त वह हमारे हाथ से निकल जाय, और हमारे उद्योग तथा श्रम का फल न हमें मिले, न हमारे वंशजों को,—अतएव भूमि से जो कुछ मिल सके, ले लें, और जो न मिले, न सही। खेतिहर भूखों मरें या उजड़ जाएँ—हमें क्या? जब हमको भूमि छोड़ देने की आज्ञा होगी, इसे ऊजड़ छोड़कर चल देंगे।

हिन्दुस्तान का कला-कौशल या यहाँ की अत्यन्त सुन्दर कारीगरी—कभी के नष्ट हो लिये होते, यदि बादशाह से अमीरों के यहाँ बहुत-से कारीगर नौकर न होते, जो स्वयं उनके घरों में और बादशाही क़ार्यालयों में बैठकर खुद करते तथा अपने शिष्यों और लड़कों को सिखलाया करते हैं। इनाम की आशा और कोड़ों का भय, उन्हें कलापूर्ण उन्नति के मार्ग में लगाये रहता है। यह भी कारण है कि कुछ धनी व्यापारी ऐसे भी हैं, जिनका बड़े-बड़े उमराओं से सम्बन्ध तथा व्यवहार है, अथवा जो कारीगरों को मामूली से कुछ अधिक मज़दूरी देकर काम लेते हैं। मैंने कुछ अधिक मज़दूरी इसलिये कहा है—कि, यह तो समझना ही चाहिये, अच्छी चीजें

बनाने से कारीगर का कुछ आदर किया जाता है, या उसे स्वतन्त्रता दी जाती है। कारण, जो भी कुछ वह करता है—आवश्यकता और कोड़ों के डर से करता है। उसके मन में सन्तोष और सुख की आशा नहीं होती। इसलिये यदि रूखा टुकड़ा खाने को और मोटा-झोटा कपड़ा पहनने को मिल जाय, तो इसी को वह बहुत समझता है। रुपया भी मिले, तो उसे क्या—वह तो उस व्यापारी का माल है, जो सदैव इसी की चिन्ता में लीन रहा करता है, कि—यदि कोई बलवान अत्याचार या ज़बर्दस्ती करना चाहे तो उससे मैं कैसे बचूँगा ?

व्यापार की गिरी अवस्था—जिस देश में इस प्रकार का शासन हो, वहाँ उन्नति और सफलता के साथ व्यापार भी नहीं हो सकता, जैसे यूरोप में होता है; क्योंकि ऐसे लोग बहुत कम हैं, जो अपनी इच्छा से परिश्रम करना, और दूसरों के लाभ के लिये कष्ट उठाना अथवा अपनी जान-जोखों में डालना पसन्द करें। किसी दूसरे व्यक्ति से—मेरा प्रयोजन ऐसे शासक से है, जो लोगों की कमाई छीन लेने में नहीं हिचकता, चाहे कितना ही लाभ क्यों न हो, कमाने वाले को दरिद्री का-सा वस्त्र पहनना, और निर्धन पड़ौसियों से बढ़कर खाने-पीने में कंजूसी करना आवश्यक है। परन्तु हाँ, जब किसी सैनिक-सरदार से किसी व्यापारी का सम्बन्ध होजाता है, तब, अवश्य ही वह बड़े-बड़े व्यापारिक कार्य करने लगता है। तोभी उसे अपने संरक्षक की गुलामी में रहना आवश्यक है, जो उसकी रक्षा के बदले, जिस प्रकार की प्रतिज्ञा चाहे, उससे करा लेता है।

सूबेदार-आदि वास्तव में नीच, ऋणी और गुलाम होते हैं, तथा कुछ भी सम्पत्ति उनके पास नहीं होती। किन्तु शासन-कार्य मिलते ही वे बड़े बुद्धिमान् और सन्तुष्ट अमीर बन जाते हैं। इस प्रकार समग्र देश में दुर्दशा और तबाही फैली हुई है। जैसाकि मैं पहले कह चुका हूँ, ये सब सूबेदार अपने-अपने स्थानों में छोटे-मोटे बादशाह बने हुए हैं। इनके अधिकार असीम हैं। कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसके पास पीड़ित प्रजा जाकर पुकार सुना सके। कोई भी कैसा-ही भयानक अत्याचार बारम्बार क्यों न मचावे, परन्तु किसी प्रकार की सुनवाई की आशा नहीं है।

यदि किसी प्रकार कोई शिकायत करनेवाला बादशाह के पास पहुँच

भी जाता है, तो सूबेदार के पक्षपाती असल बात को छिपाकर कुछ और-का-और ही मामला बादशाह को सुना देते हैं। तात्पर्य यह कि सूबेदारों को उनके प्रान्तों का सम्पूर्ण रूप से मालिक और स्वत्वाधिकारी समझना चाहिये। वे आप ही जज (विचारक), आप ही पार्लियामेंट और आप ही प्रेसिडेंशल कर्टों (मुख्य विचारालय) हैं। आप ही अपराध का निर्णय करने-वाले और आप ही राज्य-कर के वसूल करनेवाले होते हैं। एक ईरानी ने इन अत्याचारी, लोभी सरदारों, और तहसीलदारों के विषय में क्या ही अच्छा कहा है कि—'यह बालू में से तेल निकालते हैं।' पर सच तो यह है कि इनकी स्त्रियां, बच्चों, सेवकों और लुटेरे साथियों के खर्च के लिये भी आमदनी काफ़ी नहीं होती।

शिक्षा के विषय में वह लिखता है:—

"सारे देश में शिक्षा का बिलकुल अभाव है। लोग अपढ़ और मूर्ख हैं, और यह वहां सम्भव ही वहीं है, कि ऐसे शिक्षालय और कालेज खुल सकें —जिनके खर्च के लिए, यथेष्ट-धन राजकोष में मौजूद हो। यहां ऐसे लोग कहां-जो आर्थिक सहायता देकर कालेज खुलवावें। मानलिया जाय, कि ऐसे लोग मिल भी जायँ—तो पढ़ानेवाले कहां? लोगों में इतनी शक्ति कहाँ, कि अपने-अपने बच्चों को कालेज में भेजकर उनके खर्चे का प्रबंध कर सकें? यदि इस योग्य धनवान् लोग हैं भी, तो यह साहस कौन कर सकता है, कि इस प्रकार खुले-आम अपनी समृद्धता प्रकट कर सकें?"

---

: १९ :

# द्विराष्ट्रवाद का कुचक्र

सन् ५७ के विद्रोह में अँगरेज़ों ने मुगल साम्राज्य के अन्तिम-बादशाह ज़फ़रशाह को क़ैद करके और उसके शाहज़ादों और दूसरे मुगल सर्दारों को क़त्ल करके न केवल मुगल साम्राज्य की जड़ खोद कर फेंक दी प्रत्युत् मुस्लिम सभ्यता का भी गला दबोच दिया गया। यह वह समय था जब कि पहली बार हिन्दू और मुसलमान पारस्परिक और धार्मिक भेद-भावों को भूलकर एक दूसरे के साथ बन्धु-भावना से एकत्रित हुए। उस ज़माने में चुन-चुन के मुसलमान नवाबों, शाहज़ादों और अमीरों का वँश नाश करके हिन्दुओं को उठाया गया और अपनाया गया और उनकी सहायता से नई अंगरेजी अमलदारी की जड़ मजबूत की गई। परन्तु बहुत जल्दी ही कठिनाइयाँ सामने आने लगीं। यहाँ हम हिन्दू-मुस्लिम समस्या को ज़रा और गहराई से देखना चाहते हैं।

लगभग ७०० वर्षों तक ज़ब से ७ वीं शताब्दी के मध्य में अरब के युवक विजेता कासिम ने भारत में पैर रखा तब से १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक जबकि महान अकबर ने अपनी नई नीति का विस्तार किया, लगभग ८०० वर्ष तक इस्लाम ने भारत में दुमुखी लड़ाई जारी रखी। यह लड़ाई एक तरफ़ राजसत्तात्मक थी और दूसरी तरफ धर्मसत्तात्मक। इस इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य यह है कि राज सत्तात्मक लड़ाई में हिन्दू हारते गये। अपने राज्यों और देशों को छिपाते गये और मुसलमानों की आधीनता स्वीकार करते गये। परन्तु धर्म सत्तात्मक लड़ाई में निरन्तर सात सौ वर्षों तक युद्ध करते हुए भी हिन्दुओं में अपनी पराजय

स्वीकार न की। अन्ततः पराजय स्वीकार की सम्राट् अकबर ने जब कि उसने धर्म युद्ध एक दम रोक दिया और हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के सामने-मित्रता के हाथ फैलाये और हिन्दू राजपूतों, हिन्दू राजनीतिज्ञों, हिन्दू कलाकारों और गुणियों की सलाह से उसने एक व्यवस्थित और शांत साम्राज्य की नींव डाली। जिस पर उसकी तीन पीढ़ियों ने ऐश्वर्य और विलास के भोग भोगे। दुर्भाग्य से औरंगजेब ने फिर से धर्म-युद्ध की तलवार सी तीखी कि, परन्तु उसे शिवाजी, रामसिंह और छत्रसाल के हाथों अत्यधिक दुर्दशाग्रस्त होना पड़ा। और यों कहना चाहिये कि अपने राज्य के पचास वर्ष में से पूरे दस वर्ष भी तख़्त ताऊस पर बैठकर आराम से न गुजार सका और चालीस वर्ष तक निरन्तर युद्ध-यात्रायें करता फिरा। अन्त में उसकी नीति का यह परिणाम हुआ कि उसके मरने के बाद केवल २५ ही वर्षों में मुग़ल साम्राज्य का सारा ही ढाँचा ध्वस्त हो गया।

इसके बाद सन् ५७ के विदोह तक मुग़ल साम्राज्य एक मुर्दार वस्तु कीं तरह अपना अस्तित्व रखता रहा। और सन् ५७ में उसने न अपना ही विनाश किया, प्रत्युत इस्लामी सभ्यता और संस्कृति की भी बड़ी भारी हानि की।

विद्रोह के बाद फिर से जमकर जब अंगरेजों ने हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनी शुरू की तो वे इस बात को कभी न भूले कि मुसलमान जिनकी नजर लालक़िले के कंगूरे पर है और जिन्होंने अभी-अभी अपनी प्रभुता खोई है अपने खून में एक रियासती बू भरे हुए थे जिसको जड़-मूल से नष्ट कर देना अंगरेजों के लिए जरूरी था। और हिन्दुओं से जो कि अंगरेजों के उसी प्रकार के गुलाम थे जैसे कि मुसलमानों के- जिनकी चरित्रहीनता और लालची स्वभाव को उन्होंने ठीक-ठीक परख लिया था, उतने भयभीत न थे।

अंगरेजों ने मुसलमानों को जेर करने के लिये जो पहला कदम उठाया वह लार्ड मैकाले का वह चार्टर था कि जिसके द्वारा लार्ड मैकाले ने भारत के हिन्दू-मुसलमान युवकों को अंगरेजी शिक्षा देकर अंगरेजी भाषा के माध्यम से अंगरेजी संस्कृति की हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही संस्कृतियों पर विजय प्राप्त कराना था। लार्ड मैकाले का यह उद्देश्य पूरा हुआ और देखते ही देखते भारतीय युवक अंगरेजी पढ़कर न केवल अंगरेजों के ही

गुलाम होगये बल्कि अंगरेजी सभ्यता के भी। और ज्यों-ज्यों उनकी यह गुलामी सांस्कृतिक प्रभाव में आती गई यह नवयुवक हिन्दू और मुसलमान दोनों ही संस्कृतियों को सन्देह और घृणा की दृष्टि से देखने लगे।

ऐसे ही समय में मुसलमानों में सर सैयद अहमद और हिन्दुओं में राजा राममोहनराय और स्वामी दयानन्द ने आँख फाड़कर अपने युवकों की इस सांस्कृतिक अधोगति को देखा और उनकी रक्षा करने की तत्परता दिखाई। सर सैय्यद अहमद ने अलीगढ़ में मुस्लिम संस्कृति का एक केन्द्र स्थापित किया और उर्दू के माध्यम से नवीन मुस्लिम राष्ट्र का संगठन आरम्भ किया। राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द ने ब्रह्मसमाज और आर्य-समाज की स्थापना करके हिन्दू नवयुवकों में जो नवचेतना का बीज बोया, उसे हिन्दुओं ने अपनाया तो, परन्तु सन्देह की दृष्टि से देखा। जो सहयोग सर सैयद को नये मुस्लिम राष्ट्र के संगठन में मिला वह सहयोग राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द को नहीं मिला। फलतः जहाँ मुस्लिम राष्ट्र एकीभूत होकर समुन्नत होने लगा वहाँ हिन्दू-राष्ट्र में साम्प्रदायिकता की बू उत्पन्न होगई और उसकी बहुत-सी शक्ति आपस के संघर्ष में खर्च होने लगी। परन्तु, इसी समय में कांग्रेस के नाम से एक तीसरी संस्था विशुद्ध राजनैतिक भावनाओं से खड़ी होगई। एक प्रकार से यह भी एक हिन्दू संस्था थी। नाम मात्र के एक दो मुसलमान इसमें सम्मिलित हुए। यद्यपि इस संस्था में कोई दम न था और प्रारम्भ में यह फैशनेबुल पढ़े-लिखे लोगों का वार्षिक राजनैतिक मनोविनोद था। परन्तु धीरे-धीरे कुछ चुने हुए महावारणी पुरुष कांग्रेस में एकत्रित हुए और वह राजनैतिक चर्चा का प्रमुख विषय बनती गई। और साथ ही साथ उसमें हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही विद्वान् अंगरेजी के माध्यम से अंगरेजी शासन और सभ्यता के विपरीत अपने भावों का प्रदर्शन करने लगे। चतुर अंगरेजों ने तुरन्त ही भाँप लिया कि लार्ड मैकाले ने जिस भावना से अंगरेजी का माध्यम भारत में प्रचलित किया था वह अब दूसरे रूप में एक राष्ट्रीयता के रूप में उदय होता चला जा रहा है और अंगरेजों के लिये सबसे बड़ा खतरा बन रहा है।

लार्ड कर्जन जो कि अपने युग के बड़े भारी राजनीतिज्ञ थे उन्होंने

बड़ी बारीकी से यह सब देखा और तत्काल उन्होंने एक नई योजना को जन्म दिया उनमें एक यह थी कि भारत में द्विराष्ट्र का सिद्धान्त स्थापित हो जाय। मताधिकार में, सरकारी नौकरियों में, और अन्य विषयों में भी अब सरकार बात-बात में हिन्दू और मुस्लिम का पक्ष लगाने लगी।

बंगालियों की एकता को भंग करने के लिये बंगाल के भी दो टुकड़े कर दिये गये। मुस्लिम-बहु बंगाल को हिन्दु-बहु बंगाल से पृथक् कर दिया गया, परन्तु यह कार्य समय से पूर्व हुआ। इस समय तक हिन्दू और मुस्लिम द्विराष्ट्र भावना अच्छी तरह पकने पाई थी। सभी लोग अपने को बंगाली समझते थे, और सब ने मिलकर बंगभंग का विरोध किया। बंगाल को उस समय एक कर दिया गया, परन्तु अंगरेजी राजनीति का यह द्विराष्ट्रवाद प्रधान यन्त्र बन गया और छोटी नौकरी से लेकर बड़े से बड़े महत्वपूर्ण-कार्यों के लिये हिन्दू-मुस्लिम का प्रश्न आम विवाद का प्रश्न बन गया, जिसे अंगरेज बड़े चाव से देखते रहे, क्योंकि उनके जीवन का वही एक सहारा था।

इसी समय प्रथम योरोप का युद्ध हुआ और उसमें पहली बार एशियाई जनों ने निर्भय होकर योरोपियन जातियों के साथ युद्ध किया। योरोपियन जनों को विपन्नावस्था में भागते हुए देखा। इस युद्ध की समाप्ति एशिया में साहस और आशा का प्रकाश लेकर आई। विज्ञान ने भी युग-परिवर्तन में सहायताएँ दीं। साम्राज्यवाद की रूप रेखायें बदलने लगीं और अब उसका आधार सेनायें और युद्ध न रह गये। बल्कि अर्थ-साम्राज्य का एक नया रूप उस समय प्रकट हुआ जबकि योरोप की सब शकितयों ने जीवन रक्षा केवल अपने आर्थिक बल के आधार पर की। परन्तु इसी समय रूस का श्रमवाद उसके सम्मुख आकर खड़ा हो गया। यह श्रम और पूँजी का संघर्ष शीघ्र ही सारे विश्व में ऐसा फैला कि इसने सहस्राब्दी के जमे हुए साम्राज्यवाद की भावनाओं को छिन्न-भिन्न कर डाला। दूसरा विश्व-युद्ध होना था और हुआ। और उसमें रक्त की शुद्धता का दम्भ और राष्ट्रीयता का दम्भ जलकर खाक हो गया। और उसके साथ ही योरोप के प्रभुत्व का सूर्य भी।

परन्तु अब भारत न केवल एशिया भर के लिये प्रत्युत सम्पूर्ण विश्व के लिये एक महत्वपूर्ण स्थल बन गया था। योरोप की कोई शक्ति अब



एशिया के साम्राज्य का बोझ वहन नहीं कर सकती थी। परन्तु टूटता हुआ अंगरेजी साम्राज्यवाद भारतवर्ष को छोड़कर आत्मघात भी कैसे कर सकता था। उसने भारतवर्ष को जहर की एक वही डोज़ दी जिससे योरोप का सर्वनाश हुआ। दुर्भाग्य से भारत ने राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को अपना लिया और अंगरेज़ों के गुरगों को ऐसे अवसर मिल गये कि वे मुसलमानों को उत्तेजित करें कि वे हिन्दुस्तान के राष्ट्र में सम्मिलित न हों और वे अपना पृथक् एक राष्ट्र निर्माण करें।

मुहम्मद अली जिन्ना एक महा मेधावी और तेजस्वी मुसलमान था। यह दूसरा मुसलमान था जो सर सैय्यद के बाद उत्पन्न हुआ। उसकी आत्मनिष्ठा और दृढ़ता का अन्त न था। उसने स्पस्ट घोषणा की कि मुसलमान अल्पसंख्यक नहीं हैं। उनका पृथक् राष्ट्र है। उसकी पृथक् सभ्यता है, पृथक् संस्कृति है। उसमें हिन्दुओं का कोई हिस्सा नहीं है। हिन्दुओं से उनका कोई मेल, साझा या समझौता नहीं हो सकता। और उन्हें पृथक् देश पाकिस्तान चाहिये। मुस्लिम-बहु प्रदेश पाकिस्तान कहे जाने चाहिये। हिन्दुओं को जिन्ना की यह माँग पसन्द न होना स्वाभाविक था। परन्तु जिन्ना एक इंच भर भी अपने स्थान से टस से मस न हुआ। और यह अंगरेज़ों के कौशल और कूटनीति का चरम विकास था कि उसने कांग्रेस के द्वारा जो राजनैतिक आधारों पर और सांस्कृतिक आधारों पर भी हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रचारक और समर्थक थी, हिन्दू मुस्लिम द्विराष्ट्र सिद्धान्त स्वीकार करा लिया। कांग्रेस के द्वारा विभाजन को स्वीकार करा लेने के बाद तत्काल ही अंगरेज़ों ने भारत को छोड़ दिया और दुनिया ने देख लिया कि मानव के इतिहास में अनहोनी घटना होगई। साठ लाख स्त्री-पुरुषों का अयाचित, अकल्पित अतर्कित महानिष्क्रमण हुआ। और लगभग एक करोड़ प्राणियों के रक्त से पृथ्वी ने स्नान किया। बड़े से बड़े भयानक महायुद्ध भी ऐसे भयानक परिणाम नहीं लाये थे।

आज भी भारत और इस्लाम यह प्रश्न वैसा ही महत्वपूर्ण और उलझन से भरा हुआ है जैसा कि उस समय था जबकि अंगरेज़ भारत को छोड़ गये थे। लाखों आदमियों के ख़ून, क़त्ल, अग्निदाह और ध्वंस का उस पर कोई असर नहीं पड़ा है।

---